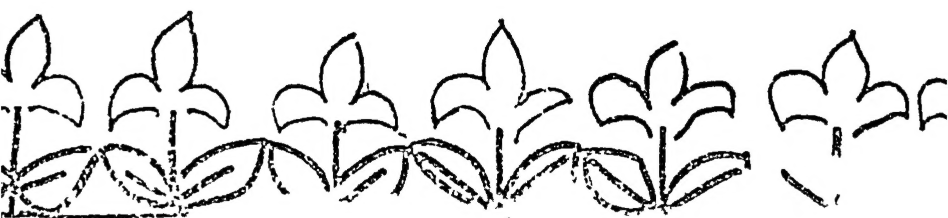
अप्पाणं सरणं गच्छामि (२)

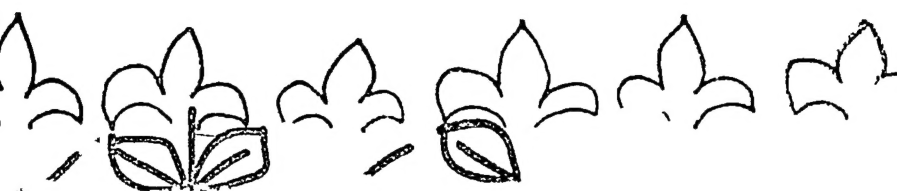
समाधि की निष्पत्ति

जैन विश्व भारती
तुलसी अध्यात्म नीडम् प्रकाशन



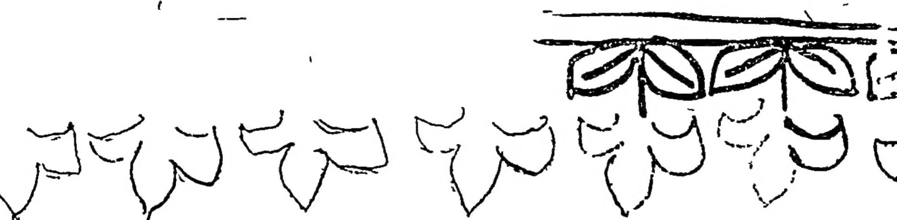


युवाचार्य महाप्रज्ञ



अप्पाणं सरणं गच्छामि (२)

समाधि की निष्पत्ति



संपादक : मुनि दुलहराज

मूल्य : ७.०० रुपये/प्रथम संस्करण १९८१/प्रकाशक : तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज०) मुद्रक : गोयल ऑफ सेट प्रिन्टर्स, ओल्ड रोहतक रोड, दिल्ली।

प्रकाशकीय

तुलसी अध्यात्म नीडम् द्वारा आयोजित प्रेक्षा-ध्यान शिविरो मे युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ द्वारा प्रदत्त प्रवचनो के सकलन एव प्रकाशन का क्रम पिछले तीन-चार वर्षो से चल रहा है। इस अमूल्य साधना-साहित्य का आकर्षण निरन्तर वढता जा रहा है। इसके माध्यम से सामान्य जन से लेकर प्रवुद्ध वर्ग के लोगो तक सभी ने मानसिक शाति और अध्यात्म-विकास के वहुमूल्य सूत्रो को पाया है। जनता की वढती हुई माग को देखते हुए यह अनुभव किया गया कि इस प्रकार की पुस्तको को और अधिक सुलभ वनाने के लिये इनके लघु (पाकेट-वुक साईज) सस्करणो का प्रकाशन किया जाए। इस दृष्टि से 'अप्पाण सरण गच्छामि' के रुप मे प्रकाशित ग्रन्थ को 'समाधि की खोज' और 'समाधि की निष्पत्ति' इन दो भागो मे लघु सस्करण के रुप मे प्रकाशित कर रहे है। आशा है, इनकी उपयोगिता और वढेगी और ये पुस्तके समाधि की खोज मे निकले लोगो को समाधि की निष्पत्ति तक पहुचाने मे सहायक सिद्ध होगी।

जेठालाल एस० जवेरी

चेयरमैन, तुलसी अध्यात्म नीडम्

दिनांक १० अक्तूबर १९८१

आशीर्वचन

- शान्ति और समाधि की खोज हर मनुष्य की मजिल है।
- समाधि की खोज मे वढते हुए आश्वस्त चरण मजिल की दूरी को कम करते जाते हैं।
- मजिल तक पहुचने के लिए परम सत्य का साक्षात्कार आवश्यक है।
- अन्तश्चेतना मे परम सत्य की सम्पूर्ण सत्ता का आकलन करने के लिए भगवद्गीता के कृष्ण ने कहा—मामेकं शरणं व्रज—मेरी शरण मे आ जाओ। मैं तुझे सत्य से मिला दूगा।
- त्रिपिटको के वुद्ध ने अभिप्सित को पाने के लिए त्रिशरण का सूत्र देते हुए कहा—

बुद्धं शरण गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि

- आगमो के उत्स महावीर ने चारो ओर से त्राण की सभावना व्यक्त करते हुए कहा—

अरहंते सरणं पवज्जामि
सिद्धे सरणं पवज्जामि
साहू सरणं पवज्जामि
केवलि पन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

- साधारण व्यक्ति स्वय अपने जीवन-रथ का सारथ्य नही कर सकता, इसलिए उसके लिए किसी शक्तिशाली सत्ता की शरण स्वीकार करना आवश्यक हो गया।
- हमारे युवाचार्य महाप्रज्ञ इन सव शरणो से ऊपर उठकर कहते है—अप्पाण सरण गच्छामि—मैं अपनी आत्मा की शरण स्वीकार करता हू।
- यह अद्वैत की भाषा है। इसमे व्यक्ति स्वय ही स्वय का त्राता वनता है।
- यहा शरण देने वाला परिसर मे नही, व्यक्ति के अभ्यन्तर मे है। यहा किसी

परमसत्ता और आत्मसत्ता के बीच का द्वैत समाप्त हो जाता है।

- वास्तव मे गीता, त्रिपिटक और आगमो के शरण आत्मा से भिन्न नही है, इसलिए शान्ति और समाधि की राह अपनी शरण मे जाने से ही खुल सकती है।
- जो व्यक्ति अपनी शरण को नही खोज पाया है, वह दूसरे की शरण मे जाकर भी निश्चिन्त नही हो सकता।
- यह तथ्य मात्र काल्पनिक उपज नही है, शाश्वत सत्य है। पारम्परिक नही है, जीवन मे प्रयुक्त है। श्रुतानुश्रुत नही है, अनुभव-पूत है इसलिए मैं इसका मूल्याकन करता हूँ।
- 'अप्पाणं सरणं गच्छामि' महाप्रज्ञ की उस अनुभव-पूत वाणी का सकलन है, जो आत्म-समाधि के क्षणो मे उद्गीत हुई है।
- समाधि की खोज मे निकले हुए यायावरो के लिए यह कभी नही चुकने वाला पाथेय है। इसका पठन, मनन और निदिध्यासन समाधान की नई दिशाओ का उद्घाटन करेगा और व्यक्ति को अपनी शरण मे पहुँचा देगा, ऐसा विश्वास है।

आचार्य तुलसी

८-१२-८०
दशाणी गेस्ट हाऊस,
सुजानगढ

प्रस्तुति

मनुष्य का जीवन व्याधि, आधि और उपाधि—इन तीन दिशाओ मे चल रहा है। कभी शारीरिक कष्ट, कभी मानसिक कष्ट और कभी भावनात्मक कष्ट। कभी-कभी तीनो एक साथ। कष्ट होना अस्वाभाविक नही है। प्राकृतिक और सामाजिक प्रभावो के बीच जीने वाला व्यक्ति कष्ट से मुक्त नही रह सकता। पर मनुष्य नही चाहता कि कष्ट हो। वह ऐसी अवस्था मे रहना चाहता है जो कष्टो से अतीत हो। वह अवस्था है समाधि। उस अवस्था मे मानसिक और भावनात्मक कष्ट नही होते, शारीरिक कष्ट प्रायः नही होता और कभी हो भी जाता है तो उसे शान्तभाव से सहने की शक्ति जाग जाती है।

चिकित्सा शास्त्र मे व्याधि-शामक उपाय बतलाए गये हैं। मानसिक चिकित्सा मे आधि-शामक उपाय मिलते है। उपाधि-शामक उपाय केवल अध्यात्म मे मिलते हैं। उपाधि (भावनात्मक, आवेश, कषाय) का शमन होता है, तब शारीरिक और मानसिक कष्ट अपने आप कम हो जाते हैं। समाधि उपाधि की विपरीत अवस्था है। जैसे-जैसे उपाधि कम होती है, वैसे-वैसे समाधि की घटना घटती है। समाधि की साधना से उपाधि शान्त होती है। उसके शान्त होने का अर्थ है—समाधि।

प्रस्तुत पुस्तक में समाधि और उसकी साधना का निदर्शन है। साधना का एक मुख्य सूत्र है—प्रेक्षा। वह समाधि का आदि-बिन्दु भी है और चरम-बिन्दु भी। आदि-बिन्दु में चित्त की निर्मलता का दर्शन होता है और चरम-बिन्दु में चेतना सभी प्रभावो से मुक्त हो जाती है। मध्य-बिन्दु में वह प्रभावित और अ-प्रभावित —दोनो अवस्थाओ में रहती है।

वर्षों पहले मेरी यह धारणा थी कि जैन साधना-पद्धति मे समाधि के तत्त्व अल्पमात्रा में उपलब्ध हैं। अब धारणा बदल चुकी है। महर्षि पतंजलि ने धारणा, ध्यान और समाधि का भाग किया है। जैन दर्शन में ऐसा विभाग नही है। समाधि ध्यान के अर्थ में भी प्रयुक्त है। इसके अतिरिक्त अन्य अर्थों में उसका प्रयोग मिलता है। इसके तत्त्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। उत्तराध्ययन (२६वा और ३२वा अध्ययन), भगवई (शतक ६), समवाओ (३२), ठाण, दशाश्रुतस्कंध आदि अनेक आगमों में इसके तत्त्व विद्यमान हैं।

प्रस्तुत कृति मे समाधि का शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान के सन्दर्भ में अध्ययन किया गया है। मैं मानता हू कि शरीर-शास्त्र के सन्दर्भ मे समाधि के रहस्यो की वहुत स्पष्ट जानकारी मिल जाती है। विज्ञान प्रायोगिक दर्शन है, इसलिए धर्म और दर्शन के वीच में अभेद्य दीवार नही होनी चाहिए। वर्तमान मे साधना-ग्रन्थो में सूत्र उपलब्ध है। उनके रहस्य और चाभियां उपलब्ध नही है। विज्ञान के द्वारा वे उपलब्ध हो जाते है। धर्म से विज्ञान और विज्ञान से धर्म कितना लाभान्वित होता है, यह अध्ययन की नई शाखा हो सकती है, किन्तु धर्म अनेक समस्याओ को सुलझाने और अनेक रहस्यो को उद्घाटित करने के लिए वहुत उपयोगी है। अध्यात्म के आचार्यो ने अनुभव के आधार पर रहस्यो की खोज की थी। उन्होंने अपने अनुभवो को शास्त्रो में सकलित किया था। अनुभव की वाणी को साधना के द्वारा ही समझा जा सकता है। उसे समझने का दूसरा उपाय है—प्रयोग। धर्म भी प्रायोगिक होना चाहिए। प्रस्तुत कृति से यही दृष्टि विकसित होती है।

मानसिक समस्याओ और तनावो के युग में समाधि का अनुभव सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मनुष्य के सामने अनेक समस्याए है। उसके जीवन मे अनेक दु ख है और वह दु ख मुक्ति चाहता है। ज्ञान और आचरण में दूरी है। वह मनुष्य के व्यक्तित्त्व को विखडित करती है। प्राकृतिक और अर्जित आदतें उसे सताती है। समाधि का अनुभव इन समस्याओ का स्थायी समाधान है।

दिल्ली के दो तथा लुधियाना के दो—इन चार शिविरो मे समाधि की जो चर्चा की गई, वह इसमे सकलित है। आचार्यश्री तुलसी ने प्रेक्षा-ध्यान, उसके प्रयोग और चर्चा को सदा प्रोत्साहित किया है, इसलिए प्रेक्षा-ध्यान के नए-नए आयाम प्रस्तुत हुए है।

प्रस्तुत कृति के सपादन में मुनि दुलहराजजी ने अपना श्रम और शक्ति का नियोजन किया है। मेरी मगल भावना है कि मनुष्य मात्र को समाधि का वीज मिले।

३०-११-८०
जैन विश्व भारती
लाडनूं

युवाचार्य महाप्रज्ञ

अनुक्रम

समाधि की निष्पत्ति

शिविर ३

लुधियाना

२४-१०-७१ से २-१

१. अपनी खोज

१ चेतन और अचेतन मे अन्तर—चैतन्य।
चेतन और अचेतन मे अन्तर—सुख।
चेतन और अचेतन मे अन्तर—शक्ति।

२ चैतन्य केवलज्ञान इसलिए नही कि आवरण है।
सुख आत्यन्तिक और निर्बाध इसलिए नही कि प्रिय-अप्रिय का सवेदनहै
शक्ति अस्खलित इसलिए नही कि उसका उपयोग दूसरो के हितो की क्षा
मे भी होता है।

३ ध्यान द्वारा अपने आपको खोजें।

४. उदासीन ज्ञान ही ध्यान बन जाता है।

५. कामवृत्ति को क्षीण करने के लिए अन्तर्यात्रा का प्रयोग करें। जब काम व
विकल्प उत्पन्न हो तव प्रयोग करें, प्रतिदिन भी करें।

एक

सबसे बड़ी विशेषता

मनुष्य मे हजारो विशेषताए हैं। एक व्यक्ति पैरो से रगीन चित्र बनाता है। एक व्यक्ति पैरो से कागज को काट-छांटकर अनेक प्रकार के पक्षी बना लेता है। एक व्यक्ति आया, उसके हाथ काम नही करते थे। उसने बडी कैंची पैरो मे पकडी। एक कागज लिया। पैरो से उसे मोड़ा और कुछ ही क्षणो मे मोर तैयार हो गए। कैंची पैरो से चल रही थी। कागज को मोडना भी पैरो से हो रहा था। सब कुछ पैर कर रहे थे। इसी प्रकार वह पैरो से रोटी बना लेता है। चाय बनाना भी पैरो से होता है। हाथ से किए जाने वाले सारे कार्य पैरो से कर लेता है। कुछ व्यक्ति दाए हाथ से लिखने का कार्य बाए हाथ से कर लेते है। अक्षरो की वही सुघडता और लिखने की गति भी वही। कोई अन्तर नही आता।

मानव शरीर मे बहुत विशेषताए हैं। कान का काम है सुनना। यदि कान से सुनाई न दे, तो दातो से सुना जा सकता है। आख का कार्य है देखना। यदि आख से न दीखे, तो अगुलियो से देखा जा सकता है, पढा जा सकता है। मनुष्य की विशेषताओ को निश्चित नियमबद्ध नही बताया जा सकता।

प्रश्न है कि मनुष्य की सबसे बडी विशेषता क्या है? 'बडे' का प्रश्न हमेशा रहा है। आदमी की यह प्रकृति है कि वह बडे से सतुष्ट होता है, छोटे से नही। लोग आते है और जब तक आचार्य तुलसी के दर्शन नही कर लेते तब तक उन्हे सतोष नही होता। बच्चा भी आता है और पूछता है—बडे गुरुजी कहा हैं? यह प्रत्येक आदमी की प्रकृति है कि वह बडे तक जाना चाहता है। जब तक आदमी पहाड की ऊची से ऊची चोटी का स्पर्श नही कर लेता, उसे सतोष नही होता।

मनुष्य की सबसे बडी विशेषता है, समाधि। जीवन की सबसे बडी कला है, समाधि। जीवन का सबसे बडा विज्ञान है, समाधि। जिस व्यक्ति को समाधि उपलब्ध हो जाती है, उसे सारी विशेषताए उसे प्राप्त हो जाती है या यह कहना चाहिए कि उसकी दूसरी सारी विशेषताए नीचे रह जाती हैं। दूसरी-दूसरी

विशेषताओ से सपन्न व्यक्ति अत्राण और असहाय देखे जाते हैं। किन्तु जिस व्यक्ति को समाधि उपलब्ध है, वह कभी अत्राण और असहाय नही होता। वह कभी अशरण और दु.खी नही रहता।

समाधि की उपलब्धि

समाधि की उपलब्धि तब होती है जब व्याधि नही सताती, उपाधि नही सताती और आधि नही सताती। ये तीनो—व्याधि, उपाधि और आधि जब नि शेष हो जाती है तब समाधि घटित होती है। व्याधि आती है, रोग होता है, समाधि टूट जाती है। सुख और सतोष समाप्त हो जाते है। आदमी दु.खी बन जाता है। आधि आती है तब आदमी की स्थिति और ज्यादा भयकर हो जाती है। शरीर मे कोई रोग नही, किन्तु मानसिक उलझन आदमी को इतना बेचैन बना देती है कि आदमी एक क्षण के लिए भी सुख की सास नही ले सकता। आधि की कठिनाई व्याधि से अधिक है। आधि की स्थिति मे आदमी पागल बन जाता है। सब कुछ साधन होने पर भी वह बहुत दु खी बन जाता है। उपाधि की स्थिति आधि से भी ज्यादा भयकर होती है। उपाधि का अर्थ है—कषाय। उस स्थिति मे आदमी आदमी नहीं रहता। वह और कुछ बन जाता है—पिशाच, भूत या राक्षस बन जाता है। उसमे क्रोध, अभिमान और माया का भूत जागता है, कपट उभरता है, लालच जागता है। इन सबके अस्तित्व मे आदमी सब कुछ करता है जो उसे कभी नही करना चाहिए। व्याधि, आधि और उपाधि—तीनो खतरे हैं। इनकी अवस्थिति मे समाधि नही आ सकती।

एक रोगी आदमी बहुत बडा धनी हो सकता है, बहुत बड़ा कलाकार हो सकता है, बहुत बडा वैज्ञानिक हो सकता है। मानसिक व्यथा से पीडित आदमी बहुत बडा धनी, वैज्ञानिक और कलाकार हो सकता है। क्रोध से भरा हुआ आदमी धनी हो सकता है, बडा शिल्पी भी हो सकता है, कलाकार भी हो सकता है, बडा वैज्ञानिक भी हो सकता है, किन्तु व्याधि, आधि और उपाधि से भरा हुआ आदमी समाधिस्थ नही हो सकता। समाधिस्थ होने के लिए तीनो के पार जाना जरूरी होता है। शरीर निरन्तर बीमार रहता है, समाधि कैसे होगी? मन उलझनो से भरा रहता है, समाधि कैसे होगी? आदमी उपाधि से भरा रहता है, कषाय से भरा रहता है, समाधि कैसे उपलब्ध होगी? इन सबसे पार जाने पर ही समाधि का बिन्दु उपलब्ध होता है।

स्वतंत्रता

मनुष्य की दूसरी विशेषता यह है कि वह स्वतत्र है। स्वतत्रता प्राणी की विशेषता है। अचेतन स्वतत्र नही होता। चेतन स्वतत्र होता है। हमारी दुनिया

मे दो मूल तत्त्व हैं। एक चेतन और एक अचेतन। चेतन और अचेतन मे अन्तर यह है कि चेतन स्वतत्र होता है, नियति से पूरा बंधा हुआ नहीं होता और अचेतन केवल नियति से बधा हुआ होता है। उसकी अपनी कोई स्वतत्रता नहीं होती। जितने सार्वभौम नियम हैं, जितने युनिवर्सल लॉज है—ये सब अचेतन के लिए हैं। चेतन के लिए ये लागू नही होते। बहुत बडी भेद-रेखा है चेतन मे और अचेतन मे। चेतन स्वतत्र होता है। अचेतन स्वतत्र नही होता, पूरा परतत्र होता है। प्राणी मे स्वतत्रता होती है इसलिए वह बदल सकता है। उसमें बदलने की क्षमता है। मनुष्य मे सबसे अधिक स्वतत्रता विकसित होती है। वह चाहे तो बीमार हो सकता है, व्याधिग्रस्त हो सकता है, चाहे तो आधिग्रस्त हो सकता है—मानसिक उलझनों से भर सकता है और चाहे तो उपाधि का जीवन जी सकता है—क्रोध, अभिमान, माया और लालच का जीवन जी सकता है। वह चाहे तो समाधि का जीवन जी सकता है। यह चुनाव करने की क्षमता केवल मनुष्य मे है।

मार्ग दो : चुनाव का स्वातन्त्र्य

मनुष्य की स्वतंत्रता इतनी विकसित होती है, इतनी जागृत होती है कि वह अपने मार्ग का चुनाव कर सकता है। मुझे कौन-सा जीवन जीना है? व्याधि, आधि और उपाधि का जीवन जीना है या समाधि का जीवन जीना है? आप पूछना चाहेंगे, यह कोई चुनाव का प्रश्न है? क्या कोई व्यक्ति व्याधि का जीवन जीना चाहेगा? रोगी होकर जीना चाहेगा? क्या कोई व्यक्ति आधि का जीवन जीना चाहेगा? उपाधि का जीवन जीना चाहेगा? प्रश्न हो सकता है। सहज लगता है प्रश्न। किन्तु उत्तर भी जटिल नही है, बहुत सीधा है। आदमी चाहता है तब बीमार होता है। आदमी चाहता है तब मानसिक उलझनो मे फंसता है और चाहता है तब उपाधि से ग्रस्त होता है। अगर वह न चाहे तो कभी बीमार नही हो सकता, कभी आधिग्रस्त नहीं हो सकता और कभी उपाधिग्रस्त नहीं हो सकता। यह सब चाह पर निर्भर होता है। कठिन है उस चाह को पकड़ना, कठिन है उस चाह को समझना और देखना। हम देखना नहीं जानते। हमारे भीतर एक बीमार होने की चाह जागती है और हम बीमार हो जाते हैं। बिना चाह बीमार कोई नही हो सकता। मन मे चाह जागती है, बीमार हो जाता है आदमी। क्या भोजन का असयम, बहुत खाने की चाह और बीमारी दो बातें हैं? दो नहीं है? मन मे ज्यादा खाने की चाह जागती है, क्या वह बीमारी की चाह नही है? मन मे असयम की चाह जागती है, क्या वह बीमारी नही है? अति काम, अति भोजन, अति लोभ, अति क्रोध करता है, यह सारी बीमारी की चाह है। हम कैसे भेद-रेखा खीचेंगे कि अति भोजन की चाह, अति स्वाद की चाह, अति लोलुपता की चाह तो है और बीमारी की चाह नहीं है। यह नहीं हो सकता। केवल शब्द दो

हैं, अर्थ मे कोई भेद नही है। अति भोजन की चाह का मतलब है, रोगी होने की चाह। जीभ की लोलुपता की चाह का मतलब है, रोगी होने की चाह। असयम की चाह का मतलब है, बीमार होने की चाह। हम इन्हे अलग नही कर सकते, कभी नही कर सकते। कोई आदमी आग मे हाथ डाले और कहे मैं हाथ को जलाना नही चाहता। क्या ऐसा हो सकता है ? अगर उसे हाथ को जलाने की चाह नही है, तो वह हाथ को कभी आग मे नही डालेगा। बहुत स्पष्ट है कि आदमी का आग मे हाथ डालने का मतलब है हाथ जलाना। वह इसमे कोई भेद-रेखा नही खीच सकता कि हाथ को जलाने की चाह तो नही है पर मैं आग मे हाथ डाल रहा हू। जिसके मन मे बीमार होने की चाह नही होती वह बीमार नही होता। यह चाह जाने-अनजाने हर आदमी के मन मे होती है। कोई आदमी देखना जानता है, वह इस चाह को देख लेता है। और जो देखना नही जानता वह इस चाह को देख नही पाता, अनजान मे चाह को टालता जाता है। चाह टलती जाती है। आदमी बीमार होता जाता है और उसको देख नही पाता, समझ नही पाता। अन्तर है केवल देखने का। जिस व्यक्ति मे मानसिक उलझनो मे जाने की चाह नही होती, वह मानसिक उलझन मे नही जाता। मानसिक उलझन इसीलिए होती है कि हमारे मन मे मानसिक उलझनो मे, मानसिक तनाव मे जाने की चाह मौजूद है। अविरति मौजूद है, अतृप्ति मौजूद है। प्रियता और अप्रियता का सवेदन है। जब हमारे भीतर किसी को प्रिय मानने की चाह है और किसी को अप्रिय मानने की चाह भी हमारे भीतर है, तब प्रियता का सवेदन, अप्रियता का सवेदन रहे और मानसिक उलझन न रहे, यह कभी नही हो सकता। हम मानसिक तनाव मे, मानसिक उलझन मे, प्रियता और अप्रियता के सवेदन मे भी कोई अन्तर नही कर सकते। उनके बीच मे कोई भेद-रेखा नही खीच सकते। प्रियता और अप्रियता का सवेदन तथा मानसिक बीमारिया, मानसिक उलझनें, शब्द दो हैं तात्पर्य मे कोई अन्तर नही है। जो क्रोधी होना नही चाहता, क्या वह कभी क्रोधी हो सकता है ? क्रोध उसी व्यक्ति को आएगा जो क्रोधी होना चाहता है। अभिमानी वही बनेगा जो अभिमानी होना चाहता है। कपटी वही बनेगा जिसके मन मे कपट करने की चाह है। लोभी वही बनेगा जिसके मन मे लोभी होने की चाह है। यदि चाह मिट जाए, फिर कोई क्रोधी नही बन सकता। सबसे बडी बीमारी है यह चाह, अतृप्ति, आकाक्षा। आकाक्षा हमारी सबसे बडी बीमारी है। सारी बीमारियो की जड़ मे है आकाक्षा, अविरति। यदि आकाक्षा मिट जाए, अविरति समाप्त हो जाए, तो फिर न प्रमाद होगा, न कषाय होगा और न कोई बीमारी होगी। हम इस सचाई को देखें, इस सचाई को जानें। और जो इस सचाई को जानते है उनके सामने यह प्रश्न जटिल नही बनता कि चुनाव कैसा ?

चाह से प्रेरित है चुनाव

व्याधि, आधि और उपाधि से पीडित होने का चुनाव कौन करेगा? किन्तु आदमी यह चुनाव करता है। वह इसलिए करता है कि उसके भीतर चाह मौजूद है। परन्तु जब मनुष्य को स्वतंत्रता है और वह चुनाव करने मे सक्षम है, तो वह व्याधि, आधि और उपाधि से दूर जाने का चुनाव भी कर सकता है। जब वह व्याधि, आधि और उपाधि से दूर हटकर समाधि का चुनाव करता है तब उसकी सारी जीवन की दिशा बदल जाती है। समाधि कोई अद्‌भुत वस्तु नही है। समाधि कुछ लोगो के लिए नही है। समाधि जीवन के शिखर पर पहुचने के बाद होने वाली घटना नही है। समाधि हमारे जीवन की दिशा है। समाधि हमारे जीवन का मार्ग है। यह जीवन का एक मार्ग है। यह जीवन की एक पद्धति है। जो उस जीवन की पद्धति को समझ लेता है, जीवन की कला को समझ लेता है, जीवन के विज्ञान को समझ लेता है वह शान्त और सहज जीवन जीता है। वह व्यक्ति निर्लिप्त जीवन जीता है। किसी कीचड़ मे रहे हुए कमल के पत्ते का जीवन जीता है कि जिस पर कीचड़ भी गिरता है, पानी भी गिरता है किन्तु टिकता कुछ भी नही, सब कुछ चला जाता है। वह व्यक्ति सूखी भीत का जीवन जीता है कि जिस पर बालू फेंकी, सूखी बालू आई और नीचे गिर गई। कोई लेप नही होगा। ऐसा जीवन जी सकता है।

अपनी खोज

जो व्यक्ति समाधि का चुनाव करता है, उसे अपनी खोज करनी जरूरी है। अपनी खोज किए बिना कोई समाधि को उपलब्ध नहीं हो सकता। अपनी खोज है—'मैं चेतन हूं। मैं अचेतन नहीं हूं।' खोज बहुत सीधी है। अपनी खोज के लिए आपको दूर जाने की जरूरत नहीं। मुझमें चैतन्य है, आनन्द है और शक्ति है। मैं चैतन्यमय हूं, मैं आनन्दमय हूं और मैं शक्तिमय हूं। आनन्द, चैतन्य और शक्ति यह त्रिपुटी मेरा स्वभाव है। बस, इसके सिवाय मेरा कोई स्वभाव नहीं है। जो इन तीन को जान लेता है, वह अपने आपको जान लेता है, सब कुछ जान लेता है। अचेतन में चैतन्य नहीं है, आनद नहीं है। उसमें शक्ति है किन्तु स्वतंत्रतायुक्त शक्ति नहीं है। स्वतंत्रता से जिसका प्रयोग किया जा सके वह शक्ति नहीं है। प्राणी में आनंद, चैतन्य और स्वतंत्रता से प्रयोग की जाने वाली शक्ति है। जिस प्राणी की अपनी विशेषता है वह उसका अपना अस्तित्व है। फिर प्रश्न होगा कि चैतन्य है, पर वह आवरण क्यों? चैतन्य है, मैं जान सकता हूं। कुछ जानता हूं, सामने बैठे लोगों को जानता हूं। भीत के परे नहीं जानता। यह पुस्तक है, टेप रिकार्डर है, माइक है, आदमी बैठे है, मैं जानता हू किन्तु हाल के [illegible]

चक्कर लगा रहे है, इस हॉल का कोई भी भाग ऐसा नही कि जिसमे परमाणुओ का अवार न लगा हो, इसे मैं नही जानता। चैतन्य है तो यह आवरण क्यो ? कुछ जानता हू और कुछ नही जानता।

आवरण : कारण और निवारण

चैतन्य है तो यह आवरण क्यो ? कुछ जानता हू, कुछ नही जानता। व्यवहित को नही जानता—बीच मे पर्दा आ गया, भीत आ गई, नही जानता। सूक्ष्म को नही जानता और दूर को नही जानता। दूर को नही देख सकता। आख की रेज मे जो है उसे देख लेता हू। जो परे है उसे नही देख पाता। इन्द्रियज्ञान की सीमा, मन की सीमा, चित्त की सीमा, बुद्धि की सीमा—सब ज्ञान की सीमाए है। यह क्यो ? जब चैतन्य है तो यह आवरण क्यो ? यह आवरण कैसे मिटे ? प्रश्न खडा होगा।

जब सुख है, आनन्द है तो बाधा क्यो ? बाधा आती है। रोग हो गया, सुख नही रहा। मन की उलझन कोई आई, सुख नही रहा। गुस्सा आ गया, सुख नही रहा। यह क्यो ? सुख निर्बाध क्यो नही है ? अनाबाध सुख क्यो नही है ?

शक्ति है तो शक्ति स्खलित क्यो हो जाती है ? एक काम करने की शक्ति है और दूसरा काम करने की शक्ति नही है। शक्ति मे कितनी स्खलनाये होती है। एक आदमी भार उठा सकता है—एक मन भार उठा लेता है, पांच मन भार नही उठा सकता। एक आदमी पाच मील चल सकता है, दस मील नही चल सकता। रास्ते मे अवरोध आ जाता है। यह क्यो ?

चैतन्य पर आवरण क्यो ? आनन्द मे बाधा क्यो ? शक्ति मे स्खलन क्यो ?—ये तीनो प्रश्न सामने उपस्थित होते हैं।

सन्यासी के पास एक गरीब आदमी पहुचा। याचना की मुद्रा मे बोला—'बाबा कुछ दो। बडा दु खी हू। कुछ दो।' सन्यासी ने कहा—'मेरे पास मागने आया है। मैं क्या दूगा ? मेरे पास पैसा नही है, तुझे क्या दूगा ?' संन्यासी ने टालने का प्रयत्न किया। वह भी पक्का था, टला नही। जमकर बैठ गया कि देना ही होगा। सन्यासी ने एक डिबिया दी। उसने कहा—'डिबिया का क्या करूं ? इसमे क्या है ?' सन्यासी ने कहा इसे खोलो। उसने डिबिया खोली। उसमे एक कपडा और कपडे के भीतर एक पत्थर था। उसने कहा—'पत्थर का क्या करू ?' सन्यासी बोला—'पत्थर नही है। यह पारसमणि है। लोहे को छुआओ तो सोना बन जाएगा। उस आदमी ने डिबिया को लिया, फिर मन मे एक विकल्प उठा, बोला—'बाबा ! बात समझ मे नही आई। यदि इस पारसमणि से लोहा सोना बन जाए, तो आपकी डिबिया भी सोना बन जाती।' तर्क बिल्कुल उचित था। पारसमणि से लोहा यदि सोना बनता है, तो डिबिया सोना क्यो नही बनी ?

संन्यासी ने कहा—'ठीक कहते हो तुम। बुद्धिमान आदमी हो, ठीक कहते हो। पर यह डिबिया इसलिए सोने की नहीं बनी कि पारसमणि और लोहे की डिबिया के बीच एक आवरण पड़ा है। यह कपड़े का आवरण है। इस कपड़े को हटाओ, फिर देखो।' कपड़े को हटाया, आवरण दूर किया और पारसमणि ने डिबिया को छुआ—डिबिया सोने की हो गई।

समाधि के लिए और कुछ नहीं करना है। केवल आवरण को हटाना है। पारसमणि हर व्यक्ति के पास है, मेरे पास भी है और आपके पास भी है। किन्तु एक कपड़े का आवरण बीच में आया हुआ है। आवरण हट जाए तो हर व्यक्ति सोना बन सकता है। केवल आवरण को हटाने की जरूरत है। हमारे ज्ञान पर आवरण है, हमारे दर्शन पर आवरण है। जब तक यह आवरण नहीं हटता तब तक समाधि उपलब्ध नहीं हो सकती। आवरण का हटना और जीवन में समाधि की घटना का घटित होना, एक ही बात है। समाधि के लिए आवरण को हटाना जरूरी है।

अनावरण की साधना

आवरण कैसे हटे? यह एक प्रश्न है। ज्ञान के द्वारा आवरण हट सकता है। आवरण इसलिए आता है कि हम केवल-ज्ञान के अधिकारी नहीं हैं। केवल-ज्ञानी नहीं हैं। जब तक केवल-ज्ञान की साधना नहीं करते, तब तक आवरण नहीं हटता। आवरण को हटाने के लिए, ज्ञान और दर्शन पर आए हुए पर्दे को दूर करने के लिए, केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन की साधना करनी जरूरी है। यहां शिविर में लोग सीखने को आते हैं। उन्हें एक ही बात सीखने को मिलती है। केवल-ज्ञान सीखें और केवल-दर्शन सीखें। लोग आश्चर्य करेंगे कि आज तक तो हमने सुना, यह पांचवां आरा कलिकाल है। आज केवल-ज्ञान नहीं हो सकता और केवल-दर्शन नहीं हो सकता। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि यदि आपको केवल-ज्ञान नहीं होगा, केवल-दर्शन नहीं होगा, तो फिर ध्यान शिविर में आना व्यर्थ होगा। यहां आने की सार्थकता है, आप केवल-ज्ञान सीखें, केवल-दर्शन सीखें। केवल-ज्ञान, केवल-दर्शन, कोरा जानना, कोरा देखना। ज्ञान है, जिसके साथ कोई संवेदन नहीं है। हम केवल-ज्ञान नहीं जानते, केवल-दर्शन नहीं जानते। कोरा नहीं जानते, कोरा नहीं देखते। हर ज्ञान के साथ, हर दर्शन के साथ संवेदन को जोड़ देते हैं। इसलिए आदमी को देखते हैं, पर आदमी को आदमी की दृष्टि से नहीं देखते। आदमी को आदमी की दृष्टि से नहीं जानते। या तो इस दृष्टि से देखते हैं कि यह हमारा प्रिय व्यक्ति है या इस दृष्टि से देखते हैं कि यह हमारा अप्रिय व्यक्ति है। या तो इस दृष्टि से देखते हैं कि यह अच्छा है या इस दृष्टि से देखते हैं कि यह बुरा है। या तो इस दृष्टि से देखते हैं कि यह सुन्दर है या इस दृष्टि से देखते हैं

कि वडा कुरूप है। हम आदमी को केवल आदमी की दृष्टि से देखना नही जानते। हम किसी भी वस्तु को वस्तु की दृष्टि से देखना नही जानते, किन्तु उसके साथ कोई विशेषण जोड़कर देखना जानते हैं। अच्छी बातें, बुरी बातें; मनोज्ञ वस्तु, अमनोज्ञ वस्तु, प्रिय वस्तु, अप्रिय वस्तु, काम की वस्तु, निकम्मी वस्तु। एक विशेषण के साथ वस्तु को देखते हैं, केवल वस्तु को नही देखते। हम किसी भी घटना को घटना की दृष्टि से नही देखते, यथार्थ की दृष्टि से नही देखते। केवल-ज्ञान का अर्थ है—यथार्थ को जानना, केवल सचाई को जानना, जो जैसा है उसको वैसा जानना, उसके साथ और कोई वात नही जोड़ना। हम तो सवेदन को साथ में जोडकर ही देखते हैं। संवेदन को साथ मे जोड़कर ही जानते हैं। न केवल-ज्ञान को जानते है, न केवल-दर्शन को जानते हैं।

साधना का, समाधि का, ध्यान का पहला विन्दु है—केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन। जो व्यक्ति यथार्थ को यथार्थ की दृष्टि से देखना नही जानता, सत्य को केवल सत्य की दृष्टि से देखना नही जानता, घटना को केवल घटना की दृष्टि से देखना नही जानता, उसका आवरण दूर नही हो सकता। आवरण का मूल हेतु है—केवल-ज्ञान न होना, केवल-दर्शन न होना, ज्ञान और दर्शन के साथ, जानने और देखने के साथ सवेदन का जुडा रहना। पानी की प्रणालिका मे पानी की धारा, कोरी पानी की धारा नही, साथ मे कीचड आ रहा है, साथ मे गंदगी भी आ रही है, साथ मे मलिनता आ रही है। यह कोरा पानी नही है। आदमी इस पानी को पीना नही चाहता। आदमी विवेक करता है। यह पीने लायक है या स्नान करने लायक है, या काम मे नही लेने लायक है। पूरा विवेक करता है। आदमी पानी को साफ कर पीता है। केवल पानी पीना चाहता है, पानी के साथ कूड़े-कर्कट को, गदगी को पीना नही चाहता। सवेदन हमारे जीवन का कूड़ा-कर्कट है। प्रियता और अप्रियता का सवेदन कूड़ा कर्कट है। जव तक यह ज्ञान की धारा के साथ-साथ चलता है, तव तक हम समाधि को उपलब्ध नही हो सकते और इन बीमारियो से मुक्त नही हो सकते। आवरण को क्षीण करने के लिए वहुत जरूरी है हम केवल-ज्ञान की साधना करें। केवल-दर्शन की साधना करें। समाधि की साधना केवल-ज्ञान की साधना है। समाधि की साधना केवल-दर्शन की साधना है।

निर्वाध आनन्द की साधना

हम आनन्द को निर्वाध कैसे करें। ऐसे आनन्द को कैसे उपलब्ध हो जिसमे कोई वाधा न आए, रुकावट न आए, कुछ सुख और कुछ दुःख, यह न रहे। निरन्तर सुख, आत्यन्तिक सुख, केवल सुख और सुख और कभी दुःख न आए, हम निर्वाध आनन्द को कैसे उपलब्ध हो सकते हैं? सहज ही प्रश्न होगा। यह

आपको जानना होगा, आनन्द मे बाधा क्यो आती है। बाधा इसलिए आती है कि हमारी दृष्टि सम्यक् नही हैं। दृष्टिकोण सम्यक् नही है। दृष्टि मे सत्य की झलक नही है। इसमे मिथ्यात्व है, इसमे विपर्यय है, विपरीतता है। इस विपर्यय के कारण यह बाधा आती है। होता है सुख देने वाला, मान लेते है दुःख देने वाला। होता है दुःख देने वाला, मान लेते है सुख देने वाला। होता कुछ है और मान कुछ लेते हैं। यह दृष्टि का विपर्यय हमारे सुख को निर्बाध नही होने देता। यह प्रियता और अप्रियता का संवेदन क्यो होता है। एक वस्तु को प्रिय या अप्रिय मानना क्यो होता है। यह होता है हमारी मान्यता के साथ हमारी भ्रान्ति के कारण। वास्तव मे कोई वस्तु प्रिय नही होती, किन्तु एक मिथ्यादृष्टि के कारण एक को प्रिय मान लेता है और दूसरी को अप्रिय मान लेता है। एक बच्चा मिट्टी को कितना प्रिय मानता है। जिस बच्चे मे मिट्टी खाने की आदत होती है उसे लगता है कि दुनिया मे सबसे अच्छी वस्तु कोई है तो मिट्टी है। आप उसे चीनी दें। चीनी छोडेगा, गली मे जाकर मिट्टी चाटने लग जाएगा। बडी प्रिय लगती है। क्यो होता है? अपने ही दृष्टि-विपर्यय के कारण हम यह प्रियता और अप्रियता का आरोप कर लेते हैं। एक आदमी को गाली देने मे इतना आनन्द आता है, इतनी प्रिय लगती है कि दिन मे दस-बीस बार गाली न दे तो शायद भोजन ही हजम नही हो। उसे ऐसा लगता है कि आज का दिन व्यर्थ चला गया। दिन मे दो-चार बार लडाई न करे, दिन मे दो-चार बार गाली-गलौज न करे तो उसे लगता है कि आज किस आदमी का मुह देखा कि सारा दिन व्यर्थ चला गया।

पति और पत्नी दोनो मे लडाई हो रही थी। एक दूसरे को गालिया दे रहे थे। एक पडोसी पहुच गया अचानक, उसने सब कुछ देखा। पडोसी ने पूछा—'क्यो लड रहे है ?' पति ने कहा—'क्या करें।' बहुत दिन हो गये साथ रहते-रहते। जीवन मे नीरसता आ गई, रूखापन आ गया, सुस्ती-सी आ गई। सोचा साथी है तो एक बार लड लें, जी भर लड लें तो फिर नया जीवन शुरू होगा, नई ताजगी आ जाएगी।

न जाने आदमी ने प्रियता और अप्रियता के कैसे मानदण्ड बना रखे है ? जिस प्रकार एक बात को प्रिय मान लेता है और दूसरी को अप्रिय मान लेता है। जब तक यह प्रियता और अप्रियता का व्यवहार बना रहेगा और यह मिथ्या दृष्टिकोण बना रहेगा, तब तक हमारा आनन्द निर्बाध नही हो सकेगा। इन बाधाओ को नही रोका जा सकता। एक बात, एक वस्तु एक व्यक्ति और एक घटना सामने आयी, मन मे प्रियता जाग गयी, सुख का भाव जागा और दूसरी बात, दूसरी वस्तु, दूसरा व्यक्ति और दूसरी घटना सामने आयी और मन मे अप्रियता का भाव जाग गया। यह सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख का चक्र चलता रहता

रहेगा तव तक निर्वाध सुख नही होगा। निर्वाध सुख के लिए दृष्टि को सम्यक् करना भी वहुत जरूरी है।

अस्खलित शक्ति की साधना

हमारी शक्ति स्खलित क्यो होती है ? शक्ति मे वाधा क्यो आती है ? वहुत मूल्यवान् प्रश्न है। हमारी सारी जीवन की पद्धति को दिशा देने वाला और वदलने वाला प्रश्न है कि शक्ति मे वाधा क्यो आती है ? शक्ति मे इसलिए अवरोध और रुकावट आती है, हमारी शक्ति इसलिए स्खलित हो जाती है कि हम दूसरो के सुखो को कुचलने मे रस लेते है, दूसरो की शक्ति को क्षति पहुचाने मे हमारा रस है। हर आदमी दूसरे की शक्ति को क्षति पहुचाना चाहता है। हर व्यक्ति यह चाहता है कि दूसरा मुझसे वडा न वने और जहा भी वडा वनने लगता है उसके पख काटने का प्रयत्न होता है, उसके पैर तोडने का प्रयत्न होता है और उसे पीछे ढकेल दिया जाता है। मालिक कव चाहता है मुनीम उसके वरावर वन जाए या उससे आगे चला जाए। औरो की वात छोड दे, पिता भी नही चाहता कि वेटा उससे आगे चला जाए। पति कभी नही चाहता कि पत्नी उस पर हावी हो जाए।

कोई मुझसे वडा वन जाए, यह किसी को पसन्द नही है। हर व्यक्ति दूसरे को नीचे रखना चाहता है। अपने कन्धे के वरावर कोई दूसरा कन्धा मिलाए, वह उसे अच्छा नही लगता। कन्धा थोडा नीचे रहे तो सतोप होता है, अच्छा लगता है। अपना मकान सबसे ऊचा रहे। अपनी मोटर-कार सवसे वडी रहे। अपना घर सवसे वडा रहे। अपने कपडे सवसे वढिया रहे यानी अपनी हर वात सवसे ऊची रहे और दुनिया यह माने कि यह सवसे वडा आदमी है तव वडा सतोप का अनुभव होता है। और जव यह वात आ जाए कि सब वेरावर, तो ऐसा लगता है कि जीने और मरने मे कोई फर्क नही पडेगा। धन कमाया या नही कमाया, कोई सार नही है। जव सब वरावर तव फिर मतलव ही क्या रह गया ? यह धन की सारी लालसा, वैभव वढाने की कामना, पदार्थ जुटाने की भावना और सवसे मूल्यवान् वस्तु खरीदने की कामना इसलिए है कि मैं अकेला दीखू, अकेला चमकू। सवको ऐसा लगे कि यह सवसे वडा आदमी है।

कवि ने कहा—'सूर्य ! तू मुझे अच्छा नही लगता।' सूर्य ने कहा—'अरे भई, क्यो नही लगता। क्या मैं प्रकाश नही करता ? सारी दुनिया का अधकार नही मिटाता ? क्या मै सोये पडे मनुष्यो को ८. .ा नही देता ? फिर क्यो नही अच्छा लगता।' उसने कहा—'मैं मानता हू, तुम अधकार को मिटाते हो। तुम मनुष्यो के भय को मिटाते हो, तुम नीद से उठाते हो और जागरण देते हो, फिर भी तुम अच्छे नहीं लगते।' 'अरे ! फिर मै क्या दू ? इतना वडा काम करने पर भी मैं अच्छा नही लगता ?' उसने कहा —'विल्कुल अच्छे नही लगते। क्योकि तुम

आपको जानना होगा, आनन्द मे वाधा क्यो आती है। वाधा इसलिए आती है कि हमारी दृष्टि सम्यक् नही हैं। दृष्टिकोण सम्यक् नही है। दृष्टि मे सत्य की झलक नही है। इसमे मिथ्यात्व है, इसमे विपर्यय है, विपरीतता है। इस विपर्यय के कारण यह वाधा आती है। होता है सुख देने वाला, मान लेते है दु ख देने वाला। होता है दु.ख देने वाला, मान लेते है सुख देने वाला। होता कुछ है और मान कुछ लेते हैं। यह दृष्टि का विपर्यय हमारे सुख को निर्वाध नही होने देता। यह प्रियता और अप्रियता का सवेदन क्यो होता हैं। एक वस्तु को प्रिय या अप्रिय मानना क्यो होता है। यह होता है हमारी मान्यता के साथ हमारी भ्रान्ति के कारण। वास्तव मे कोई वस्तु प्रिय नही होती, किन्तु एक मिथ्यादृष्टि के कारण एक को प्रिय मान लेता है और दूसरी को अप्रिय मान लेता है। एक वच्चा मिट्टी को कितना प्रिय मानता है। जिस वच्चे मे मिट्टी खाने की आदत होती है उसे लगता है कि दुनिया मे सवसे अच्छी वस्तु कोई है तो मिट्टी है। आप उसे चीनी दें। चीनी छोड़ेगा, गली मे जाकर मिट्टी चाटने लग जाएगा। वड़ी प्रिय लगती है। क्यो होता है? अपने ही दृष्टि-विपर्यय के कारण हम यह प्रियता और अप्रियता का आरोप कर लेते है। एक आदमी को गाली देने मे इतना आनन्द आता है, इतनी प्रिय लगती है कि दिन मे दस-वीस वार गाली न दे तो शायद भोजन ही हजम नही हो। उसें ऐसा लगता है कि आज का दिन व्यर्थ चला गया। दिन मे दो-चार वार लडाई न करे, दिन मे दो-चार वार गाली-गलौज न करे तो उसे लगता है कि आज किस आदमी का मुह देखा कि सारा दिन फालतू चला गया।

पति और पत्नी दोनो मे लड़ाई हो रही थी। एक दूसरे को गालिया दे रहे थे। एक पड़ोसी पहुंच गया अचानक, उसने सव कुछ देखा। पडोसी ने पूछा—'क्यो लड़ रहे है।' पति ने कहा—'क्या करें।' वहुत दिन हो गये साथ रहते-रहते। जीवन मे नीरसता आ गई, रूखापन आ गया, सुस्ती-सी आ गई। चुस्ती लानी है तो एक वार लड़ लें, जी भर लड़ ले तो फिर नया जीवन शुरू होगा, नई ताजगी आ जाएगी।

न जाने आदमी ने प्रियता और अप्रियता के कैसे मानदण्ड वना रखे हैं? किस प्रकार एक वात को प्रिय मान लेता है और दूसरी को अप्रिय मान लेता है। जव तक यह प्रियता और अप्रियता का सवाल वना रहेगा और यह मिथ्या दृष्टिकोण वना रहेगा, तव तक हमारा आनन्द निर्वाध नही हो सकेगा। इन वाधाओ को नही रोका जा सकता। एक वात, एक वस्तु, एक व्यक्ति और एक घटना सामने आयी, मन में प्रियता जाग गयी, सुख का भाव जागा और दूसरी वात, दूसरी वस्तु, दूसरा व्यक्ति और दूसरी घटना सामने आयी और मन मे अप्रियता का भाव जाग गया। यह सुख के वाद दुःख और दु.ख के वाद सुख का चक्र जव तक चलता

रहेगा तव तक निर्वाध सुख नही होगा। निर्वाध सुख के लिए दृष्टि को सम्यक् करना भी वहुत जरूरी है।

अस्खलित शक्ति की साधना

हमारी शक्ति स्खलित क्यो होती है ? शक्ति मे वाधा क्यो आती है ? वहुत मूल्यवान् प्रश्न है। हमारी सारी जीवन की पद्धति को दिशा देने वाला और वदलने वाला प्रश्न है कि शक्ति मे वाधा क्यो आती है ? शक्ति मे इसलिए अवरोध और रुकावट आती है, हमारी शक्ति इसलिए स्खलित हो जाती है कि हम दूसरो के सुखो को कुचलने मे रस लेते है, दूसरो की शक्ति को क्षति पहुचाने मे हमारा रस है। हर आदमी दूसरे की शक्ति को क्षति पहुचाना चाहता है। हर व्यक्ति यह चाहता है कि दूसरा मुझसे वडा न वने और जहा भी वडा वनने लगता है उसके पख काटने का प्रयत्न होता है, उसके पैर तोडने का प्रयत्न होता है और उसे पीछे ढकेल दिया जाता है। मालिक कव चाहता है मुनीम उसके वरावर वन जाए या उससे आगे चला जाए। औरो की वात छोड दे, पिता भी नही चाहता कि वेटा उससे आगे चला जाए। पति कभी नही चाहता कि पत्नी उस पर हावी हो जाए।

कोई मुझसे वडा वन जाए, यह किसी को पसन्द नही है। हर व्यक्ति दूसरे को नीचे रखना चाहता है। अपने कन्धे के वरावर कोई दूसरा कन्धा मिलाए, वह उसे अच्छा नही लगता। कन्धा थोडा नीचे रहे तो सतोष होता है, अच्छा लगता है। अपना मकान सवसे ऊचा रहे। अपनी मोटर-कार सवसे वडी रहे। अपना घर सवसे वडा रहे। अपने कपडे सवसे वढिया रहें यानी अपनी हर वात सवसे ऊची रहे और दुनिया यह माने कि यह सवसे वडा आदमी है तव वडा सतोष का अनुभव होता है। और जव यह वात आ जाए कि सव वरावर, तो ऐसा लगता है कि जीने और मरने मे कोई फर्क नही पडेगा। धन कमाया या नही कमाया, कोई सार नही है। जव सव वरावर तव फिर मतलव ही क्या रह गया ? यह धन की सारी लालसा, वैभव वढाने की कामना, पदार्थ जुटाने की भावना और सवसे मूल्यवान् वस्तु खरीदने की कामना इसलिए है कि मैं अकेला दीखू, अकेला चमकू। सवको ऐसा लगे कि यह सवसे वडा आदमी है।

कवि ने कहा—'सूर्य ! तू मुझे अच्छा नही लगता।' सूर्य ने कहा—'अरे भई, क्यो नही लगता। क्या मै प्रकाश नही करता ? सारी दुनिया का अधकार नही मिटाता ? क्या मै सोये पडे मनुष्यो को ज. .ा नही देता ? फिर क्यो नही अच्छा लगता।' उसने कहा—'मै मानता हू, तुम अधकार को मिटाते हो। तुम मनुष्यो के भय को मिटाते हो, तुम नीद से उठाते हो और जागरण देते हो, फिर भी तुम अच्छे नहीं लगते।' 'अरे ! फिर मैं क्या दू ? इतना वडा काम करने पर भी मैं अच्छा नही लगता ?' उसने कहा —'विल्कुल अच्छे नही लगते। क्योकि तुम अपने सारे

जाति-भाइयो को दवाकर केवल अकेले चमकना चाहता हो। सारे तारो, ग्रहो, नक्षत्रो, पूरे सौरमडल को, इस नक्षत्र परिवार को अस्त कर, आकाश मे केवल अकेले चमकना चाहते हो। इसलिए अच्छे नही लगते।'

मनुष्य की प्रकृति है कि वह दूसरो को हेठा कर, नीचा कर, दबा कर, छिपा कर, अपने से हीन, कमजोर वनाकर और केवल अकेला वढ़ना चाहता है। यह मनोवृत्ति नही मिटती तव तक हमारी शक्ति असीम नही हो सकती, निर्वाध नही हो सकती, शक्ति का अवरोध समाप्त नही हो सकता।

निष्कर्ष

चैतन्य है, आनन्द है और शक्ति है। चैतन्य पर आवरण है। आनन्द पर वाधा है और शक्ति पर अवरोध है। ये तीनो उसके विघ्न है। इन विघ्नो को मिटाने के लिए समाधि की साधना जरूरी है। हमारा चैतन्य अनावृत वने, हमारा आनन्द निर्वाध वने और हमारी शक्ति अप्रतिहत वने, अस्खलित वने, अवरोधशून्य वने, इसलिए समाधि की साधना जरूरी है। जव हम समाधि की साधना करते हैं—केवल जानते हैं, केवल देखते है, प्रियता और अप्रियता के सवेदन से मुक्त होते हैं, दूसरो के हितो को क्षति नही पहुचाते, दूसरो के हितो मे वाधा, विघ्न नही डालते तव हमारा चैतन्य अनावृत होता है, आनन्द अनावाध होता है और शक्ति अवरोध-शून्य होती है। इसकी साधना ही समाधि की साधना है।

२ . केवल-दर्शन की साधना

१. देखना सीखें। देखना तब जब अर्थ का स्पर्श हो, शब्द का स्पर्श न हो।
२. 'है'—केवल अस्तित्व।
३. 'अमुक है'—अस्तित्व गौण, पर्याय मुख्य।
४. ज्ञेय की दृष्टि से—दर्शन से ज्ञान की ओर जाना—विकास।
५. ध्येय की दृष्टि से—ज्ञान से दर्शन की ओर जाना—विकास।
६. दर्शन—विकल्प-शून्य, अतः राग-द्वेष, प्रियता-अप्रियता आदि से शून्य।
७. उदासीन दर्शन ध्यान है।
८. उदासीन ज्ञान भी ध्यान है।

दो

देखना सीखे

चेतना पर जो पर्दा है उसे हटाना सबको अच्छा लगता है। चेतना अनावृत हो, यह जरूरी है। उसे अनावृत करने के लिए केवल-दर्शन की साधना करनी होगी, केवल-ज्ञान की साधना करनी होगी। केवल-दर्शन की साधना किये बिना चेतना का आवरण दूर नही हो सकता। केवल-ज्ञान की साधना किये बिना चेतना का आवरण दूर नही हो सकता। पहले केवल-दर्शन की साधना फिर केवल ज्ञान की साधना। देखना सीखे। प्रेक्षा का अर्थ है—देखना। हम विचार करना जानते हैं, याद करना जानते हैं, कल्पना करना जानते हैं, मनन करना जानते है, किन्तु देखना नही जानते। जो आदमी देखना नही जानता, वह आवरण को दूर नही कर सकता। प्रश्न होगा देखना क्या है ? क्या आखो से देखना ही देखना है ? अगर आंखो से देखना ही देखना है तो सब आदमी देखते है। जिन्हे आखे उपलब्ध है, जो आखे खुली रखते है, वे सब देखते है। कोई भी चक्षुष्मान् आदमी नही होगा जो न देखता हो। सब देखते है। हर आदमी देखता है। तो फिर क्या अद्भुत बात है जो हम देखना सीखें ? आखो से देखना देखना नही है। यह केवल-दर्शन नही है। देखना कुछ और है। जब हमारी चेतना की प्रवृत्ति होती है, चेतना सक्रिय होती है, किन्तु उसके साथ कोई विकल्प नही होता, कोई शब्द नही होता, कोई कल्पना नही होती, कोई विचार नही होता, कोई चिन्तन नही होता, कोई मनन नही होता, कोई स्वप्न नही होता, उस चेतना का उपयोग या सक्रियता का नाम है—देखना। देखने मे केवल देखना होता है, कोरा अनुभव होता है, और कुछ भी नही होता। हम देखना कहा जानते है ? एक क्षण के लिए श्वास को देखने के लिए बैठते है, तो देखना बन्द हो जाता है। या तो स्मृति के पर्दे उभरते है—स्मृतिया आने लग जाती है, या कल्पनाए शुरु हो जाती है, चिन्तन शुरु हो जाता है, देखना बन्द हो जाता है। देखना, दर्शन हमारी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। आत्म-चेतना की सहज प्रवृत्ति है देखना और जानना। देखना और जानना दो बातें हैं। दर्शन और ज्ञान ये

दो है। प्रश्न होगा देखने और जानने मे क्या फर्क पडता है? हम देखते है तव जानते है, जानते है तव देखते है, किन्तु ऐसा नही है। हृदय निरन्तर धडकता है। हृदय वन्द नही होता। जव तक आदमी जीता है, हृदय गति करता रहता है, धडकता है, किन्तु आपको पता है कि यदि हृदय निरन्तर धडकता रहे, तो हृदय टूट जाये, चल नही सकता। कोई भी शक्ति इस ससार मे निरन्तर गतिशील नही रह सकती। हृदय धडकता है और धडकने के साथ-साथ एक क्षण विश्राम लेता है। प्रत्येक धडकन के अन्तराल मे एक विश्राम होता है। धडकता है, विश्राम लेता है, फिर धडकता है फिर विश्राम लेता है, वह विश्राम लेता है इसीलिए धडकता है। यदि वह विश्राम वन्द हो जाये, धडकन निरन्तर हो जाये, अन्तराल कोई न रहे, तो हृदय की गति हो नही सकती। शक्ति का रहस्य है—गति और विश्राम। चलना और विश्राम करना, चलना और विश्राम करना, फैलना और सिकुडना—यह गति का सूत्र है। हठयोग के आचार्य ने एक प्रयोग की खोज की। उसका नाम है—अश्विनी मुद्रा। घोडे को देखकर उन्होने एक खोज की। आज का विज्ञान भी शक्ति का माप घोडे से करता है—अश्व-शक्ति। घोडे मे शक्ति कहा से आती है? घोडे का जो गुदा का भाग है वह सिकुडता है और फैलता है, सिकुडता है और फैलता है। वह उसकी शक्ति का रहस्य है। इस आधार पर हठयोग के आचार्यों ने अश्विनी मुद्रा की खोज की। अश्विनी मुद्रा का मतलव गुदा के भाग को सिकोडना और फैलाना, सिकोडना और फैलाना है। इससे अधिक शक्ति पैदा होती है। शक्ति का रहस्य है सिकोडना और फैलाना। निरन्तर कोई फैलता है और गति करता है, सिकोडना नही जानता, वह टूट जाता है, शक्ति का सचय नही कर पात । शक्ति-सचय के लिए ये दोनो वाते जरूरी है। चेतना की शक्ति का भी यही रहस्य है। चेतना की शक्ति का यही सूत्र है। वह फैलती है, सिकुडती है, फिर फैलती है, फिर सिकुडती है। चेतना के विस्तार का नाम है—ज्ञान और चेतना के सिकुडने का, स्वकेन्द्रित होने का नाम है—दर्शन। जव चेतना सिकुड़ती है, तो दर्शन होता है। चेतना फैलती है, तो वह ज्ञान वन जाती है। एक ही चेतना की दो अवस्थाओ के दो नाम है। सिकुडने का नाम है—दर्शन और फैलने का नाम है—ज्ञान। चेतना का विस्तार होना है ज्ञान और चेतना का सिकुडना, स्वकेन्द्रित होना, अपने आप मे सिकुडना वह है—दर्शन।

ज्ञान चेतना · दर्शन चेतना

चेतना चेतना है। वह ज्ञान को पैदा करती है। दर्शन ज्ञान को जन्म देता है। दर्शन से ज्ञान उत्पन्न होता है। दर्शन होता है तव ज्ञान होता है। यदि दर्शन न हो, ज्ञान नही हो सकता। सबसे पहले हमारी चेतना का व्यापार दर्शन होता है। आदमी चलता है। सामने कोई दूसरा आदमी आता है सबसे पहले देखता है। देखने के वाद

मन मे फिर विकल्प उठता है। पहले कोई विकल्प नही होता। पहले केवल देखता है। ध्यान से देखता है फिर विकल्प पैदा होते है। वस्तु को देखें, किसी व्यक्ति को देखे या किसी घटना को देखें, किसी को भी देखें पहले विचारशून्यता की अवस्था होगी, फिर विकल्प-दशा होगी। देखने के बाद फिर विकल्प चालू होते हैं। फिर विकल्पों का तांता लगता है। यह कौन है ? आदमी है। कहा का है ? वेश-भूषा कैसी है ? कहा से आया है ? क्या इससे बात करें ? इससे पूछें ? इससे सपर्क स्थापित करें ? नाना प्रकार के विकल्प पैदा होते है। और विकल्पों का जाल बिछ जाता है। ये सब दर्शन के पश्चात् होते हैं। पहले केवल दर्शन होता है। हम प्रेक्षा को इतना मूल्य क्यो देना चाहते है। प्रेक्षा का मूल्य क्यों है ? इसीलिए कि हमारी सारी समस्याए ज्ञान के द्वारा उत्पन्न होती हैं। और यदि हम समस्याओ का समाधान चाहते है, तो हमे दर्शन की भूमिका पर भी जाना होगा। हमारी सारी कठिनाइयां ज्ञान के द्वारा उत्पन्न होती है। हम उन कठिनाइयो को समाप्त करना चाहे, तो हमे दर्शन की भूमिका पर जाना होगा। हमारे सारे मानसिक तनाव ज्ञान के द्वारा उत्पन्न होते है। यदि हम मानसिक तनावों से बचना चाहते है, तो हमे दर्शन की भूमिका पर जाना होगा। हमारी शक्तिया बहुत क्षीण होती है। यदि हम शक्तियों को सुरक्षित रखना चाहते है, सचित रखना चाहते है, शक्ति-सचय को समाप्त करना नही चाहते तो हमे दर्शन की भूमिका पर जाना होगा। दर्शन मे केवल अस्तित्व हमारे सामने होता है, कोरा अस्तित्व। और जहा कोरा अस्तित्व होता है वहा शक्ति का व्यय नही होता। ज्ञान मे अस्तित्व गौण हो जाता है और विकल्प प्रधान बन जाता है। वहां मन की शक्ति खर्च होती है, वाणी की शक्ति खर्च होती है, शरीर की शक्ति खर्च होती है और नाडी-सस्थान की शक्तिया खर्च होती है। शक्ति-व्यय को रोकने के लिए ज्ञान की भूमिका से हटकर दर्शन की भूमिका मे जाने की कला हमे सीखनी होगी।

प्रयोजन का मूल्य

मालवीयजी एक धनपति के पास गए। बडा धनपति था। धनपति ने सत्कार किया, पडित मदनमोहन मालवीय घर पर आए हैं, बडा सम्मान किया। पास मे बैठाया। देखते है कि बच्चा खेल रहा है। दियासलाई की पेटी हाथ मे है। एक दियासलाई निकालता है, जलाता है और एक लकडी को जला देता है। सेठ ने बीच मे ही उठकर बच्चे को एक चाटा मार दिया। अपना लड़का, प्यारा लडका। सेठ फिर आकर बैठ गया। मालवीयजी बोले—'अब मैं जा रहा हू।' सेठ बोला—'आप क्यो आए थे ? और क्यो जा रहे है ? आने का कोई प्रयोजन आपने नही बताया ? आप किसलिए वापस जा रहे हैं ?' मालवीयजी ने कहा—'आया था प्रयोजन से, पर अब मैं कहना नही चाहता। मन मे सोचा था कि हिन्दू विश्व-

विद्यालय वन रहा है। तुम्हारे पास बडा चन्दा लेने की आशा से आया था, किन्तु तुम तो इतने कृपण हो कि एक लकडी जला देने पर वच्चे को तुमने चाटा मार दिया। तुम मुझे क्या चदा दोगे ? सेठ ने तत्काल पचास हजार का चैक दे दिया। मालवीय जी समझ नही पाये कि यह क्या है ? वे वोले—'सेठजी ! तुम्हारे वारे मे मेरे मन मे एक भावना वन गई थी कि जो व्यक्ति एक लकडी जला देने के कारण वच्चे को चाटा जड देता है, वह क्या चदा देगा ?' सेठ वोला—'आप इस वात को नही जानते, मैं जानता हू। व्यर्थ का नुकसान मैं एक पाई का भी नही कर सकता और जहा प्रयोजन हो वहा पचास हजार भी दिया जा सकता है। और एक लाख भी दिया जा सकता है।' मालवीय जी उसकी वात सुनकर आश्चर्य चकित रह गए।

शक्ति का निरर्थक खर्च

यह बहुत वडा निदर्शन है, दर्शन है। आदमी व्यर्थ मे ही शक्ति का वहुत खर्च करता है। शक्ति को जलाता रहता है। एक दियासलाई जलाई और एक लकड़ी जलाई। एक लकडी ही नही जलती, फिर लकडिया ही जलती चली जाती हैं। हम अपनी शक्ति का कितना अपव्यय करते हैं, लाभ कुछ भी नही उठाते। जहा लाभ मिले, कोई फल मिले, शक्ति का व्यय हो तो वात समझ में आती है। शक्ति केवल रखने के लिए नही होती, केवल भडार मे पडे रहने के लिए नही होती, शक्ति उपयोग के लिए होती है, किन्तु जहा शक्ति का उपयोग न हो और निकम्मा खर्च हो, वह वात एक पैसे की भी सहन नही हो सकती। कोई भी समझदार व्यक्ति इस वात को सहन नही करता कि व्यर्थ मे शक्ति का एक कण भी उपयोग मे लाया जाये। मैं भी जानता हूं और आप भी जानते हैं कि शक्ति का कितना निरर्थक व्यय होता है। काम करने मे पाच प्रतिशत शक्ति का व्यय होता है तो पिचानवें प्रतिशत शक्ति का व्यय विकल्पो की कल्पना मे होता है। काम करना है। पाच प्रतिशत शक्ति की जरूरत है, किन्तु इतने विकल्प आते है कि पिचानवें प्रतिशत शक्ति खर्च हो जाती है।

जीवन की यात्रा चलाने के लिए जितनी शक्ति की जरूरत होती है वह शक्ति प्रतिदिन पैदा की जा सकती है। प्रत्येक कोशिका के पास अपनी अश्व-शक्ति है और प्रत्येक कोशिका अपनी जरूरत के अनुसार शक्ति पैदा कर लेती है, किन्तु जीवन यात्रा के लिए ही हम शक्ति का व्यय नही करते, शक्ति का व्यय तो विना जरूरत भी करते है। काम करना था एक मिनट का और चिन्तन शुरू किया काम हो गया। किन्तु काम अब सिर पर सवार हो गया। विकल्प चलता रहता है, चलता रहता है, चलता ही रहता है। विस्मृत नही होता। याद आता रहता है। सताता रहता है।

स्मृति का भार

दो भिक्षु जा रहे थे। रास्ते मे नदी आ गई। नदी के तट पर खडे थे। इतने मे एक सुन्दर युवती आई। उसने कहा—मैं भी पार जाना चाहती हू। किन्तु चल नही सकती, डर लगता है। आप मुझे पार करा दे, कोई नौका दिखायी नही दे रही है। सन्यासी थे। करुणा आ गई। एक ने कहा—मेरे कन्धे पर बैठ जाओ, तुम्हें पार करा देता हू। उसे पार करा दिया। युवती चली गई। दोनो सन्यासी साथ चल रहे है। दूसरे ने कहा—यह अच्छा काम नही किया। स्त्री को अपने कन्धे पर बैठाया, अच्छा काम नही किया। सुन लिया। फिर आगे गये। दो माइल चले, और वह सन्यासी बोला—देखो भाई! मैं फिर तुम्हें कह देना चाहता हू कि तुमने अच्छा काम नही किया। सुन लिया। स्थान पर पहुचे। पहुचते ही उस सन्यासी ने फिर कहा—आज तुमने रास्ते मे अच्छा काम नही किया। भोजन का समय हुआ और खाने बैठे तो उसने फिर वही गाना शुरू किया—तुमने रास्ते मे अच्छा काम नही किया। सन्यासी से रहा नही गया, बोला—मैं तो उस युवती को कन्धे पर बैठाकर नदी पार कराकर वही छोड आया, किन्तु तुम तो अभी भी उसका भार सिर पर लिए घूम रहे हो।

ज्ञान · मूल्यांकन का विस्तार

काम समाप्त हो जाता है, कल्पना समाप्त नही होती। प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है, विकल्प समाप्त नही होता। घटना समाप्त हो जाती है, घटना का झकार समाप्त नही होता। नाद समाप्त हो जाता है किन्तु उसकी प्रतिध्वनि समाप्त नही होती। ये प्रतिध्वनिया ही हमारी शक्ति को खत्म करती है। अस्तित्व-बोध जहा होता है, जहा दर्शन होता है, केवल देखना होता है वहा कोई प्रतिध्वनि नही होती। वहा कोई प्रतिक्रिया नही होती। वहा कोई प्रतिनाद नही होता। वहा केवल क्रिया होती है, प्रतिक्रिया नहीं होती। वहा कोरा अस्तित्व का बोध होता है, जिसके साथ कोई विकल्प नही जुडता, कोई शब्द नही जुडता। अस्तित्व के बोध मे कोई शब्द नही होता और जब ज्ञान होता है तो उसके साथ शब्द जुड जाता है। 'है', 'है'। दर्शन इतना ही है। केवल 'है', यह है दर्शन। इतना अनुभव होता है कि 'है', इससे आगे कुछ भी नहीं। किन्तु जहा 'अमुक है', यह शब्द जुड गया, वह ज्ञान बन गया। चेतन है, अचेतन है, शब्द है, रूप है, रस है, गन्ध है और स्पर्श है—ये सारे विकल्प ज्ञान के होते है। जहा केवल 'है' वहा दर्शन है। 'आदमी है'—यह दर्शन है। 'यह अच्छा आदमी है', 'यह बुरा आदमी है', यह सारा ज्ञान हो गया। विकल्प साथ मे जुड गया। यह सुन्दर है, यह कुरूप है, बडा आदमी है, छोटा आदमी है, बडा विद्वान् है, मूर्ख है, विकल्प जुड गया,

शब्द जुड गया, दर्शन नही रहा, ज्ञान बन गया और जैसे ही विकल्प साथ मे जुडा, एक दूसरी धारा प्रवाहित हो गई। विकल्प जुडने का अर्थ है—राग-द्वेष का जुड जाना। जहा विकल्प जुडते हैं वहा साथ मे राग और द्वेष जुड़ जाते है। जहा केवल-दर्शन होता है वहा न राग होता है और न द्वेष। न प्रियता और न अप्रियता, कोई सवेदन नही होता। कुछ भी नही होता। केवल 'है' होता है। 'है' के सिवाय और कुछ नही होता। 'है' अस्तित्व है, अस्ति है। उसमे और कोई भेद नही होता। जब आदमी अस्ति की भूमिका मे होता है, कोई समस्या नही होती, कोई कठिनाई नही होती, कोई दु ख नही होता और कोई सुख भी नही होता। केवल 'होता है', इसके सिवाय और कुछ नही होता। एक काच काच होता है, मणि मणि होता है। घोड़ा घोडा होता है। गधा गधा होता है। आदमी आदमी होता है। पशु पशु होता है। 'होता है' इसके सिवाय कुछ नही होता। कोई मूल्याकन नही होता। ये मूल्याकन की दृष्टिया सारी रागात्मक और द्वेषात्मक मूल्यो के कारण बनती है। यदि हमारो बुद्धि मे रागात्मक भावना का जन्म न हो, यदि हमारी दृष्टि मे द्वेषात्मक भावना का जन्म न हो, यदि हमारी दृष्टि मे प्रियता-अप्रियता का जन्म न हो तो मूल्याकन का यह विस्तार नही हो सकता। हमने इन मूल्याकनो के कारण कितने भेदो का विस्तार कर दिया? कितना जाल बिछा दिया और कितनी कठिनाइया पैदा कर दी? व्यवहार की भूमिका पर जीने वाला आदमी सोचता है यदि यह मूल्य समाप्त हो जाए तो हमारी सारी प्रवृत्तिया समाप्त हो जायें। यदि गधे मे और घोडे मे कोई अन्तर न रहे तो फिर घोडे पर चढने वाला बडा आदमी और गधे पर चढने वाला कुम्हार नही हो सकता, छोटा आदमी नही हो सकता। यदि सुरूप और कुरूप का कोई अन्तर न रहे तो फिर कोई भी आदमी विवाह के लिए खोज करने को नही निकलेगा। जो भी लड़की मिल गई, जो जैसा लडका मिल गया, और विवाह संपन्न हो गया। खोज की कोई जरूरत नही होगी। यदि काच मे और मणि मे अन्तर न हो तो कोई जौहरी नही बनेगा और काच का फिर कम मूल्य नही होगा। जौहरी कौन होता है? वह होता है जो काच और मणि मे अन्तर करता है। काच का मूल्य कम करता है और मणि का मूल्य ज्यादा करता है। वह जौहरी अकुशल परीक्षक होता है जिसे पता ही नही कि काच का क्या मूल्य होगा और मणि का क्या मूल्य होगा?

वही जब एक परीक्षक की दृष्टि मे आता है तो उसका मूल्य हो जाता है। हमारे सारे मूल्य समाप्त हो जाते, समाज के सारे मूल्य समाप्त हो जाते यदि यह विकल्प की स्थिति समाप्त हो जाती। जब तक व्यक्ति नही जानता तब तक उसके लिए काच और रत्न एक होता है, किन्तु जब जान जाता है, काच काच हो जाता है, रत्न रत्न हो जाता है। यदि हम दर्शन की भूमिका मे चले जायें, निर्विकल्प की भूमिका मे चले जायें, हमारे व्यवहार के सारे मूल्य समाप्त हो जाए तो फिर काच

काच, रत्न रत्न नही होगा, दोनो मे कोई अन्तर नही होगा। काच कोरा काच होगा, रत्न कोरा रत्न होगा। किन्तु न काच का अवमूल्यन होगा, न रत्न का मूल्याकन होगा।

ज्ञान—विकास की भूमिका
दर्शन—अविकास की भूमिका

क्या हम इस विकास की भूमिका को छोड़कर फिर अविकास की भूमिका मे चले जाना चाहते हैं? दर्शन से ज्ञान की भूमिका मे जाने का मतलब है विकास की भूमिका मे जाना। और ज्ञान से दर्शन की भूमिका मे आने का मतलब है अविकास की भूमिका मे आना। हम क्या चाहते है? सामाजिक विकास चाहते है या समाज को फिर से दस-बीस हजार वर्ष की पुरानी अवस्था मे ले जाना चाहते है? क्या चाहते है आखिर? यदि विकास चाहते है तो हमे ज्ञान की भूमिका मे जीना होगा, कल्पनाओ के साथ, वृत्तियो के साथ इन सामाजिक मूल्यो के साथ जीना होगा और यदि हम अविकास चाहते है तो हमे वहा लौटना होगा जहा स्मृतिया नही, विकल्प नही, कल्पनाए नही ओर सामाजिक मूल्य भी समाप्त। आखिर क्या चाहते हैं? इस प्रश्न की समीक्षा मे मेरे सामने दो रास्ते हैं, एक ज्ञेय का और दूसरा ध्येय का। एक ज्ञान का और दूसरा ध्यान का। ज्ञान के साथ ज्ञेय का सवध है, ध्यान के साथ ध्येय का संवध है। यदि हम केवल ज्ञान की भूमिका मे जीना चाहते हैं तो यही रास्ता हमे स्वीकार करना होगा और विकल्पो के साथ हमे जीना होगा, जूझना होगा, सघर्ष करना होगा और उन मानसिक तनावो को भी झेलते रहना होगा। यदि हम ध्येय की भूमिका मे जाना चाहते हैं, यदि हम ध्यान की भूमिका मे जाना चाहते है तो फिर ज्ञान से दर्शन की ओर लौटना होगा। यह वहुत जरूरी है। यदि आप विकल्पो से उत्पन्न होने वाले मानसिक समस्याओ से मुक्ति चाहते हैं तो दर्शन की भूमिका मे जाना होगा। जितने विकल्प ज्यादा वढ़ते है, उतनी मन की अशान्ति ज्यादा वढती है। जितने विकल्प ज्यादा होते हैं, उतनी हमारी शक्तिया ज्यादा खर्च होती हैं। जितनी कल्पनायें ज्यादा होती हैं, आदमी के सिर पर भार उतना ही ज्यादा होता है। यदि इस सचाई का पता चल गया तो आपको उल्टा चलना पड़ेगा। यानी विकल्प से निर्विकल्प की ओर, विचार से निर्विचार की ओर, ज्ञान से दर्शन की ओर, सामाजिक मूल्यो से हटकर आन्तरिक मूल्यो की ओर जाना होगा।

दर्शन और ज्ञान का सतुलन

दर्शन हमारा शत-प्रतिशत मूल्य है। दर्शन हमारा आन्तरिक मूल्य है। दर्शन आन्तरिक प्रकाश है। दर्शन चेतना का अपना केन्द्र है। ज्ञान वाहर को

ज्यादा प्रकाशित करता है। ज्ञान सामाजिक मूल्यों को ज्यादा महत्त्व देता है। ज्ञान विस्तार को ज्यादा मूल्य देता है, महत्त्व देता है। वह केन्द्र को कम मूल्य देता है। ज्ञान है—वाह्य-केन्द्रित चेतना और दर्शन है—आत्म-केन्द्रित चेतना। मैं यह परामर्श दूं एक सामाजिक प्राणी को कि वह सामाजिक मूल्यो से हटकर केवल आत्मिक मूल्यो पर आ जाए, वाह्य-केन्द्रित चेतना से हटकर केवल आत्म-प्रतिष्ठित चेतना मे आ जाए तो शायद व्यावहारिक वात नही होगी। जीना है तो जीने के साथ कल्पनाओ को छोड़ा नही जा सकता। जीना है तो जीने के साथ स्मृतियो को छोडा नही जा सकता। इस जीवन की यात्रा को चलाना है तो विचार को छोडा नही जा सकता। तो मैं कैसे यह परामर्श दूं कि आप निर्विचार वन जाए, निर्विकल्प वन जाए, स्मृतिशून्य वन जाएं, चिन्तनशून्य वन जाएं और इन मूल्यो की दुनिया से हटकर निर्मूल्यों की दुनिया मे चले जाएं? शायद यह परामर्श देना न्याय नही होगा। और अन्याय की वात करने का कोई अर्थ नही होगा। तो मैं यह परामर्श नही दूगा, किन्तु एक परामर्श अवश्य देना चाहूंगा। यदि आप समाधि चाहते है, व्याधि, आधि और उपाधि के जीवन से हटकर, समाधि का जीवन जीना चाहते हैं, समाधानपूर्ण जीवन जीना चाहते हैं, सुख और आनन्द का जीवन जीना चाहते हैं तो ज्ञान और दर्शन का संतुलन स्थापित करें। आपका सतुलन विगड़ गया है। दर्शन तो छूट गया, कोरा ज्ञान ही ज्ञान चल रहा है। अविचार तो छूट गया, कोरा विचार ही विचार चल रहा है। अविकल्प की चेतना तो छूट गई, कोरा विकल्प ही विक.प चल रहा है। तराजू का एक पलडा ऊंचा हो गया, एक पलड़ा अति नीचा हो गया। संतुलन विगड़ गया। संतुलन को स्थापित करने की जरूरत है। जीवन को संतुलित वनाएं। यदि आप ज्ञान का जीवन जीते हैं, विचार, विकल्प और स ो का जीवन जीते हैं तो उसके साथ-साथ निर्विचार, निर्विकल्प और स्मृतिशू जीवन जीना भी सीख जाएं। यह है केवल-दर्शन की साधना।

मैं कौन हूं?

जव केवल-दर्शन की साधना उपलब्ध होती है तो व्यक्ति फिर एक प्रश्न खडा करता है। दर्शन के वाद प्रश्न उभरता है—'मैं कौन हूं।' अभी हमे अपने अस्तित्व का कोई पता नही है और जब हम ज्ञान की भूमिका में होते हैं, हमे अपने अस्तित्व का कोई पता नही होता। ज्ञान की भूमिका में रहने वाला आदमी कभी किसी गुरु के , भटकता है और कभी किसी गुरु के पास भटकता है। वह अपने वारे मे ज ना चाहता है कि 'मैं कौन हूं'? आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? धर्म क्या है? इन प्रश्नो का लम्बा-सा स्मृतिपत्र लिये घूमता-फिरता है। प्रश्न करता है, उत्तर लेता है, पर समझ में कुछ नहीं आता। खाली का खाली रहता है। किन्तु

व्यक्ति जब ज्ञान की भूमिका से हटकर थोड़ा भी दर्शन करना सीख लेता है, देखना सीख लेता है, सारे प्रश्न समाप्त हो जाते हैं। यह प्रश्नो की लंबी तालिका अपनी मौत मर जाती है। समाप्त हो जाती है। फिर दर्शन के समय मे, निर्विकल्प चेतना के समय मे, निर्विचारता की अवस्था मे 'है' का बोध होता है। 'है' का केवल 'है' का। 'मैं हूं' का बोध नहीं होता। दर्शन के जगत् मे 'हूं' जैसा प्रयोग नही होता। 'मैं हूं'—यह दर्शन के क्षेत्र में सर्वथा वर्जित प्रयोग है। दर्शन की सीमा मे 'वह है' का प्रयोग भी वर्जित है। 'तुम हो' यह प्रयोग भी वर्जित है। दर्शन की सीमा मे केवल 'है' का प्रयोग चलता है। एक 'है' के सिवाय कुछ भी नही है। केवल 'है', न प्रथम पुरुष, न मध्यम पुरुष और न उत्तम पुरुष। न पुरुष और न स्त्री। कुछ भी नही है। केवल 'है'। न मकान, न जंगल। कुछ भी नही। केवल 'है'। 'है' के सिवाय कुछ भी नही है। इस चेतना का नाम है—संग्रह-चेतना। इस नय का नाम है—संग्रह-नय। जहां केवल 'है' है, इसके सिवाय कुछ भी नहीं है। जब यह स्थिति होती है, तब चेतना शक्तिशाली बनती है। यह चेतना बलवान् बनती है तो फिर अपने आप हमें पता चलता है कि 'मैं हूं'। 'मै कौन हूं'—यह प्रश्न आज तक लाखो-लाखो व्यक्तियों ने पूछा है, अतीत मे भी पूछा है, वर्तमान मे लाखो व्यक्ति पूछते जा रहे हैं और भविष्य में लाखों-लाखो व्यक्ति पूछेंगे। 'मैं कौन हूं?' 'मैं कहां से आया हूं'?, 'मैं कहां जाने वाला हूं?' इस प्रश्न का उत्तर आज तक कोई दूसरा व्यक्ति नही दे सका, न बता सका और न कोई बता पाएगा। चाहे महावीर आ जाएं; चाहे बुद्ध आ जाए 'मैं कौन हूं'—इस प्रश्न का कोई उत्तर नही दे सकते। इस प्रश्न का उत्तर व्यक्ति अपने आप पा सकता है। अपने दर्शन की अवस्था मे और निर्विकल्प चेतना के क्षणो मे पा सकता है। इसके सिवाय इस प्रश्न का उत्तर देने का और कोई दूसरा माध्यम नही हो सकता, कोई उपाय नहीं हो सकता।

है है। फिर 'मैं हूं' 'मैं कौन हू?' 'तुम कौन हो।' 'यह कौन है'? इन सबका उत्तर मिलेगा 'है' की चेतना बलवान बनने पर।

महाकवि गेटे रात को बगीचे में घूम रहे थे। चौकीदार आया। देखा, काफी रात चली गई है। सोचा, कौन घूम रहा है? कोई चोर होगा, और तो कौन आएगा इस समय? जाकर पूछा—'तुम कौन हू'? कवि था, दार्शनिक था। ऐसा प्रश्न सामने आ गया—'तुम कौन हो?' बोला—समूचा जीवन बीत गया इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए, अभी मैं नहीं बता सकता कि 'मैं कौन हूं'।

पचास वर्ष नही, सौ जन्मो का पूरा सत्र बीत जाए तो भी, 'मैं कौन हू', इस प्रश्न का उत्तर नही मिल सकता। इस प्रश्न का उत्तर दूसरा नही दे सकता और बाहर से आ नही सकता। इस प्रश्न का उत्तर भीतर से ही आ सकता है। कोई सोता ऐसा फूट जाए कि पानी निकल जाए। कोई ऐसा स्रोत, झरना आ जाए कि

पानी निकल जाए, तो ही पानी निकल सकता है। बाहर का डाला हुआ पानी उतना ही होता है। जितना डालो उतना निकाल दो। उतना नही, थोडा कम ही निकलेगा। कुछ भाग कम रहेगा। यह प्रश्न उत्तरित होने के लिए बहुत शक्ति चाहता है। जब चेतना की शक्ति घनीभूत हो जाती है, चेतना की शक्ति केन्द्रित हो जाती है, तब एक विस्फोट होता है, एक सोता फूटता है। उसमे से इसका सहज उत्तर निकल आता है। यह तब होता है जब यह अस्तित्व की शक्ति, निर्विकल्प चेतना की शक्ति घनीभूत हो जाती है और वह जब घनीभूत होती है तो अपने आप इसका उत्तर मिलता है कि 'मैं कौन हूं ?'

प्रेक्षा है संतुलन

इसीलिए ज्ञान-चेतना के साथ-साथ दर्शन की चेतना को विकसित करना जरूरी है। इसीलिए विचार-चेतना के साथ-साथ प्रेक्षा की चेतना को विकसित करना जरूरी है। जिस व्यक्ति ने कोरा ज्ञान का जीवन जीया, जिस व्यक्ति ने कोरा स्मृति और कल्पना का जीवन जीया उसने जीवन का वास्तविक मूल्याकन नही किया। अपनी कठिनाइयो, समस्याओ को सुलझाने का सूत्र उसके हाथ नही लगा। प्रेक्षा का मूल्य, प्रेक्षा-ध्यान का मूल्य इसीलिए है कि यह जीवन मे संतुलन करने का एक प्रयोग है। यह प्रयोग इतना मूल्यवान् है कि हजारो-हजारों प्रयत्न करने पर भी जो गुत्थिया नही सुलझती, वे गुत्थिया प्रेक्षा के द्वारा सुलझ जाती हैं। हजारो-हजारो पुस्तकें पढ लेने पर, ग्रंथो का अध्ययन करने पर जो समाधान और उत्तर नही मिलता वह प्रेक्षा करने से सहज मिल जाता है। कोई प्रश्न फिर अनुत्तरित नही रहता। अपने जीवन मे एक ही काम करें, केवल एक काम, और बहुत छोटा काम, ज्ञान और ध्यान दोनो का सतुलन करें। विकल्प चेतना और निर्विकल्प चेतना दोनो का सतुलन करें। शक्ति-व्यय और शक्ति-सचय—दोनो का सतुलन करें, आवृत चेतना और अनावृत चेतना—दोनो का सतुलन करें, स्मृति और विस्मृति—दोनो का संतुलन करें। वाणी और मौन—दोनो का सतुलन करें। शरीर की चचलता, प्रवृत्ति और कायोत्सर्ग दोनो का सतुलन करें। यह सतुलन का जीवन वास्तव मे समस्याओ से मुक्ति का जीवन है। यह सतुलन का जीवन मानसिक उलझनो से निपटने का जीवन है। जो व्यक्ति इस सतुलन के सूत्र को समझ जाता है, सतुलन के रहस्य को समझ जाता है वही वास्तव मे केवल-दर्शन की साधना का अधिकारी बनता है।

३. केवल-ज्ञान की साधना

१. दर्शन को खतरा नहीं।
२. ज्ञान के सामने खतरा . विस्तार, विकल्प।
३. विकल्प : आकार—,तदाकारपरिणमन।
४. पदार्थ के प्रति राग।
५. राग के विकल्प, द्वेष के विकल्प।
६. सामाजिक जीवन मे भी कठिनाइयां।
७. विकल्प को देखें। प्रतिक्रिया न करें। विकल्प के सामने दूसरा विकल्प उपस्थित करें।
८. विकल्प को राग-द्वेषशून्य करना केवल-ज्ञान की साधना है।
९. वहां ज्ञान और ध्यान एक हो जाते हैं। प्रेक्षा की साधना पद्धति पूरी समाधि की पद्धति है।
१०. निर्विकल्प की साधना : विकल्प का शोधन।
११. राग-द्वेषशून्य विकल्प की साधना : शोधन।

तीन

दर्शन और ज्ञान

मेरे सामने एक प्रश्न है कि मैंने दर्शन को बहुत मूल्य दिया, ज्ञान को कम मूल्य दिया, दर्शन की बहुत प्रशसा की, ज्ञान की निन्दा की; दर्शन को एक उच्च शिखर पर चढ़ा दिया और ज्ञान को नीचे रसातल तक पहुंचा दिया। क्या ज्ञान का दर्शन से कम मूल्य है ? क्या दर्शन ऊचा और ज्ञान नीचा है ? दर्शन का इतना उत्कर्ष और ज्ञान का इतना अपकर्ष क्यो ? इस प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक है ?

दर्शन : अस्तित्व की व्याख्या

दर्शन की मैंने प्रशंसा इसलिए की कि वह अस्तित्व तक जाता है, केवल 'है' तक जाता है। उसमें कोई दूषण नहीं होता। दर्शन को कोई खतरा नही होता। दर्शन के सामने कोई समस्या नहीं होती। ज्ञान कोरे अस्तित्व 'तत्' तक नही जाता, विस्तार मे जाता है, फैलता है, व्यापक बनता है। व्यापक बनने वाले को सदा कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। जितनी निर्मलता, जितनी पवित्रता, जितनी शुचिता एक सीमा मे रह सकती है, व्यापक बनने वाले मे उतनी कभी सभव नही है। गगोत्री गगा की उद्गम-स्थली है। उसका पानी जितना पवित्र होगा, गंगा नदी का पानी उतना पवित्र नही होगा। ज्यो-ज्यो गंगा नदी का प्रवाह आगे बढता है, उसमे नाना-प्रकार के प्रदूषण मिलते जाते हैं। गांवो की गन्दगी, नालों की गंदगी, कारखानो का विषैला पानी—यह सब गगा मे मिलता जाता है। जो पानी की निर्मलता गंगोत्री की होती है वह गगा की नहीं होती। जो निर्मलता एक सीमा मे रह सकती है, वह विस्तार मे नही रह सकती।

दर्शन केवल अस्तित्व तक सीमित है, कोरा 'है' का बोध है या को जानता है। 'है' के परे दर्शन के जगत् मे कुछ भी नही है।



ज्ञान : विस्तार की व्याख्या

ज्ञान केवल अस्तित्व तक सीमित नही है। वह फैलता है तो विकल्पो के साथ फैलता है, आकार के साथ फैलता है। भगवान् महावीर ने दो शब्द दिए— साकार उपयोग और अनाकार उपयोग, साकार चेतना और अनाकार चेतना। एक चेतना मे आकार होता है, और एक चेतना मे आकार नही होता। दर्शन की चेतना अनाकार चेतना है। उसमे कोई आकार नही होता। जब आकार नही होता तो कोई विकल्प नही होता। ज्ञान चेतना साकार होती है। उसमे आकार होता है, विकल्प होता है। जो ध्येय सामने आता है, ज्ञान उस आकार मे परिणत हो जाता है, अपना परिणमन कर लेता है। जितने पदार्थ के आकार, उतने ही ज्ञान के आकार, जितने ज्ञेय के विकल्प, उतने ही ज्ञान के विकल्प। ज्ञान हमारी साकार चेतना है।

दर्शन को चेतना के अतिरिक्त किसी के साथ सम्पर्क करने की जरूरत नही होती। वह केवल अस्तित्व 'है' के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। दर्शन के जगत् मे कोई भाषा नही होती, कोई शब्द नही होता, कोई विकल्प नही होता, कोई सम्पर्क नही होता। ज्ञान के जगत् मे भाषा है, शब्द है, विकल्प है और सम्पर्क है। दर्शन के बच्चे को कोई खतरा नही, क्योकि वह घर मे ही रहता है। ज्ञान के बच्चे को बहुत बड़ा खतरा रहता है, क्योकि वह घर से बाहर रहता है, सड़को पर खेलता रहता है। वह कही का कही चला जाता है। वह दुनिया के हर कोने मे चला जाता है और पदार्थ की प्रत्येक पर्याय पर जाना चाहता है। जो बाहर जाएगा, वह फैलेगा, वह विस्तार करेगा। उसके लिए भाषा का माध्यम आवश्यक होगा।

ज्ञान ने भाषा का सहारा लिया। उसकी अभिव्यक्ति हुई। दर्शन कोई अभिव्यक्ति नही करता। ज्ञान ने अभिव्यक्त होकर अपना स्वरूप प्रकट किया। वह दूसरो के समक्ष आया।

साकार : अनाकार

भारतीय साधना-पद्धति मे साकार और अनाकार की बहुत चर्चाएं मिलती है। अंजन और निरजन। आत्मा के दो रूप है। एक रूप है अंजन और एक रूप है निरजन। अजन का अर्थ है—अभिव्यक्ति। निरजन का अर्थ है—अनभिव्यक्ति, कोई अभिव्यक्ति नही। साकार का एक आकार होता है। अनाकार का कोई आकार नही होता, अवगाहन नही होता। ज्ञान ने भाषा के साथ सम्पर्क स्थापित किया। शब्द जुड़ गए। शब्दो के साथ विकल्प जुड़े। विकल्पों ने उसे आकार दिया। ज्ञान पदार्थ को जानने के लिए प्रवृत्त हुआ, किन्तु साथ-साथ पदार्थ

से जुड गया। जब वह पदार्थ से जुड़ा तो वह कोरा ज्ञान नहीं रहा। वह ज्ञेय को जानने के साथ-साथ ज्ञेय के आकार का बन गया। वह पदार्थाकार और ज्ञेयाकार बन गया। वह केवल जानने तक सीमित नही रहा। उसका विकल्प केवल विकल्प नही रहा। वह राग का विकल्प बन गया। वह द्वेष का विकल्प बन गया। पदार्थ के साथ सम्पर्क होते ही उसमे ममत्व जागता है, अहंकार जागता है, राग और द्वेष जागता है, प्रियता और अप्रियता का भाव जागता है। वह कोरा ज्ञान नहीं रहता, कुछ और बन जाता है। वह प्रदूषित और जहरीला बन जाता है।

विकल्प : निर्विकल्प

दर्शन की सीमा निर्विकल्पता की सीमा है। वह निर्विकल्प चेतना का क्षेत्र है। ज्ञान विकल्प चेतना का क्षेत्र है। निर्विकल्प मे कोई खतरा नही होता। जहां विकल्प होता है वहा सारे खतरे पैदा होते हैं।

प्रेक्षा-ध्यान की साधना का अर्थ है—निर्विकल्प चेतना की साधना। प्रेक्षा-ध्यान की साधना का अर्थ है—विकल्पशून्य चेतना की साधना। प्रेक्षा-ध्यान की साधना का अर्थ है—दर्शन की साधना, केवल-दर्शन की साधना।

केवल दर्शन की साधना

क्या केवल-ज्ञान की साधना हमारा साध्य नही है? केवल-ज्ञान की साधना हमारा साध्य है। जैसे केवल-दर्शन की साधना एक मूल्यवान् तत्त्व है, वैसे ही केवल-ज्ञान की साधना भी एक मूल्यवान् तत्त्व हैं। किन्तु राग और द्वेष के विकल्प से मिली हुई ज्ञान की साधना हमारे लिए व्यर्थ है। एक प्रश्न है कि हम ध्यान और समाधि का अभ्यास करते है, किन्तु क्या जीवन के साथ इसकी कोई सगति है? एक घटा ध्यान किया, एक घंटा समाधि का अभ्यास किया और शेष समय जीवन-यात्रा को चलाने मे बिताया तो उस साधना और जीवन-यात्रा के यापन के तरीको मे कोई सामजस्य है? लोग कहते हैं—इनमे कोई संगति नही है। इसलिए सोचा जाता है कि साधना करने वालो को जगल मे चला जाना चाहिए या साधना का स्वांग समाप्त कर देना चाहिए। दोनो मे सामंजस्य है ही नही। कुछ लोग यह भी सोचते है कि जैन-साधना पद्धति इतनी कठोर और श्रम-साध्य है कि प्रत्येक व्यक्ति इस साधना मे नही लग सकता।

साधना दु:साध्य

यह भी एक भ्रान्ति है। साधना कभी दु साध्य नहीं होती। अगर साधना दु:साध्य हो, कुछेक व्यक्ति ही उसे कर पाते हों तो वह हमारी धरती की बात नही हो सकती। आकाश या पाताल की बात हो सकती है। यदि वह आकाश की

बात है तो आकाश में रहने वालों के लिए उपयोगी हो सकती है। यदि वह पाताल की बात है तो पाताल में रहने वालों के लिए उपयोगी हो सकती है। हम धरती पर जी रहे हैं, इस मिट्टी पर जी रहे हैं। हम आकाश की पद्धति को महत्त्व नही दे सकते। वह जीवन की पद्धति कभी नही बन सकती। यदि साधना हमारे जीवन की पद्धति नही बनती और कुछ लोगों के लिए ही होती है तो जगल मे जाकर गुफाओ मे बैठने वाले ही उससे लाभान्वित हो सकते हैं। वे सारे सपर्कों को तोड़कर अकेला जीवन जीते हैं। ऐसी साधना का मूल्य बहुत सीमित होगा।

साधना कहां ? कब ?

सामजिक स्तर पर साधना का प्रयोग जैन आचार्यों की देन है। भगवान् ने कहा—साधना गाव में भी हो सकती है। साधना जंगल में भी हो सकती है। साधना गांव मे भी नहीं हो सकती। साधना जंगल मे भी नही हो सकती। हम यह सीमा नही कर सकते कि जंगल में साधना हो सकती है और गाव मे नही हो सकती। यह सीमा-रेखा कभी नहीं बन सकती। जंगल मे अकेला बैठा आदमी जितना बड़ा पाप कर सकता है, गांव में रहने वाला उतना बड़ा पाप नही कर सकता। गांव मे रहने वाला व्यक्ति जितना बड़ा साधक हो सकता है, उतना बड़ा साधक जगल मे रहने वाला नहीं भी हो सकता। साधना अकेले मे ही होती है, साधना समूह मे ही होती है—यह भेद-रेखा नही खींची जा सकती। साधना अकेले मे नही हो सकती। साधना समूह में नहीं हो सकती। साधना अकेले मे भी हो सकती है और साधना समूह में भी हो सकती है।

ध्यान और समाधि की साधना तब होती है जब विकल्प की सारी तरगें समाप्त हो जाती है। जब तक ये तरगें मस्तिष्क में उत्पन्न होती रहती हैं तब तक साधना नही हो सकती, फिर चाहे साधक अकेला रहे या समूह मे रहे, गाव मे रहे या जगल मे रहे। जब ये तरंगें समाप्त हो जाती हैं तब साधना घटित होती है, फिर चाहे साधक अकेला रहे या समूह में रहे, गांव मे रहे या जगल मे रहे।

तरंगों का पिण्ड—मस्तिष्क

मनुष्य के मस्तिष्क मे विभिन्न प्रकार की तरंगें उठती ही रहती हैं। कभी क्रोध की तरंग उठती है तो कभी मान और माया की तरंग उठती है। कभी अहं की तरग उठती है तो कभी ईर्ष्या और घृणा की तरग उठती है। अनन्त तरगें हैं। मस्तिष्क सदा इन तरंगों से आक्रान्त रहता है। इन तरगो से व्यक्ति ही प्रभावित नही होता, आसपास का क्षेत्र भी प्रभावित होता है। मनुष्य के मस्तिष्क को सागर से उपमित किया जा सकता है। जब समुद्र में तूफान आता है तब पचासो मील का क्षेत्र जलमग्न हो जाता है। वैसे ही जब मस्तिष्क मे विकल्पो का तूफान

आता है तब न जाने कितनी दूर के क्षेत्र के लोग प्रभावित होते हैं। मस्तिष्क मे क्रोध का तूफान उठता है और युद्ध घटित हो जाता है, नर-सहार घटित हो जाता है। मस्तिष्क मे अह का तूफान उठता है, अह की चेतना जागती है तब सारा ससार उसके लिए छोटा वन जाता है। 'मैं' वडा हो जाता है।

हाथी जा रहा था। चीटी ऊपर चढ गई। पुल आया। वह काठ का पुल था। हाथी के भार से वह चरमराने लगा। चीटी बोली—मैं जानती थी, यह पुल तुम्हारा और मेरा भार सहन नही कर पाएगा। चरमरा रहा है। खतरा है। टूट न जाए। तुम ठहरो। मैं नीचे उतर जाती हू, फिर चले जाना, भार कम होने से पुल टूटेगा नही।

अह की पराकाष्ठा

गाडी के नीचे चलने वाला कुत्ता सोचता है कि गाडी का सारा भार उसी पर है। किसी पर किसी का भार नही है। केवल भ्रम ही भ्रम है। आदमी सोचता है—घर का सारा भार मेरे पर है, मेरे सहारे सारा चल रहा है। उसके चले जाने पर भी घर का काम चलता है। कोई चला जाए। दुनिया चलती रहेगी। वह किसी की प्रतीक्षा नही करती। अहकार करने वाले सारे चले गए, पर दुनिया आज भी चल रही है, चलती रहेगी। यह किसी एक के आधार पर नही चलती, नही रुकती। यह चलती ही रहती है, कोई आए, कोइ जाए। किन्तु मनुष्य मे एक अहकार होता है। वह सोचता है, सारा दायित्व मुझ पर है। अगर मैं न होऊ तो न जाने क्या हो जाएगा ? ऐसा सोचने वाले सब चले गए, पर कुछ भी नही रुका। यह दुनिया विचित्र है। प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे को ठगने का प्रयत्न करता है। ठगने वाला यह कभी नही सोचता कि वह स्वय ठगा जा रहा है। वह हमेशा यह सोचता है—मैं दूसरो को ठगता हू। जब मस्तिष्क मे उठने वाली तरगें समाप्त हो जाती हैं तब आदमी को सचाई का पता लगता है कि दूसरो की हत्या करने वाला स्वय की हत्या करता है, दूसरो को ठगने वाला स्वय को ठगता है, दूसरो को सताने वाला स्वयं को सताता है। दूसरो को नीचा मानने वाला स्वयं कितना नीचा हो जाता है, दूसरो को डराने वाला स्वय कितना डरता है। सागर शान्त और गम्भीर होता है। पर जब उसमे तूफान आता है तब वह उफनने लग जाता है। वह चचल वन जाता है। मस्तिष्क मे विकल्पो का तूफान न हो तो वह शान्त रहता है। विकल्प उसे तरगित कर देते हैं।

इस दुनिया मे जीने वाला कोई भी व्यक्ति ऐसा नही है जिसके मन मे राग-द्वेष की तरग न उठती हो, अह और स्वार्थ की तरग न उठती हो, लालच और ईर्ष्या की तरग न उठती हो। लालच की तरग प्रवल होती है तो सब सबध विसबध हो जाते है। भाई भाई को मारने के लिए उतारू हो जाता है।

दोनो भाई धन कमाकर घर आ रहे थे। एक के मन मे यह तरंग उठी—धन का बटवारा होगा। आधा धन भाई को देना पड़ेगा। क्यों न उसे समाप्त कर पूरे धन का मालिक मैं ही बन जाऊ।

ये तरंगें उठती हैं। गृहस्थ के मन मे नही, साधु-सन्यासी भी इन तरंगो से शून्य नही हैं।

हमारे मस्तिष्क मे इन तरंगो को पैदा करने वाले इतने यन्त्र है कि वे कच्चे माल को पक्का माल बनाकर प्रेपित करते हैं। क्या हुआ कोई मुनि या संन्यासी बन गया तो? उसने केवल सकल्प ले लिया कि आगे से वह अकल्याणकारी कार्य नही करेगा, परन्तु जो भंडार पहले से भरा पड़ा है, उसका फल उसे भोगना ही होगा। जब तक पूरी निर्जरा या रेचन नही होगा, जब तक प्रागसचित का पूरा विसर्जन नही होगा, तब तक भीतर उसकी क्रिया होती रहेगी और प्रतिक्रिया अभिव्यक्त होती रहेगी।

तरंगों का जीवन

प्रत्येक व्यक्ति तरंगो का जीवन जी रहा है। यदि तरंगो का जीवन जीने मे कठिनाई न हो, दुख न हो, तनाव न हो तो वैसा जीवन जीने मे कोई आपत्ति नही है। किन्तु तरंगो का जीवन जीने मे समस्याएं और अनगिन मानसिक उलझनें हैं, इसलिए उससे हटकर निस्तरग जीवन जीना चाहता है आदमी। क्या नदी को यह ज्ञात नही है कि तट पर उगे हुए वृक्ष उसकी शोभा बढाने वाले हैं? पर जब नदी तरंगित होती है तो वह तट पर स्थित वृक्षो को धराशायी करती हुई आगे बढ़ती है। तट नदी की शोभा बढाते हैं, पर वह तरंगित नदी उन्हे भी तोड-कर छितर जाती है। नदी की ही बात नही, मनुष्य भी जब तरंगित होता है तब पारिवारिक व्यवस्थाएं समाप्त हो जाती हैं, सामाजिक और मानवीय मूल्य आखो से ओझल हो जाते है। इसीलिए मनुष्य ने निर्णय लिया कि सामाजिक जीवन जीना है तो समय-समय पर उठने वाली तरगों पर नियन्त्रण करना होगा। सामाजिक व्यवस्थाओ को मानने के पीछे मनुष्य का यही चिन्तन है। यह चिन्तन भी भय पर टिका होता है। आदमी भय के कारण ही ऐसा कर रहा है। वह सोचता है, लोग क्या कहेगे? अच्छा नही लगेगा। यह चिन्तन आदमी को सामाजिक नियन्त्रणो मे बाधे रखता है। यह तरंग को दबाने की प्रक्रिया तो है, परन्तु जहा से तरंग उठती है, उस मूल को समाप्त करने की प्रक्रिया नही है। चोर को मारने से क्या होगा? जब तक मा मौजूद है तो चोर उत्पन्न होते ही रहेंगे। मूल बात है, चोर को नही, चोर की मा को समाप्त करना है।

मूल पर प्रहार

मूल को समाप्त करना चाहिए। ऊपर का नियन्त्रण एक तरग को दबाता है तो दूसरी उठ जाती है। दूसरी को दबाता है तो तीसरी उभर आती है। यह क्रम रुकता नही।

अध्यात्म के साधकों ने कहा—तरंगो को दबाने से काम नही होगा। हमें मूल पर प्रहार करना चाहिए। निर्विकल्प चेतना तक पहुचने पर ये सारी समस्याए समाहित हो जाती है। निर्विकल्प चेतना का नाम है—दर्शन। यदि दर्शन की भूमिका का अभ्यास किया जाए, निर्विकल्प चेतना की आराधना की जाए तो एक दिन ऐसा आ सकता है कि विकल्प की तरगें उठनी कम हो जाती है और एक दिन वे पूर्णरूप से समाप्त हो जाती हैं।

अध्यात्म के साधको ने केवल-ज्ञान की खोज की। केवल-ज्ञान की साधना। ज्ञान चले। आकार रहे। विकल्प चले। किन्तु विकल्प के साथ राग और द्वेष न हो। दोनो को अलग कर दिया जाए। पानी को फिल्टर कर दिया जाए। केवल पानी रहे, मिश्रित द्रव्य अलग हो जाए।

दो खोजें

अध्यात्म के आचार्यों की ये दो महत्त्वपूर्ण खोजे है—

१ निर्विकल्प चेतना—दर्शन चेतना।
२ राग-द्वेषमुक्त विकल्प चेतना—ज्ञान चेतना।

इनकी साधना पूर्ण साधना है। इनकी साधना से अतिरिक्त कोई साधना नही है। साधना की सारी पद्धतियां इन दो मे समाहित हो जाती है। जैसे नदिया समुद्र मे मिल जाती है, वैसे ही सारी साधना-पद्धतिया केवल-दर्शन की साधना-पद्धति मे और केवल-ज्ञान की साधना पद्धति मे मिल जाती है। इनसे परे साधना की कोई तीसरी पद्धति नही है।

महर्षि पतजलि ने कहा—'यथाभिमतध्यानाद् वा' [११३९]—ध्यान की अनेक पद्धतिया है। उनकी कोई सूची नही बनाई जा सकती। जिसका मन जिस पद्धति मे लग जाए वही उसके लिए अच्छी है। किन्तु एक शर्त है कि वह साधना पद्धति केवल-दर्शन और केवल-ज्ञान की सीमा से परे न जाए। जो साधना होगी, वह इस सीमा मे ही होगी। इससे परे नही हो सकती।

प्रेक्षा-ध्यान मे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का बहुत महत्त्व है, विनम्रता और इन्द्रिय-सयम का बहुत महत्त्व है। इन सबमे एक तत्त्व काम करता है और वह है राग-द्वेषमुक्त विकल्प। जीवन-यात्रा चलाने वाला आदमी निरन्तर निर्विकल्प नही रह सकता। जो निरन्तर निर्विकल्प रहना चाहता है

उसे जीवन यात्रा-शीघ्र सम्पन्न करनी होती है।

मन का जाना

मुनि विहार कर जा रहे थे। रास्ता लम्बा था। वे रास्ता भूल गए। खेत मे एक किसान खडा था। मुनि ने पूछा—रास्ता कौन-सा जाएगा ? रास्ता बताने वाले को भी रास्ता पूछना पड़ता है। किसान आया। उसने रास्ता बता दिया। मुनि ने सोचा—इसे भी मोक्ष का रास्ता बताना चाहिए। मुनि ने किसान से कहा—'क्या करते हो ? खेती करता हूं। 'क्या कुछ व्रत-नियम भी निभाते हो ?' नही, मुझे कुछ नहीं आता। 'कुछ त्याग-प्रत्याख्यान लो।' 'मुझे कोई एक सकल्प करा दो। मै दो-चार सकल्प नहीं ले सकता।' मुनि बोले—केवल एक सकल्प। अपने मन की बात न करना। मन जैसा कहे वैसा न करना।' किसान बोला—अच्छी बात है। यह सकल्प है। मै अपने मन के अनुसार कुछ नही करूगा।' मुनि चले गए।

किसान ने सोचा—खेत मे जाऊ। फिर सोचा—अरे ! यह तो मन का जाना हो गया, कैसे जाऊ ? खड़ा रहा। पत्नी घर से भोजन लेकर आई। किसान खेत के बाहर ही खड़ा था। पत्नी ने बुलाया। वह कैसे बोलता ? मन का जाना हो जाता। वह नही बोला। खड़ा रहा। बैठ भी नही सका। क्योकि वह भी मन का जाना हो जाता। लम्बे समय तक खड़ा रहना पड़ा। उसकी जीवन-यात्रा समाप्त हो गई।

दोनों साथ-साथ

निर्विकल्प चेतना और जीवन-यात्रा दोनो साथ-साथ नही चल सकते। जीवन-यात्रा के लिए विकल्प जरूरी है। विकल्प जरूरी है तो साधना क्यो ? यही तो एक महत्त्वपूर्ण खोज है कि जीवन की यात्रा भी चले, विकल्प भी चले और साधना भी चले।

केवल-ज्ञान की साधना का अर्थ है—मन मे जो विकल्प उठे तो उनका उत्तर मत दो। पहले निर्णय करो कि यह राग से उत्पन्न विकल्प है या द्वेष या अहकार से उत्पन्न विकल्प है। यह निर्णय करो कि यह विकल्प जीवन की आवश्यकता और उपयोगिता के सन्दर्भ मे उठा है या और किसी कारण मे। जब यह लगे कि इस विकल्प के पीछे दूसरी प्रेरणाए नही हैं, केवल जीवन-यात्रा के निर्वाह की प्रेरणा है तब उस विकल्प का समाधान करना होता है, उसका उत्तर देना आवश्यक होता है। जब यह लगे कि ये विकल्प राग आदि तरगो के कारण उत्पन्न हुए है तब उन विकल्पो का उत्तर मत दो, उनका शमन करो, उनकी उपेक्षा करो। उन्हे [illegible] मत, असहयोग करो। या तो निर्विकल्प-चेतना की स्थिति मे चले जाओ,

जिससे कि विकल्प अपने आप शान्त हो जाएं, या राग-द्वेषमुक्त चेतना की स्थिति मे चले जाओ, जिससे कि एक विकल्प के सामने दूसरा विकल्प खडा हो जाए और वह पहला विकल्प शक्तिशून्य बन जाए। यह अन्यान्य विकल्पो के सामने राग-द्वेषमुक्त विकल्प खडा करने की साधना ही केवल-ज्ञान की साधना है।

राग-द्वेषमुक्त चेतना का क्षण

केवल-ज्ञान की साधना कठिन साधना नही है। यह कठोर तपस्या या शरीर सुखाने की साधना नही है। आदमी इसका आचरण न कर सके, ऐसी साधना नही है। केवल-ज्ञान की साधना-पद्धति और केवल-दर्शन की साधना-पद्धति कुछेक लोगो के जीवन की पद्धति नहीं है, यह समूचे समाज के लिए उपयोगी है।

हमारी कोई भी प्रवृति राग-द्वेषमुक्त होती है, वह प्रवृति है अहिंसा, वह प्रवृत्ति है सत्य, वह प्रवृत्ति है अचौर्य, वह प्रवृत्ति है ब्रह्मचर्य और वह प्रवृत्ति है अपरिग्रह। अहिंसा और ध्यान मे कोई अन्तर नही है। अहिंसा और समाधि मे कोई अन्तर नही है। ज्ञान और समाधि मे कोई अन्तर नही है। जब-जब जिस क्षण मे राग-द्वेषमुक्त चेतना जागती है, वह अहिंसा है, ध्यान है, समाधि है। इसीलिए एक घंटा आखें बद कर, कायोत्सर्ग की मुद्रा मे बैठना ही समाधि या ध्यान नही है। यदि सम्यक् चेतना जाग जाए तो समाधि की साधना पूरे दिन हो सकती है। इसीलिए यह जीवन की पद्धति बन सकती है। किसी भी कालबद्ध, देशबद्ध और सीमाबद्ध साधना-पद्धति को जीवन की पद्धति नही बनाया जा सकता। किन्तु प्रतिक्षण हर देश और काल मे जो अप्रमाद का भाव जागता है, जागरूकता आती है, राग-द्वेषमुक्त क्षण जीने की एक अभ्यास-विधि बन जाती है तो वह सारी समाधि की साधना है। इसीलिए समाधि की साधना समग्र जीवन की साधना है। समाधि की साधना सामाजिक पद्धति मे जीने वाले व्यक्ति की जीवन पद्धति है। इस समग्रता को हम खडो मे न बाटें। समग्रता की दृष्टि से इसका उपयोग करें। इसमे केवल एक ही शर्त है कि जागरूकता प्रतिक्षण रहे। प्रेक्षा-ध्यान द्वारा जैसे-जैसे देखने और जानने का अभ्यास बढता है, सेंटरो मे होने वाले प्रकंपनो को जानने का और अनुभव करने का अभ्यास बढता है, वैसे-वैसे राग-द्वेपमुक्त क्षण जीने का विकास होता है, साधना बढती है और एक दिन-जीवन मे इतनी जागरूकता आती है कि आदमी जीवन-यात्रा को चलाते हुए भी, व्यवहार की भूमिका पर करणीय कार्य करते हुए भी अच्छे साधक का जीवन जी सकता है।

४ चित्त-शुद्धि और समाधि

१. प्रेक्षा की पद्धति केवल-दर्शन और केवल-ज्ञान की पद्धति—केवल देखना और केवल जानना।
२. दर्शन और ज्ञान आत्मा का सहज स्वरूप, इसलिए वही समाधि।
३. दर्शन और ज्ञान की क्षमता को बढ़ाने के लिए चित्त-शुद्धि के उपायों का आलंबन।
४. चित्त-शुद्धि के उपाय—
- विचय ध्यान—साकार या सविकल्प समाधि, वस्तु के स्वभाव का पता लगाना, जानना।
- लोक-विचय या शरीर-विचय—शरीर की क्रिया का वोध।
- सूक्ष्म-शरीर-विचय—शारीरिक विद्युत् की क्रिया का वोध।
- अतिसूक्ष्म-शरीर-विचय—सुख-दु.ख या कर्म-विपाक का वोध।

५. अकेला होना—समाधि को प्राप्त होना।

चार

साध्य भी वही, साधन भी वही

प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति केवल-दर्शन और केवल-ज्ञान की पद्धति है। केवल देखना है और केवल जानना है। केवल देखना हो, उसके साथ कोई प्रियता और अप्रियता का सवेदन न हो। केवल जानना हो, उसके साथ कोई प्रियता और अप्रियता का सवेदन न हो, राग-द्वेष की कोई ऊर्मि या तरग न हो। दर्शन भी निस्तरग हो और ज्ञान भी निस्तरंग हो। चेतना का शान्त समुद्र है—प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति।

आत्मा का स्वभाव है—दर्शन और ज्ञान, देखना और जानना। साधना की पद्धति वही हो सकती है जो आत्मा का स्वभाव है। आत्मा को उपलब्ध होना समाधि है, इसलिए समाधि की पद्धति वही हो सकती है जो आत्मा का स्वभाव है। आत्मा के स्वभाव से हटकर उसे उपलब्ध करने की कोई पद्धति नही हो सकती। आत्मा का जो स्वभाव नही है, उस स्वभाव से विपरीत पद्धति का प्रयोग कर हम आत्मा को उपलब्ध नही हो सकते। हमे समाधि उपलब्ध नही हो सकती, कुछ और ही उपलब्ध हो सकता है। जब साध्य और साधन एक होता है तब प्राप्तव्य प्राप्त होता है। साध्य और साधन मे दूरी नही होनी चाहिए। हमारा साध्य है—अनावृत चैतन्य की उपलब्धि, निर्बाध आनन्द की उपलब्धि और अप्रतिहत शक्ति की उपलब्धि। जब साध्य है—चैतन्य, आनन्द और शक्ति तो उसकी प्राप्ति का साधन भी चैतन्यमय, आनन्दमय और शक्तिमय ही हो सकता है। दूसरा कोई साधन नही बन सकता।

पत्नी ने पति से कहा—बच्चो को सभालो। मैं डॉक्टर के पास जा रही हूं। दातो मे भयकर दर्द है। दात निकलवाने हैं। पति बोला—बच्चों का झंझट मुझसे नही हो सकता। बच्चों को तुम सभालो। मैं डॉक्टर के पास जाकर अपने दांत निकलवा लेता हूं।

दांत का दर्द किसी के है और निकलवाने कोई दूसरा जा रहा है। यह कैसे

होगा ? इससे क्या बनेगा ?

समाधि की उपलब्धि

चैतन्य की उपलब्धि चैतन्य ही करा सकता है। जो व्यक्ति चैतन्य की आराधना करता है वही चैतन्य को उपलब्ध हो सकता है। आनन्द को वही व्यक्ति उपलब्ध हो सकता है जो आनन्द की समुपासना करता है। शक्ति की संप्राप्ति उसी को होती है जो शक्ति की अराधना करता है। चैतन्य, आनन्द और शक्ति की आराधना किए विना कोई भी व्यक्ति समाधि मे नही जा सकता। समाधि की प्राप्ति के लिए उनकी आराधना आवश्यक है।

ज्ञान स्वय समाधि है। दर्शन स्वय समाधि है। आनन्द स्वय समाधि है। शक्ति स्वय समाधि है। यह सव सहज समाधि है, क्योकि ज्ञान, दर्शन, आनन्द, और शक्ति—ये आत्मा के स्वभाव है। जव-जव और जहां-जहा आत्मा से दूरी होती है, तव-तव और वहां-वहा समाधि का भग होता है। जव-जव और जहां-जहा आत्मा की निकटता होती है, तव-तव और वहां-वहां समाधि घटित होती है। समाधि आत्मा का स्वभाव है, चैतन्य का स्वभाव है, सहज अवस्था है।

विस्तार क्यों ?

जव केवल देखना और केवल जानना समाधि है तो केवल देखें, केवल जानें। जानते रहे, देखते रहे। वस, इतना पर्याप्त है। यह सारा प्रपन्च क्यो ? श्वास और शरीर-प्रेक्षा क्यो ? कायोत्सर्ग और रग-ध्यान क्यो ? केवल चैतन्य का अनुभव पर्याप्त है, जानना और देखना पर्याप्त है। किसी भी विस्तार की अपेक्षा नही है।

वात ठीक है। केवल जानना और देखना है। पद्धति सहज और सरल है। परतु कभी-कभी जो सहज-सरल होता है वह कठिन भी वन जाता है। सरल सरलता से उपलब्ध नही होता। सरल को उपलब्ध करने के लिए अनेक कठिनाइयो से गुजरना पडता है। सतो ने अनेक वार गाया—सहज समाधि भली। सुनने मे अच्छा लगता है। कोई झझट नही। सहज समाधि मे रहे। यह सुनने और कहने मे सरल लगता है। पर जव सहज समाधि की साधना करने का प्रश्न आता है तव अटपटा-सा लगता है। यदि समाधि की उपलब्धि सहज होती तो दुनिया असमाधि मे क्यो रहती ? कोई भी व्यक्ति मानसिक उलझनों और तनावों का शिकार क्यो होता ? हर आदमी सहज समाधि मे चला जाता। जिसने सोचा, वह सहज समाधि मे चला गया। वात सीधी-सी लगती है, पर है बहुत ही टेढ़ी।

सभी जानते हैं, रोटी खाने से भूख मिटती है, पेट भरता है। रोटी खाने और

पेट भरने मे कोई दूरी नही है, कोई उलझन नही है। किन्तु रोटी को उपलब्ध करने मे कितनी उलझने है। रोटी खाओ, पेट भर जाएगा—यह बात जितनी सीधी है, रोटी को उपलब्ध करना उतना सीधा नही है। उसको प्राप्त करने के लिए सारा प्रपच, विस्तार और व्यवसाय किया जाता है। खाने के लिए कोई प्रपच नही है, कोई विस्तार नही है, कोई व्यवसाय नही है।

देखो, समाधि प्राप्त हो जाएगी। जानो, समाधि प्राप्त हो जाएगी। बात सीधी है, किन्तु देखने और जानने की क्षमता कैसे उपलब्ध हो, यह जटिल बात है। यह सारा प्रपच और विस्तार उस क्षमता को पैदा करने के लिए है। यह प्रयत्न इसीलिए है कि देखने और जानने की इतनी क्षमता बढ जाए कि हम जब चाहे तब देख लें और जब चाहे तब जान लें। कोई व्यवधान न हो, कोई अन्तराय न हो। उस क्षमता को विकसित करने के लिए ही साधना की ये भूमिकाएं की गई है।

क्षमता का विकास और आलबन

उस क्षमता को विकसित करने के लिए अनेक आलबन लिए जाते है। श्वास का आलबन, स्थिरता का आलबन, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का आलबन, अतिसूक्ष्म शरीर का आलबन—ये सारे आलबन उस क्षमता को विकसित करने के लिए है। आलबन गति मे सहायक होते हैं। आलंबनो के आधार पर आदमी बीहड पथ को भी पार कर जाता है। आदमी ऊचे पहाडो और भीषण नदियो को आलबनो के सहारे पार कर जाता है। देखने और जानने के बीच मे अनेक पर्वत हैं, अनेक नदिया है। उन्हे आलबनो के सहारे ही पार किया जा सकता है। जब साधक देखने और जानने के लिए बैठता है तब स्मृति की महानदी बीच मे आ जाती है। वह भयकर रूप से उफनती है। उसे पार किए बिना कोई केवल देख या जान नही सकता। स्मृतिया उभरती हैं, जानना और देखना छूट जाता है। आदमी उस स्मृतियो की महानदी मे डूब जाता है। वह स्मृतियों मे उलझ जाता है। स्मृतिया न आए, वे बाधक न बने—यह आलबन के द्वारा ही सभव हो सकता है। अन्यथा आदमी स्मृतियो के तूफान से बच नही सकता।

दूसरी महानदी है—कल्पना। आदमी देखने-जानने के लिए प्रयत्न करता है, पर कल्पनाए उसे भटका देती है। एक के बाद दूसरी कल्पनाओ का ताता लग जाता है और आदमी कल्पना के इस जाल को तोड नही पाता। कल्पनाए आती है, विकल्प उभरते है और देखना-जानना छूट जाता है।

शेखचिल्ली की कहानी बहुत प्रसिद्ध है। वह कोई एक व्यक्ति रहा होगा। आज तो सारे लोग शेखचिल्ली बन रहे हैं, कल्पनाओ के महल खडे
जानते हैं, कल्पनाओ से कुछ भी आना-जाना नही है, पर वे इस

नही पाते।

चितन भी एक महानदी है। उसका पार पाना भी सहज नही है। मस्तिष्क मे जब विचारो का ज्वार आता है तब न जाने क्या-क्या घटित हो जाता है। निर्विचार रहना कठिन बात है। लबे समय तक निर्विचार रहना कठिन भी है और जीवन-यात्रा के लिए सभव भी नही है।

केवल देखने और केवल जानने मे स्मृति, कल्पना और चिन्तन—ये तीन विघ्न है। आलबनो के सहारे इन विघ्नों को मिटाया जा सकता है।

विचय-ध्यान

दर्शन और ज्ञान की क्षमता को वढाने के लिए सबसे बडा आलबन है—विचय और प्रेक्षा। विचय का अर्थ है—खोजना, अन्वेषण करना, विमर्श करना। निर्विचार ही ध्यान नही होता, विचार भी ध्यान होता है। एक का आलबन लेकर हम दूसरो से निपट सकते हैं। विकल्प भी ध्यान होता है। जो विकल्प राग-द्वेष से शून्य होता है तब वह विकल्प भी ध्यान होता है। वह विचार भी ध्यान है जिसमे राग-द्वेष नही है। अहकार और ममकार की तरगो से मुक्त प्रत्येक विकल्प और विचार ध्यान है। जिस विचार मे प्रियता और अप्रियता की पुट न हो वह ध्यान है। इसी की सज्ञा है—विचय-ध्यान। यह ध्यान की महत्त्वपूर्ण पद्धति है। यह है—सत्य को खोजना, केवल यथार्थ पर विचार करना, चिन्तन करना, यथार्थ का अनुसंधान करना। इसका अर्थ है—एक साथ चित्त की सारी वृत्तियो को सत्य की खोज मे लगा देना, नियोजित कर देना। यह विचय-ध्यान विघ्नो की महानदियो को पार करने के लिए एक पुष्ट आलबन है। इस विचय-ध्यान के द्वारा स्मृतियो के सारे द्वार बन्द हो जाते हैं, केवल एक स्मृति या विचार का आलबन होता है, शेष सारी स्मृतियां या विचार बन्द हो जाते हैं। एक विकल्प का आलबन होता है, शेष सारे विकल्प रुक जाते हैं। एक विकल्प पर, एक विचार पर, एक स्मृति पर होने वाली एकाग्रता विचय-ध्यान है। यह यथार्थ को जानने की बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह सत्य के खोज की बहुत ही महत्त्वपूर्ण पद्धति है। जब मनुष्य अहंकार और ममकार से हटकर वस्तु के स्वभाव को उपलब्ध होता है, यथार्थ को जानता है तब देखने-जानने की क्षमता बहुत बढ जाती है। वह जो, जैसा है उसे वैसा जान लेता है। प्राचीन साधको और दार्शनिको ने इसी विचय-ध्यान के द्वारा सत्य को खोजा था। आज के वैज्ञानिक भी इसी पद्धति के द्वारा सत्य तक पहुचते हैं। वस्तु-जगत् मे जितनी घटनाए घटित होती हैं, उनका ज्ञान विचय-ध्यान के द्वारा ही हो सकता है। प्राचीन साधकों और अध्यात्म-योगियों ने वस्तु-सत्यो की, वस्तु के सूक्ष्मतम रहस्यो की खोज विचय-ध्यान के माध्यम से की थी। वस्तु का स्थूल रूप हमारे सामने होता है। उसे हम देख सकते हैं, जान

सकते है, किन्तु उसका सूक्ष्म-स्वरूप ज्ञात नही होता। उस पर ध्यान केन्द्रित करने पर ही उसके अन्तर्-स्वरूप का ज्ञान हो सकता है। ऊपर केवल छिलका होता है। उसका ज्ञान हर व्यक्ति को हो सकता है। जब तक छिलके के भीतर नही देखा जाता, तब तक सार का पता ही नही चलता। हमे आपातदर्शन मे जो दिखाई देता है, वह वस्तु का ऊपरी भाग होता है। वस्तु उतनी ही नही होती, उसकी गहराई उतनी ही नही होती जितनी इन चर्मचक्षुओ से दीखती है। सारी गहराइयो को नापने के लिए बहुत गहराई मे जाना पड़ता है।

सब पदार्थ ध्येय

मेरे सामने भीत है। उसका रग, उसकी लबाई-चौडाई दिखाई दे रही है। मैं स्पष्ट देख रहा हू कि वह सफेद है, इतनी लबी-चौडी है। किन्तु यदि मैं इसे लगातार ५-१० घटा देखता रहू तो मुझे और भी बहुत कुछ दिखाई देगा जो भीत से सबधित है। भगवान् महावीर तिर्यग्भित्ति पर ध्यान करते थे। वे एक भीत के सामने बैठ जाते और घटो तक उसे एकटक देखते रहते। यह अजीब-सा लगता है। पाना है आत्मा को, जानना है चैतन्य को और देखी जा रही है भीत। भीत को देखने से आत्मा कैसे मिलेगी? आत्म-साक्षात्कार कैसे होगा? आत्मा की साधना करने वाला भीत पर ध्यान एकाग्र कर रहा है। आत्मा की साधना करने वाला शव को देख रहा है। आत्मा की साधना करने वाला एक जर्जरित व्यक्ति को देख रहा है। आत्मा की साधना करने वाला एक पशु को देख रहा है, एक गदगी के ढेर को देख रहा है। क्या सबध है इन सब वस्तुओ का और आत्म-साक्षात्कार का? स्थूल दृष्टि से कोई सबध नही लगता। किन्तु जिस व्यक्ति को देखना सीखना है, जानना सीखना है उसके लिए आत्मा मे और अन्यान्य वस्तुओं मे कोई अन्तर नही लगता। आत्मा एक तत्त्व है और भीत या शव या बूढा भी एक तत्त्व है। आत्मा भी ज्ञेय है और अन्यान्य पदार्थ भी ज्ञेय है। आत्मा भी ध्येय है और अन्यान्य पदार्थ भी ध्येय हैं। देखने और जानने की शक्ति को बढाने के लिए कोई आलबन चाहिए। जिसने भीत को आलबन बनाया, उस पर ध्यान केन्द्रित किया, तो धीरे-धीरे उसका ध्यान एकाग्र हुआ और तब उसके सामने अनेक नये रहस्य उद्घाटित होने लगे। तब आश्चर्य होता है कि जिस भीत को देखते-देखते अनेक वर्ष बीत गए, जिसको सैकडो बार देख लिया, कोई नयी बात उपलब्ध नही हुई और आज दस घटा तक अपलक दृष्टि से देखने पर लगा कि भीत मे प्रतिक्षण असख्य परमाणु आ रहे हैं, जा रहे है, मानो कि भीत चल रही है, अचल नही है। भीत के बीच अनन्त परमाणु आ-जा रहे है। भीत का कण-कण दरवाजा बना हुआ है। इस भीत मे से सर्दी के, गर्मी के और बीमारी के परमाणु आ रहे है, जा रहे है। शब्दो के परमाणु आ-जा रहे हैं, चिन्तन के परमाणु आ-जा

रहे हैं। तैजस और विद्युत् के परमाणु तथा हमारे भोजन के परमाणु आ-जा रहे है। ससार मे ऐसा कौन-सा सूक्ष्म परमाणु है जो इस भीत मे से न आ-जा रहा हो। जब यह दृष्ट होगा तब भीत के स्वरूप की कल्पना ही बदल जाएगी। भीत भीत नही रहेगी, उसका अवरोधक रूप नही रहेगा। ज्ञात हो जाएगा कि भीत का कण-कण एक दरवाजा है जिसमे से सब कुछ सूक्ष्म आ-जा सकता है। यह तब होता जब विचय-ध्यान की साधना होती है। विचय-ध्यान सिद्ध होने पर व्यक्ति जिस किसी पदार्थ—चेतन या अचेतन पर एकाग्र होगा तब उस पदार्थ के नये-नये पर्याय उद्घाटित होते जाएगे। उसका स्वरूप बहुत स्पष्ट होता जाएगा।

विचय ध्यान : निष्णातता का सूत्र

श्रीमज्जयाचार्य महामनीषी थे। उन्होने आगमो का मथन किया, दोहन किया और आगम की गहनतम गुत्थियो को सुलझाने मे अपनी शक्ति का नियोजन किया। जीवन के अन्तिम समय मे एक बार उन्होंने अपने उत्तराधिकारी से कहा—'मघजी ! उत्तराध्ययन सूत्र का जितनी बार पारायण करता हू, उतनी ही बार नये-नये रत्न प्राप्त होते हैं। आज भी यह बात मिली जो आज तक अज्ञात थी।'

प्रत्येक अक्षर और शब्द के अनन्त पर्याय होते हैं। एक बार पढने वाला एक पर्याय को जान सकता है, किन्तु जो उसका सतत अवगाहन करता रहता है वह धीरे-धीरे नये-नये पर्यायो से अवगत होता रहता है। मूल बात है ध्यान को केन्द्रित करने की। जो जिस विषय पर केन्द्रित होता है, वह उस विषय मे निष्णात हो जाता है, उसके सारे पर्यायो या अधिकतम पर्यायो को जान जाता है। ध्यान को केन्द्रित करने का विषय आगम भी हो सकता है और शव या वृद्ध व्यक्ति भी हो सकता है। जिस वस्तु पर जितना ध्यान केन्द्रित होगा, जितना विचय होगा, उतने ही नए-नए पर्याय अभिव्यक्त होते जाएगे। गीता पर कितनी व्याख्याए और भाष्य लिखे गए। जिस व्यक्ति ने जितना ध्यान केन्द्रित किया, जितना विचय किया, उतना ही वह गहराई मे उतरा और नए-नए अर्थ अभिव्यक्त हुए। सारे बौद्धिक सघर्षो का यही कारण है कि एक व्यक्ति एक पर्याय तक पहुचता है, दूसरा दूसरी पर्याय तक और चौथा-चौथी पर्याय तक। जो और अधिक गहरे में जाता है उसे और अधिक पर्याय ज्ञात हो जाते हैं और तब वह और नये-नये अर्थ अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार अर्थ मे बहुत भिन्नता आ जाती है। यह भिन्नता सघर्ष पैदा करती है। इस भिन्नता मे भी एक अभिन्न अश है। उस वस्तु के विषय में जितने विचार हैं वे सब अपनी-अपनी भूमिका मे सत्य हैं। शब्द के पर्याय अनन्त हैं तो अर्थ भी अनन्त हो सकते है। जो व्यक्ति शब्द के जिस पर्याय को पकड पाता है, उसे ही वह अभिव्यक्ति देता है। उसका कथन असत्य नहीं हो सकता। उसकी

पहुच उस पर्याय तक ही थी, इसलिए उसने वह अर्थ किया।

लुकमान पौधो के पास जाते, उन पर एकाग्र होते और उनके गुण-धर्मों को जान जाते। यह विचय की प्रक्रिया है। इससे अज्ञात पर्याय ज्ञात होते है और ज्ञात पर्याय और अधिक स्पष्ट होते है। यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

विज्ञान और ध्यान में द्वैत नही

विज्ञान और ध्यान की एक ही प्रक्रिया है। जहा तक सत्य की खोज का प्रश्न है वहा तक दोनो मे कोई अन्तर नही है। विज्ञान स्वय ध्यान की प्रक्रिया है और ध्यान स्वय विज्ञान की प्रक्रिया है। कोई अन्तर नही है। अन्तर होता है उपयोगिता के क्षेत्र मे। अन्तर आता है प्रयोग-काल मे, प्रयोग-अवस्था मे। चाकू एक पदार्थ है। उसमे काटने की शक्ति है। उससे साग भी काटा जा सकता है, किसी, पर प्रहार भी किया जा सकता है और ऑपरेशन भी किया जा सकता है। शक्ति शक्ति होती है। उसका उपयोग भिन्न-भिन्न हो जाता है। जहा शक्ति को खोजने का प्रश्न है, यथार्थ को और वस्तु-स्वभाव को जानने का प्रश्न है वहा विज्ञान और ध्यान मे कोई अन्तर नही हो सकता। जो वैज्ञानिक ध्यान का अभ्यास नही करता वह नये तथ्यो की खोज नही कर सकता। जो साधक ध्यान का प्रयोग नही करता वह वस्तुओ की अज्ञात पर्यायों को नही जान सकता। नये पर्यायो को जानने के लिए विचय-ध्यान अत्यन्त उपयोगी है।

विचय और विकल्प ध्यान कब ?

वस्तु-स्वभाव को जान लेने के पश्चात् जब उसके साथ हमारी रागात्मक और द्वेषात्मक धारा जुडती है, अहकार और ममकार की भावना जुडती है, प्रियता और अप्रियता का सवेदन जुडता है तब वह ज्ञान ध्यान नही रहता, वह विचार और विकल्प ध्यान नही रहता, और कुछ बन जाता है। यदि वह ध्यान बना रहता है तो उसकी सज्ञा होगी—आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान। चेतना को उज्ज्वल बनाने वाला, चेतना को उपाधिमुक्त करने वाला ध्यान नही रहता। चित्त-शुद्धि के लिए वही विचय और विकल्प ध्यान बनता है, जिसके साथ किसी भी प्रकार का प्रदूषण नही है। जिसके साथ न राग है, न द्वेष है, न ममकार है, न अहकार है और न प्रियता-अप्रियता का सवेदन है।

प्रत्येक वस्तु ध्यान का आलबन बन सकती है। प्रत्येक सत्य ध्यान का आलबन बन सकता है।

यदि मैं अकेला होता

मिथिला के नरेश नमि राजर्षि अस्वस्थ हो गए। वे दाहज्वर से पीडित थे।

शरीर मे भयकर दाह। उनकी पत्निया चन्दन का लेप तैयार कर रही थी। वे चन्दन घिसने लगी। चूडियो की आवाज आ रही थी। वे शब्द नमि राजर्षि के कानो मे चुभ रहे थे। उन्होने कहा—शब्द कहा से आ रहे हैं ? बन्द करो। लोग दौडे-दौडे गए। रानियो से कहा। उन्होंने एक-एक चूडी हाथ मे रखकर शेष चूड़िया निकाल दी। अब शब्द बद हो गया। कुछ ही समय बाद नमि ने पूछा—जो पहले शब्द हो रहा था, क्या वह बन्द हो गया ? हा महाराज ! वह बद हो गया है। क्या चन्दन नही घिसा जा रहा है ? नमि ने पूछा। परिचारको ने कहा—चन्दन घिसा जा रहा है, पर रानियो ने अपने हाथो मे केवल एक-एक चूडी ही रखी है। जब एक ही चूडी होती है तब कोई शब्द नही होता। ध्वनि के लिए दो चाहिए। सघर्षण के लिए दो चाहिए। राजर्षि ने सुना। दो से सघर्षण, दो से शब्द—ये विचार घूमने लगे। वे सत्य की खोज मे उतरे, विचय मे चले गए। चेतना की गहराइयो मे उतरे और उन्हे अनुभव हुआ कि जहा दो होते है वहा समस्याए उभरती है, वहा झझट खडे होते हैं। एक मे कोई समस्या नही होती, कोई झंझट नहीं होता। मेरी बीमारी दो के ही कारण है। अगर मैं अकेला होता तो यह मेरी बीमारी नही होती। अब मुझे इस बीमारी के लिए कोई दूसरी चिकित्सा की शरण नही लेनी है, न चदन का लेप आवश्यक है और न और कोई औषधि। इसकी एकमात्र चिकित्सा है—अकेला हो जाना।

वे इसी चिन्तन मे डूब गए। रात के बीतने के साथ-साथ उनकी बीमारी मिट गई। स्वस्थ हो गए। उन्होने अपने सकल्प की घोषणा करते हुए कहा—अब मैं अकेला बनूगा। अब मैं दो नही रह सकता। वे सचमुच अकेले हो गए।

अकेला कौन ?

आदमी अकेला तब होता है जब ममकार और अहंकार का बन्धन टूट जाता है, जब आत्मा की सन्निधि प्राप्त हो जाती है। अकेले मे दु ख नही होता।

गुरु और शिष्य जा रहे थे। जगल आ गया। गुरु एक वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यानलीन हो गए। शिष्य बैठा था। उसने देखा एक शेर उधर ही आ रहा है। भयभीत होकर वह वृक्ष पर चढ गया। शेर आया। गुरु को सूघा और चला गया। शिष्य पेड से उतरा। गुरु ने ध्यान पूरा किया और दोनो आगे चल पडे। कुछ दूर गए ही थे कि गुरु को एक मच्छर ने काट डाला। गुरु ने उसे हटाया। कान को खुजलाया और बोले—कितना दर्द हो रहा है ? शिष्य बोला—गुरुदेव ! बात समझ मे नही आ रही है। शेर आया तब आप शान्त बैठे थे और एक छोटे से मच्छर के काटने से आप तिलमिला उठे। इसका कारण क्या है ? गुरु ने कहा—जब शेर आया तब मैं अपनी आत्मा के साथ था, अपने प्रभु के साथ था और अब तुम्हारे साथ हूं।

इसका प्रतिपाद्य है कि जब कोई अपने आपके साथ नही होता, दूसरे के साथ होता है तब उसे कठिनाइयो का अनुभव होता है। जब वह अपने आपके साथ होता है तब कोई समस्या नही होती, कोई कठिनाई नही होती। सारी समस्याओ का मूल है—द्वैत।

प्रेक्षा-ध्यान है—विचय-ध्यान

सत्य की महान् उपलब्धि का एक महान् सूत्र है विचय-ध्यान। इसका ही अपर नाम है—प्रेक्षा-ध्यान। प्रेक्षा विचय-ध्यान है। इसमे विचारो का योग होता है। हम विचारो को देखते है, किन्तु यह न मानें कि बस यही अन्तिम है। यह आदि-बिन्दु है जो विचारो के आस-पास तैरता रहता है। विचारो के पानी मे वह तैरता बिन्दु है, गिरता है और फैल जाता है। पूरे विचार पर फैल जाता है। विचारो से सर्वथा मुक्त होकर हम प्रेक्षा का अभ्यास नही कर सकते। जब हमे प्रेक्षा की अगली मजिल उपलब्ध होगी, केवल देखने की और केवल जानने की, तब उसका स्वरूप बदल जाएगा। विचार नीचे रह जाएगे और प्रेक्षा ऊपर आ जाएगी। किन्तु प्रारभिक अवस्था मे जहा तक प्रेक्षा एक आलबन है वहा तक विचार और प्रेक्षा पानी मे तैरता बिन्दु है जो पूरे विचार पर फैल जाता है, पूरे पानी मे फैल जाता है। इससे यह भ्रम न पाल लिया जाए कि दर्शन की शक्ति उपलब्ध हो गई। यह तो प्रारभिक बिन्दु है, अत्यन्त प्राथमिक अवस्था है।

ध्यान कब-कहा ?

इस सदर्भ में विचय-ध्यान के विषय मे कुछेक प्रश्न उभरते है—विचय-ध्यान के लिए क्या-क्या सामग्री अपेक्षित होती है ? उसके लिए स्थान और समय की क्या मर्यादाए है ? उसके लिए आसन और मुद्रा कौन-सी होनी चाहिए ? ये प्रश्न स्वाभाविक है। आचार्यो ने अपने अनुभव के द्वारा बतलाया कि विचय-ध्यान के लिए देश और काल की कोई मर्यादा नही हो सकती। अमुक स्थान और अमुक काल मे ही ध्यान किया जाए—यह निर्धारणा नही हो सकती। ध्यान के लिए एक ही नियम पर्याप्त है कि जिस समय मे या जिस स्थान पर ध्यान करने से चित्त की एकाग्रता सधती है, वह समय और स्थान ध्यान के लिए उपयुक्त है। जिस आसन मे और जिस मुद्रा मे चित्त की समाधि उपलब्ध हो, वही आसन और मुद्रा ध्यान के लिए उपयोगी है। मूल बात स्थान या काल नही है आसन या मुद्रा नही है। मूल बात है—चित्त की समाधि, मन का समाधान, वाणी का समाधान और शरीर का समाधान। जब जहा ये तीनो सधते है वही समाधि के लिए उपयुक्त है।

मुक्ति की घटना

विचय की प्रक्रिया को समझ लेने पर ध्यान की बहुत बडी प्रक्रिया हस्तगत हो जाती है। हमारे हाथ मे एक बहुत बडा आलबन आ जाता है। वह आलबन है संयम का, संवर का, समता का और सामायिक का। विचय-ध्यान के बिना सयम घटित नही हो सकता। विचय ध्यान के बिना सवर घटित नही हो मकता। विचय-ध्यान के बिना सामायिक घटित नही हो मकता, मन मे समता का अवतरण नही हो सकता।

इसलिए समाधि की अभ्यर्थना करने वाला साधक, समाधि को उपलब्ध होने की भावना रखने वाला साधक, दर्शन और ज्ञान की क्षमता को विकसित करने वाला साधक, सबसे पहले विचय-ध्यान का आलबन ले। उसके सहारे वस्तु-सत्यो को खोजे, वस्तु-स्वभाव को जाने। जो वस्तु-स्वभाव को जानता है, उसे प्रियता और अप्रियता के सवेदन से, राग और द्वेष से, अहकार और ममकार से मुक्ति पाने का बहुत सरल उपाय उपलब्ध हो जाता है।

५. चित्त-शुद्धि और श्वास-प्रेक्षा

१ ध्येय का निश्चय करें। ध्येय दो है—वस्तु-धर्म और शरीर।

२ श्वास का मूल्याकन करे—

- एकाग्रता होती है, श्वास शात हो जाता है।
- श्वास शात होता है तब एकाग्रता अपने आप सध जाती है।

३ कायोत्सर्ग और प्राण श्वास से जुडे हुए है।

४ चचलता के दो कारण हैं—श्वास और मोह कर्म का विपाक।

५ श्वास-सयम से इन्द्रिय-सयम सहज हो जाता है।

पांच

चित्त की निर्मलता

साधना का सारा उपक्रम दर्शन और ज्ञान की शक्ति को विकसित करने के लिए है। समाधि का एक ही उद्देश्य है कि हम अपनी सहज उपलब्ध दर्शन और ज्ञान की शक्ति का उपयोग कर सकें, सत्य को देख सके, सत्य को जान सके।

प्रश्न है कि दर्शन और ज्ञान की शक्ति का विकास कैसे हो ? इसका उत्तर भी सीधा है। जब चित्त की निर्मलता होती है तब दर्शन और ज्ञान की शक्ति बढ़ती है। चित्त की जितनी निर्मलता उतनी दर्शन और ज्ञान की क्षमता।

ध्येय : एक-अनेक

साधना की विभिन्न प्रक्रियाए चित्तशुद्धि की प्रक्रियाए है। चित्त निर्मल बने, उस पर जो मैल जमा है, जो कलमष जमा है वह हट जाए और चित्त काच की भाति निर्मल बन जाए। चित्त-शुद्धि के लिए हम अनेक उपक्रम करते है, अनेक ध्येयों का आलबन लेते है। ध्येय एक ही नही है, अनेक है, कहना चाहिए ध्येय अनत हैं। प्रत्येक पदार्थ ध्येय बन सकता है। पदार्थ का प्रत्येक पर्याय ध्येय बन सकता है। जितने द्रव्य है और जितने उनके पर्याय है वे सब ध्येय बन सकते हैं। ध्यान करने वाला एक परमाणु को ध्येय बनाकर आत्मा को उपलब्ध हो जाता है। ध्यान करने वाला एक पर्वत को ध्येय बनाकर आत्मा को उपलब्ध हो जाता है, दर्शन और ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। पदार्थ कोई अच्छा या बुरा, शुचि या अशुचि नही होता। ध्यान के लिए पदार्थ पदार्थमात्र है, केवल पदार्थ है और कुछ नही। ध्यान करने वाले व्यक्ति के लिए वस्तु वस्तु है, अच्छी-बुरी या शुचि-अशुचि नही होती। वस्तु ध्येय बनती है, केवल ध्येय। यह ध्येय साधक को सिद्धि तक पहुचा देता है। ध्यान करने वाला किसी ध्येय को हेय या उपादेय नही मानता। हेय वस्तु भी ध्यान का आलबन बन सकती है।

चंचलता एक वाधा

ध्यान या समाधि के जगत् म हेय-उपादेय, अच्छा-बुरा, शुचि-अशुचि जैसे शब्द नही है। उसके शब्द-कोश मे एक ही शब्द है—वस्तु-धर्म, वस्तु-सत्य। न जाने कितने साधको ने ऐसी-ऐसी वस्तुओ को ध्यान का आलवन वनाया, जिसकी कल्पना भी नही की जा सकती। वे उस आलवन से सिद्धि तक पहुच गए। जिसकी आख सचाई को देखने लग जाती है, जिसमे सत्य को देखने की क्षमता जाग जाती है, वह कलेवर या चमडी को नही देखता, छिलके को नही देखता, किन्तु यथार्थ को ही देखता है।

यथार्थ को देखने मे सवसे वडी वाधा है—चित्त की चचलता। जव चित्त चचल होता है तव यथार्थ दिखाई नही देता, दूसरा-दूसरा रूप ही दिखाई देता है। जिसका चित्त स्थिर हो गया, चेतना का समुद्र निस्तरग और शान्त हो गया, वह यथार्थ को सहजतया देख सकता है। कोई वाधा नहीं आती। वह यथार्थ के अन्तराल का स्पर्श कर लेता है।

ध्येय की सीमा नही

विश्व का प्रत्येक पदार्थ और पदार्थ का प्रत्येक पर्याय ध्यान के लिए आलबन वन सकता है, ध्येय वन सकता है। इसलिए ध्येय के लिए कोई सीमा नही वनाई जा सकती कि अमुक प्रकार का ही ध्येय होना चाहिए। प्रारम्भ मे ध्यान-साधक के लिए कुछ विशेष प्रकार के ध्येयो का निर्देश इसीलिए करते है कि वे ध्यान सीखने मे सहायक वन सकें। वे शीघ्रता से उन्हे ध्यान मे आरूढ कर सकें। वच्चे को चलना सिखाने के लिए प्रारम्भ मे उसे कुछ कहना-सुनना पडता है। जव वच्चा चलना सीख जाता है तव वह अपनी इच्छानुसार आ-जा सकता है। फिर चलना सिखाने के लिए मार्ग-दर्शन अपेक्षित नही होता। इसी प्रकार ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था मे ध्यान-साधक को ध्येय सम्वन्धी कुछ मार्ग-दर्शन देना आवश्यक होता है।

वस्तु-सत्य

यदि ध्येयो का वर्गीकरण किया जाए तो दो मुख्य ध्येय वनते हैं—वस्तु-जगत् और शरीर। जो दृश्य-जगत् हमारी आखो के सामने है, कानो के समक्ष है त्वचा और रसना के समक्ष है, घ्राण के समक्ष या मानसिक वृत्तियो के समक्ष है, वह सारा दृश्य-जगत् या वस्तु-जगत् ध्येय वन सकता है। इसी प्रकार शरीर भी ध्येय वन सकता है। सत्य की खोज करने वाले व्यक्ति इन दोनो ध्येयो को सामने रखते है और इनके सहारे ध्यान की सिद्धि को उपलब्ध हो जाते है।

वस्तु-सत्य को जानना बहुत आवश्यक है। ध्यान किए बिना कोई भी व्यक्ति वस्तु-सत्य को नही जान सकता। आज तक दुनिया मे जितने लोगो ने सचाइयो को खोजा है, उन सबने ध्यान के द्वारा खोजा है। चंचलता के द्वारा वस्तु-सत्य तक नही पहुचा जा सकता। चित्त के नियोजन और एकाग्रता के बिना सत्य को नही खोजा जा सकता। वस्तु-धर्म की खोज ध्यान के द्वारा हुई। शरीर के सारे रहस्य ध्यान के द्वारा आविष्कृत हुए। शरीर मे घटित होने वाले प्रत्येक परिणमन का, उभरने वाली प्रत्येक पर्याय का बोध ध्यान के द्वारा हुआ। ध्यान करने वाले व्यक्ति के लिए दोनो बातें जरूरी है। वह वस्तु-सत्य की खोज करे और शरीर-सत्य की खोज करे। जो केवल वस्तु-सत्यो की ही खोज करता है और शरीर-धर्मो की खोज नही करता वह अधूरा रह जाता है। जो केवल शरीर-धर्मो की खोज करता है और वस्तु-धर्मो की खोज नही करता, वह भी अधूरा रह जाता है। हमारे दर्शन और ज्ञान की समग्रता तब बनती है जब वस्तु-धर्म और शरीर-धर्म दोनो की खोज हो।

शरीर की खोज

समाधि चाहने वाले व्यक्ति के लिए शरीर की खोज अत्यन्त अपेक्षित है। शरीर की खोज किए बिना चंचलता को समाप्त नहीं किया जा सकता और एकाग्रता के चरम बिन्दु का स्पर्श नही किया जा सकता। यद्यपि वस्तु-धर्म की खोज करने वाला व्यक्ति भी एकाग्र होता है, उसका शरीर स्थिर और शान्त होता है किन्तु जितना मूल्य शरीर-प्रेक्षा का है, शरीर की सचाइयो को जानने का है उतना मूल्य प्रारम्भ मे वस्तु-धर्म की खोज को नही दिया जा सकता।

प्राणी के पास चार उपकरण है—शरीर, वाणी, मन और श्वास। ये चारो चचल है। शरीर चचल है, मन और वाणी चचल है, श्वास भी चचल है। यह चचलता सबसे बडी समस्या है। जब तक चचलता है तब तक सत्य को नही जाना जा सकता, समाधि तक नही पहुचा जा सकता। समाधि मे गए बिना सत्य उपलब्ध नही होता, रहस्य अनावृत नही होता। हमारे उपकरण या साधन हैं चचल और हम उपलब्ध करना चाहते हैं स्थिरता। क्या श्वास और शरीर को स्थिर किया जा सकता है? क्या मन और वाणी को स्थिर किया जा सकता है? ये महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं। न केवल साधना करने वाले व्यक्तियो के सामने ये प्रश्न है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के लिए ये महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। जो व्यक्ति मन की शान्ति चाहता है, समस्याओ का समाधान चाहता है, तनावो से मुक्ति चाहता है, अच्छी नीद और अच्छा स्वास्थ्य चाहता है, उसको इन प्रश्नो को समाहित करना होगा।

भ्रान्ति और भ्रान्ति

मन बहुत चचल है। जब चचलता एक बिन्दु को पार कर जाती है तब आदमी पागल बन जाता है। चित्त का विक्षेप मन का विक्षेप है, चित्त की चचलता मन की चचलता है। आदमी चाहता है, चित्त शान्त रहे। आदमी चाहता है, गहरी नीद आए। बिछौने पर जाते ही स्मृति, कल्पना और विचार सताने लग जाते है। नीद उचट जाती है। आदमी बेचैन हो जाता है। वह चाहता है उस समय न स्मृति, न कल्पना और न विचार आए। पर इनसे छूट पाना सहज नही होता।

मन को स्थिर नही किया जा सकता। लोग भ्रान्तिवश मान लेते है कि मन स्थिर हो गया। यह एक ऐसी भ्रान्ति है जिसको समझने वाला भी नही समझ सकता। आदमी भ्रातियो का जीवन जीता है। वह भ्रान्तियो का सहारा लेता है। यदि वह भ्रान्तियो का सहारा न ले तो जैसा जीवन जो रहा है वैसा जीवन कभी जी नही सकता। भ्रान्तियो के सहारे ही वह मूर्च्छा, मोह और दु खो का जीवन जी रहा है। प्रकृति की व्यवस्था है कि तीव्रतम पीडा मे आदमी मूर्च्छित हो जाता है। मानसिक-जगत् की व्यवस्था है कि चेतना पर इतनी सघन मूर्च्छा छा जाती है कि आदमी कष्टो और क्लेशो का जीवन जो लेता है। यदि यह मूर्च्छा एक बार भी टूट जाए तो वह ऐसा जीवन कभी नही जी सकता। फिर वह व्यवहार का आदमी नही रहता। समाज के या परिवार के व्यक्ति नही चाहते कि कोई एक व्यक्ति ऐसी जागरूकता का जीवन जीए। वे स्वय मूर्च्छा का जीवन जीते है और दूसरो को भी इसी चक्रव्यूह मे रखना चाहते है। व्यवहार मे जीने वाला, काम और अर्थ की छाया मे जीने वाला कोई भी व्यक्ति यह नही चाहता कि दूसरा कोई इस जजाल से निकले और अमूर्च्छा का जीवन जीए। भ्राति एक मूर्च्छा है।

चचलता है चित्त की, मन की नही

चित्त की चचलता को मिटाया जा सकता है। चित्त की चचलता मिट सकती है, पर मन की चचलता कभी नही मिटती। हम मन और चित्त को ठीक से समझें। भ्रान्ति मे न रहे। मन का अर्थ है—स्मृति। मन का अर्थ है—कल्पना और मन का अर्थ है—चिन्तन। स्मृति, कल्पना और चिन्तन के अतिरिक्त मन कुछ भी नही है। क्या स्मृति, कल्पना और चिन्तन को स्थिर किया जा सकता है? क्या स्मृति, कल्पना और चिन्तन को रोका जा सकता है? कभी नही रोका जा सकता। दो अवस्थाए हैं—या तो मन होगा या मन नही होगा। मन होगा तो चचलता अवश्य होगी। मन को स्थिर नही किया जा सकता। चित्त को स्थिर किया जा सकता है। सारी चंचलता चित्त की है। स्थिरता चित्त की होगी, मन की नही। मन तो चचल ही है, वह क्या स्थिर होगा! उसके घटक चचल हैं।

वह फिर स्थिर कैसे होगा ? मन को स्थिर करने का अर्थ होगा मन को अमन बना देना। जो स्थिर अवस्था है वह अमन है, मन नही।

वाणी, शरीर और श्वास को स्थिर किया जा सकता है। मन को अमन बनाया जा सकता है।

हम श्वास के साथ नही चलते

हमारी समाधि की यात्रा शरीर-प्रेक्षा से प्रारभ होती है, श्वास-प्रेक्षा से प्रारभ होती है। श्वास हमारे साथ चल रहा है, हम श्वास के साथ नही चल रहे है, यह बहुत बडी कठिनाई है। श्वास-प्रेक्षा तब फलवती होती है, जब हम श्वास के साथ चलते है। जब तक हम श्वास का मूल्याकन नही कर पाते तब तक उसके साथ चलने की बात पूर्णरूप से प्राप्त नही होती।

एक बहुत बडा कलाकार था। वह जिस मुहल्ले मे रहता था वहा अनेक धनी, रईस लोग रहते थे। वह घूमने निकलता। जो भी सामने मिलता, वह उसका अभिवादन करता। धनी लोग भी घूमने निकलते। कलाकार विनम्रता से उन्हे प्रणाम करता।

एक बार राजा ने कलाकार को अपने दरबार मे आमत्रित किया। साथ ही साथ उस मुहल्ले के धनी लोगो को भी निमत्रण दिया। राजा दरबार मे बैठा है। धनी लोग आ रहे है और अपने पूर्व निर्धारित स्थान पर बैठते जा रहे हैं। एक सेवक उनको यथास्थान पर बिठा रहा है। राजा का उनकी ओर कोई ध्यान ही नही है। इतने मे कलाकार पहुचा। उसको देखते ही राजा खडा हुआ। उसको नमस्कार कर अपने पास बिठा लिया। सारे लोग आश्चर्यचकित रह गए।

सभा विसर्जित हुई। सब अपने-अपने घर जाने लगे। कलाकार ज्यो ही सभा-भवन से बाहर निकला, उन धनिको ने उसे घेर लिया। उन्होने पूछा—तुम हम सबको प्रणाम करते हो और स्वय राजा तुम्हे प्रणाम करता है। आश्चर्य की बात है ! कलाकार ने विनम्रभाव से कहा—जो कला का मूल्य नही जानते उन्हे कलाकार प्रणाम करता है और जो कला का मूल्य जानते है, वे कलाकार को प्रणाम करते हैं।

यही घटना हमारे जीवन मे घटित हो रही है। हम श्वास का मूल्य नही जानते, इसलिए बेचारा श्वास हमारे पीछे-पीछे दौड रहा है। जिस दिन हम श्वास का मूल्य जान जायेगे तब हम श्वास के पीछे-पीछे दौडेंगे।

श्वास का मूल्य

समाधि की साधना करने वाला साधक सबसे पहले श्वास का मूल्याकन

करता है। जो श्वास का मूल्य नही समझता है, वह समाधि की साधना नही कर सकता। जब श्वास शात होता है तब वाणी अपने आप शांत हो जाती हैं। जब श्वास शात होता है तब शरीर स्थिर हो जाता है। जब श्वास शात होता है तब चित्त स्वय स्थिर हो जाता है और मन अमन की स्थिति मे चला जाता है। जब श्वास शात होता है तब स्मृतिया, कल्पनाए और विचार शात हो जाते है। ये सब श्वास के साथ चलते है। सब श्वास के अनुगामी है। श्वास बहुत ही मूल्यवान् है।

जिज्ञासा होती है कि श्वास का मूल्य क्यो? हम प्राणी है। प्राणी इसीलिए हैं कि हमारे भीतर प्राण का प्रवाह है। हमारे मे दस प्रकार की प्राण-शक्तिया है—पाच इन्द्रियो के पाच प्राण, मन प्राण, वचन प्राण, शरीर प्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण और आयुष्य प्राण। इनके आधार पर प्राणी जीता है। जब यह प्राणो की दीपशिखा बुझ जाती है तब प्राणी मृत्यु की गोद मे चला जाता है। जब तक प्राण, तब तक जीवन। प्राण समाप्त, जीवन समाप्त। सारा जीवन प्राणाधारित है। शरीर चल नही सकता। एक अगुली भी नही हिल सकती यदि शरीर-प्राण न हो। जब शरीर प्राण की ऊर्जा मिलती है तब शरीर सक्रिय होता है। जब यह प्राण की शक्ति सिमट जाती है, तब आदमी लकवे का शिकार होता है। इन्द्रियो की चचलता, मन, वाणी और श्वासोच्छ्वास की चचलता—सब प्राण-धारा से निष्पन्न होती है। प्राण ही चचलता पैदा करता है, अन्यथा सब निष्प्राण हो जाता है।

प्राण और श्वास

प्राण और श्वास का गहरा सबध है। श्वास के बिना प्राण काम नही करता। प्राण के लिए श्वास अनिवार्य है। शरीरशास्त्र का प्रतिपादन है कि श्वास के साथ यदि प्राणवायु (ऑक्सीजन) नही जाता तो कुछ भी काम नही होता। फेफडा रक्त की शुद्धि इसी प्राणवायु के आधार पर करता है। कोशिकाए ऊर्जा उत्पन्न करती है, विद्युत् पैदा करती है, वह भी ऑक्सीजन के आधार पर होता है। मस्तिष्क की सक्रियता भी प्राणवायु के आधार होती है। जब ऑक्सीजन मिलता है तब शरीर का छोटा-बडा प्रत्येक अवयव क्रियाशील होता है। यदि कुछ क्षणो के लिए भी ऑक्सीजन न मिले तो आदमी मूर्च्छित हो जाता है, मूर्च्छित समाधि मे चला जाता है। प्राण को काम करने के लिए ऑक्सीजन चाहिए। वह प्राप्त होता है श्वास से। श्वास के साथ-साथ प्राणवायु भीतर जाता है। यदि कोई श्वास न ले तो प्राणवायु भीतर नही जा सकता। प्राणवायु के अभाव मे प्राणशक्ति काम नही कर सकती। इधन के बिना मशीन नही चलती। अकेला श्वास समूचे शरीर की मशीनरी को सचालित करने के लिए

इधन देता है। यही एकमात्र स्रोत है। दूसरा कोई स्रोत नही जो शरीर-तत्र को इधन की पूरी सप्लाई कर सके। हमारे जीवन का मूल्य है श्वास।

प्रश्न होता है कि श्वास जीवन का मूल्य है तो उसमे साधना का क्या सबध है? हमे साधना की दृष्टि से ही इसकी चर्चा करनी है। जीवन की दृष्टि से डॉक्टर अच्छी चर्चा प्रस्तुत कर सकता है।

चंचलता के दो हेतु

समाधि की दृष्टि से श्वास का क्या मूल्य है? श्वास से प्राण सचालित होता है, चचलता बढती है। चचलता के दो हेतु हैं—श्वास और मोहकर्म का विपाक। श्वास बाहरी कारण है और मोहकर्म का विपाक भीतरी कारण है। जब भीतर मे मोह के परमाणु सक्रिय होते है तब चित्त की चचलता बढ जाती है। यह चचलता नाडी-सस्थान मे अभिव्यक्त होती है। नाडी-सस्थान के बिना कर्म-जनित चचलता अभिव्यक्त नही हो सकती। मूर्च्छा कितनी ही हो, वह इस माध्यम के बिना प्रकट नही हो सकती। बिजली का वोल्टेज कितना ही हो, प्रकाश की अभिव्यक्ति बल्ब के बिना नही हो सकती। विद्युत् का प्रवाह तारो मे गतिशील है। परन्तु इस काच की दीपिका के बिना वह प्रकट नही हो सकता। भीतर मोह के परमाणु कितने ही सक्रिय हो, उत्तेजित हो किन्तु यदि नाडी-सस्थान मे चचलता नही है तो उनकी चचलता प्रकट नही होगी। नाडी-सस्थान की चचलता के लिए प्राण को चचल होना जरूरी है और प्राण की चचलता के लिए श्वास का चचल होना जरूरी है। सारा सबध जुडता है श्वास के साथ।

श्वास और आवेग

काम, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, अहकार आदि की तरग, श्वास की चचलता के बिना नही उभरती। क्रोध आता है तो श्वास तीव्र हो जाता है या श्वास तीव्र होता है तब क्रोध की तरग आती है। श्वास शात होता है तो आवेग शात हो जाता है, जब आवेग शात होता है तो श्वास स्वय शात हो जाता है। दोनो का गहरा सबध है। श्वास का मूल्याकन नही करने वाला समाधि मे विघ्न डालने वाले आन्तरिक कारणो से नही निपट सकता। इसलिए उसको चाहिए कि वह सबसे पहले श्वास-प्रेक्षा का अभ्यास करे। वह यह जान जाए कि श्वास शात कब-कैसे किया जा सकता है? कोई भी उत्तेजना की तरग उठे, श्वास मद कर दे, उत्तेजना की तरग शात हो जाएगी।

आरोहण में क्रम है, छलाग नही

श्वास और शरीर नश्वर है। आगे-पीछे इन्हे छोडना ही है। फिर इस

अशाश्वत साधन से आत्मा जैसा शाश्वत तत्त्व कैसे उपलब्ध होगा? इस क्षण-भगुर साधन से अजर, अमर, अविनाशी चैतन्य का साक्षात्कार कैसे होगा? साधना-काल मे ये प्रश्न आते हैं। प्रश्न स्वाभाविक है। हमारा उद्देश्य है समाधि को प्राप्त करना। प्राप्ति क्रम से ही संभव है। उसमे छलांग नही हो सकती। यदि कोई छलाग भरकर ही आरोहण करता है तो मकान मे सीढियो का कोई उपयोग ही नही होता। एक-एक सीढ़ी पार करके ही आरोहण किया जा सकता है। छलाग नही भरी जाती। चढ़ने का क्रम होगा। वह क्रम द्रुतगामी हो सकता है, मदगामी हो सकता है। बिना क्रम कोई ऊपर नही जा सकता। चैतन्य को उपलब्ध करने का भी एक क्रम है। उस क्रम की पहली सीढी है—श्वास-प्रेक्षा। जो व्यक्ति श्वास को दीर्घ करने का, श्वास को मद करने का अभ्यास करता है उस व्यक्ति के सामने यह प्रश्न नही होता कि मन बहुत चचल है, इन्द्रिया बहुत सताती है, व्यर्थ सकल्प-विकल्प आते हैं। मन और मस्तिष्क बोझिल रहता है। ये सारे प्रश्न अपने आप समाहित हो जाते हैं। श्वास सयम के साथ-साथ इन्द्रियो का सयम, वाणी का संयम, सभी प्रकार के सयम सध जाते है। साधक शब्दातीत और विकल्पातीत स्थिति में चला जाता है। क्योकि प्राण की चचलता के साथ श्वास का सबध है और शब्द को संचालित करने वाली है प्राण-धारा। वह शब्द को पकडती है। प्राण के द्वारा स्वर-यत्र सक्रिय होता हैं। सारी चचलता शब्द पर आधारित है। चंचलता मन की नही होती। चचलता होती है शब्द की। चचलता का अर्थ है—स्मृति। शब्द के बिना स्मृति नही होती, कल्पना नही होती और चिन्तन नही होता। स्मृति, कल्पना और चिन्तन शब्दात्मक होते है। ये सब चचलता के हेतु हैं। हमे मन और चित्त को स्थिर नही करना है, हमे शब्द को स्थिर करना है। हम शब्दातीत बन जाए। शब्द समाप्त होता है तो मन अपने आप समाप्त हो जाता है। मन चलता है शब्द के सहारे, शब्द चलता है प्राणवायु के सहारे और प्राणवायु चलता है श्वास के सहारे। जब प्राणवायु शात होता है तो श्वास शांत होता है, श्वास शात होता है तो शब्द शात होता है। श्वास की साधना करने वाला व्यक्ति शब्दातीत, कल्पनातीत और विचारातीत स्थिति मे चला जाता है।

प्राणवायु को समझना और उसे शांत करना समाधि के लिए पहला प्रस्थान है और उस पहले प्रस्थान की यात्रा करने के लिए श्वास को शान्त करना दूसरा प्रस्थान है। जैसे-जैसे ये दोनो प्रस्थान स्पष्ट होते जाएंगे, वैसे-वैसे समाधि की यात्रा निर्विघ्न होती जाएगी।

६ चित्त-शुद्धि और शरीर-प्रेक्षा

१. शरीर मे शक्ति-केन्द्र है, जीवनी-शक्ति—प्राण का प्रवाह।

२. शरीर मे चैतन्य केन्द्र है—इन्द्रिय चेतना, मनश्चेतना, चित्त की चेतना और इनसे परे सूक्ष्म-चेतना भी है।

३. शरीर मे आनन्द केन्द्र है—सुख-दु.ख के सवेदन केन्द्र, स्वभाव केन्द्र, चरित्र-केन्द्र और व्यवहार-केन्द्र।

४ प्राण का प्रवाह असन्तुलित होता है तब रोग पैदा होता है।

- चैतन्य-केन्द्र मलिन होता है तब ज्ञान का अवरोध होता है।
- आनन्द-केन्द्र मूर्च्छित होता है तब सुख-दु.ख का द्वन्द्व होता है।

५. शरीर-प्रेक्षा से प्राण-प्रवाह का सन्तुलन, फलत. स्वास्थ्य का विकास।

- चैतन्य-केन्द्र निर्मल, फलत ज्ञान का विकास।
- आनन्द-केन्द्र जागृत, फलतः रसानुभूति का परिवर्तन।

छह

शरीर एक माध्यम है

चित्त-शुद्धि के लिए श्वास का स्थान पहला है और शरीर का स्थान दूसरा। श्वास समूचे शरीर-तन्त्र को प्रभावित करता है। वह प्राण, चेतना, इन्द्रिय, मन, चित्त—सबको प्रभावित करता है, इसलिए उसका स्थान पहला होता है।

हमारा शरीर सात धातुओं का शरीर कहा जाता है। **सप्त धातुमय शरीर**—यह पुरानी परिभाषा है, आयुर्वेद की परिभाषा है। आज का विज्ञान कहता है कि सोलह तत्त्वो से शरीर बना हुआ है। शरीर का एक स्वरूप है—धातु से बना हुआ, तत्त्व से बना हुआ। हमारी आखो के सामने वही स्वरूप आता है। चमडी, रोम, केश, लोही, स्नायु-जाल, मास ये सामने आते है। शरीर का वही सस्थान हमारे चित्त मे जमा हुआ है। शरीर एक और उसे देखने की दृष्टिया अनेक। सामान्य आदमी शरीर को चर्ममय, मासमय, रक्तमय देखता है। एक डॉक्टर चिकित्सा की दृष्टि से उसे देखता है। उसे और कुछ अधिक बातें दिखाई देती है। कोई कामुक होता है वह केवल रग-रूप की दृष्टि से देखता है। एक साधक शरीर को दूसरी दृष्टि से देखता है। उसका अपना दृष्टिकोण होता है। शरीर माध्यम है। इस माध्यम से ही हमारी अगली यात्रा हो सकती है। इसके अतिरिक्त कोई हमारे पास माध्यम नही है। यन्त्र हमारे माध्यम बनते है। ये भी तब माध्यम बनते हैं जब शरीर माध्यम बनता है। जिस दिन शरीर माध्यम बनना बन्द हो जाता है, यन्त्र बेकार पडे रह जाते है। कितने ही सूक्ष्मवीक्षण हो, दूरवीक्षण हो, कोई भी यन्त्र हो, सारे के सारे यन्त्र तब माध्यम बनते हैं जब शरीर माध्यम बनता है। हमारे सामने एकमात्र उपाय है—शरीर। इसलिए साधना करने वाले व्यक्ति को भी शरीर को समझना बहुत आवश्यक होता है। जो शरीर को नही जानता वह अध्यात्म की गहराइयो मे नही जा सकता। वह अध्यात्म की ऊची चढाइया नही चढ सकता, आरोहण नही कर सकता। आरोहण के लिए उसे शरीर का सहयोग मिलना चाहिए। यह बहुत जरूरी है।

वैराग्य की दृष्टि से कुछ धर्म के आचार्यों ने शरीर के विषय मे कुछ बातें बताई —यह शरीर अपवित्र है। मल-मूत्र से भरा है। लोही, पीप, दुर्गन्धि-पदार्थ, कूडा-करकट इस शरीर मे भरा है। यह भी एक दृष्टिकोण है। अशौच भावना के लिए, अशौच अनुप्रेक्षा के लिए यह भी एक दृष्टिकोण है। इससे वैराग्य होता है। यह भी सचाई है, यथार्थ है और वह सचाई जब सामने आती है तो मनुष्य को वैराग्य होता है। जब मनुष्य सचाई को नही जानता, आख मूदकर चलता है, तो वैराग्य नही हो सकता। यह सचाई है, इसे हम अस्वीकार नही करें। किन्तु एक कठिनाई हो गई कि सचाई का प्रतिपादन करने वालो ने वैराग्य की दृष्टि से किया था और हमने समूचे शरीर को ही निकम्मा मान लिया। ऐसा मान लिया मानो शरीर तो छोडने योग्य ही है, अपवित्र है, खराब है, गन्दा है, निन्दनीय है, इससे हमे कोई लेना-देना नही। हमे तो आत्मा चाहिए। आत्मा को प्राप्त करना है, शरीर से हमे कोई मतलब नही। यदि हम यह कल्पना करें कि शरीर और श्वास को समझे बिना, प्राणधारा को जाने बिना तथा सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म शरीर के रहस्यो को ज्ञात किए बिना ही आत्मा तक पहुच जाएगे तो यह अति कल्पना होगी। पाच महीने नही, पाच जन्म तक भी हम नही पहुच सकेंगे। शरीर को इसीलिए समझना जरूरी है। फिर वह माध्यम बनता है आगे तक पहुचने के लिए।

शरीर का मूल्याकन

हमारा शरीर बहुत मूल्यवान् है। इतने रहस्य भरे पडे हैं। वह रहस्य एक साधक ही जान सकता है। एक डॉक्टर भी नही जान सकता। एक कुशल शल्य-चिकित्सक भी उन रहस्यो को नही जानता जो अध्यात्म के आचार्यो ने खोजे है। श्वास बांए नथुने से आता है, दांए नथुने से आता है। दोनो नथुनो से आता है। क्यो आता है और क्या परिणाम होते हैं, कोई डॉक्टर नही बता सकता। परिणाम निश्चित है कि बाए से आप श्वास लें, शरीर मे ठडक व्याप्त हो जाती है। दाए से श्वास लें शरीर मे गर्मी व्याप्त हो जाएगी। दोनो से श्वास लें, सुषुम्ना चले, आपका चित्त शान्त हो जाएगा, विकल्प शान्त हो जाएगे। क्यो होता है ऐसा, कोई भी शल्य-चिकित्सक या फिजीशियन इसकी व्याख्या नही दे सकता। अध्यात्म का मर्मज्ञ इसकी व्याख्या दे सकता है।

अन्तर्यात्रा के रहस्य

हृदय मे प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है, नासाग्र मे प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है, नाभि मे प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है, गुदामूल मे प्राण का एक प्रकार प्रवाह है और हमारी समूची त्वचा मे प्राण का एक प्रकार का प्रवाह है।

प्राण के कई प्रवाह है । कोई भी डॉक्टर नही जानता कि ये प्राण के प्रवाह है? हैं या नही है या क्यो है, नही जानता इस बात को। अभी यह विषय ही नही बना है। ये सारी बातें खोजी गई साधना की दृष्टि से, अन्तर् की यात्रा करने के लिए। केवल सप्त धातुमय शरीर को जानने मात्र से भीतर की यात्रा नही हो सकती, भीतर के दरवाजे नही खुल सकते। भीतरी दरवाजो को खोलने के लिए, भीतर की यात्रा करने के लिए इन सारे रहस्यो को अनावृत करना, उद्घाटित करना परम आवश्यक होता है। हमारे शरीर मे नाडी-तन्त्र है, नाडी-तन्त्र के बारे मे आज का चिकित्सक जितनी अच्छी प्रकार से जानता है, उतना कोई दूसरा नही जानता। उसका फक्शन क्या है ? नर्वस-सिस्टम का फक्शन क्या है ? उसके सारे नर्व—ग्राही और सवेदी किस प्रकार क्रिया करते हैं। इन सबको एक कुशल चिकित्सक अच्छी प्रकार जानता है, किन्तु इन नाडियो से किस प्रकार प्राण की धारा प्रवाहित की जा सकती है और कहा ले जाई जा सकती है, चित्त-वृत्तियों को कहा-कहा ले जाया जा सकता है यह बात चिकित्सा-शास्त्र का विषय नही है।

ग्रन्थि-तन्त्र

हमारे शरीर मे दूसरा महत्त्वपूर्ण सस्थान है—ग्रन्थि-तन्त्र । दो प्रकार की ग्रन्थिया है। एक है—अन्त स्रावी ग्रन्थिया, दूसरी हैं वहि स्रावी ग्रन्थिया। लीवर आदि वहि.स्रावी ग्रन्थिया है। पिच्यूटरी, पिनीयल, एड्रीनल—ये सारी अन्त स्रावी गन्थिया है, जिनका स्राव सीधा रक्त मे मिल जाता है, वाहर नही आता। यह समूचा ग्रन्थि-तन्त्र वहुत महत्त्वपूर्ण है। आज का वैज्ञानिक, चिकित्सा-शास्त्री ग्रन्थियो के वारे मे वहुत आगे वढा है और इस विषय मे काफी जानकारी वढी है जो कि अध्यात्म की जानकारी के काफी निकट पहुच गई है।

शरीर का तीसरा महत्त्वपूर्ण तन्त्र है—विद्युत्-तन्त्र, हमारे शरीर की विजली। प्रत्येक अवयव को काम करने के लिए विजली की जरूरत होती है। हर कोशिका को विजली की जरूरत होती है। कोई भी सजीव कोशिका विजली के विना अपना काम नही चला सकती। सारा शरीर सचालित हो रहा है विजली के द्वारा। पुराने आचार्यो ने जिसे प्राणधारा कहा, उसका ही एक दूसरा रूप है यह विद्युत्-तन्त्र । हाथ, पैर—ये काम के तो वहुत है किन्तु इनका इतना मूल्य नही है। ये केवल काम करने वाले है, किन्तु काम का सचालन करते वाले नही है। हमारे शरीर मे जिनका मूल्य है उनमे तीन मुख्य है—नाडी-सस्थान, ग्रन्थि-सस्थान और विद्युत् का प्रवाह, प्राण-प्रवाह। ये सारे सचालन करने वाले है, सचालक हैं। हमे साधना की दृष्टि से इन सवको जानना इसलिए जरूरी है कि नाड़ी-सस्थान के माध्यम से हम सारे केन्द्रो को जान

सकते हैं।

मस्तिष्क और केन्द्र

यह मस्तिक केन्द्रो से भरा पडा है। क्रोध का केन्द्र मस्तिष्क मे है। लोभ का केन्द्र मस्तिष्क मे है। भय, घृणा, उत्तेजना, वासना, स्वार्थ, झगडालूपन, वाद-विवाद करना, विभिन्न रुचियो का होना—इन सारी वातो के केन्द्र इस मस्तिष्क मे है। मस्तिष्क-विद्या का विशेषज्ञ जान जाता है देखकर कि विन्दु कितना उभरा हुआ है। वता सकता है देखकर कि यह आदमी लालची है या नही। मस्तिष्क के उभरे हुए स्थानो को देखकर मस्तिष्क-विद्या का विशेषज्ञ वहुत सारी भविष्य-वाणिया कर देता है कि आदमी कैसा है? इसका चरित्र कैसा है? इसका व्यवहार कैसा है?मस्तिष्क-विद्या के विशेषज्ञो ने इन केन्द्रो की खोज की और आज की चिकित्सा ने भी मस्तिष्क के केन्द्रो की खोज कर ली। हाइपोथैलमस मस्तिष्क का एक हिस्सा है। वह तापमान को नियन्त्रित करता है। उसमे नीद का केन्द्र है, भूख का केन्द्र है। विज्ञान ने भी वहुत वडे केन्द्रो की, विन्दुओ की खोज की। चिकित्सा-विज्ञान, मस्तिष्क-विद्या का विज्ञान और अध्यात्म का विज्ञान—तीनो बिन्दुओ के आस-पास घूम रहे है। हमे शरीर को जानना इसलिए जरूरी है कि साधना करने वाले व्यक्ति को क्षमाशील और सहिष्णु होना चाहिए। उसके कषाय कम होने चाहिए। उसकी आदतो मे परिवर्तन होना चाहिए। क्रूरता कम होनी चाहिए। जितने दोष माने जाते है, वुराइया मानी जाती है, वे समाप्त होनी चाहिए। धर्म का यही काम है, साधना का यही प्रयोजन है।

वैज्ञानिक युग मे धर्म

इस वैज्ञानिक युग मे धर्म मखौल वना हुआ है। मखौल, कि पाच मिनट पहले तो किसी आदमी का गला काटा, उसके वाद वीतराग वन गया।

कल ही एक भाई आया मेरे पास। प्रोफेसर है एक कॉलिज मे। उसने कहा—मुझे आते हुए सकोच होता है। सकोच, डर नही लगता। सकोच इसलिए कि मैं झूठ वोलता हू, नही रह सकता झूठ वोले बिना और दो मिनट के वाद मैं धार्मिक वनू, आगे जाकर वैठू। वदल जाऊ तव तो ठीक है, आज जाऊ साधुओ के पास और कल वदल जाऊ तव तो ठीक है, वहुत अच्छी वात है। जाने का अर्थ है। पर रोज झूठ वोलता ही चला जाऊ और रोज धर्म-स्थान मे भी जाता रहू, यह विडम्बना की वात है। इससे वडी और क्या विडम्बना होगी? आज धर्म के सामने चुनौती है, धर्म के सामने एक प्रश्न-चिह्न है कि आदमी रोज धर्म करता जाता है और वुराइया भी वैसी की वैसी रोज करता चला जाता है। सीख लेता है धर्म के द्वारा। चतुराई वढ़ती है, कुछ ज्ञान मिलता है तव और निपुण हो

जाता है। इस धर्म से कुछ भला होगा, बात समझ मे नही आती। ध्यान करने का, साधना करने का एक प्रयोजन है कि जीवन की बुराइया समाप्त होनी चाहिए, आदमी बदलना चाहिए, आदतें बदलनी चाहिए, नशे की आदत छूटनी चाहिए, व्यसन छूटने चाहिए। एक व्यक्ति का पूरा रूपान्तरण होना चाहिए। सारा व्यक्तित्व बदल जाना चाहिए। पता चले यह धार्मिक आदमी है। पता चले यह आस्तिक आदमी है। पता चले यह आत्मा को मानने वाला व्यक्ति है। यह सूक्ष्म-सत्यो को जानने वाला व्यक्ति है। यह परम चैतन्य मे आस्था रखने वाला व्यक्ति है। व्यवहार से जब कोई भी पता न चले किसी को कि यह धार्मिक है, तो धर्म वहा अर्थशून्य हो जाता है।

चरित्र के घटक-केन्द्र और ग्रन्थियां

चरित्र बदले, स्वभाव बदले और व्यवहार बदले—तीनो बातें बहुत आवश्यक हैं। इन तीनो बातो को बदलने के लिए इन केन्द्रो को खोजना बहुत जरूरी है। हमारा जो भी चरित्र होता है वह मस्तिष्कीय केन्द्रो और ग्रन्थियो के द्वारा बनता है। ग्रन्थिया स्राव करती हैं, हारमोन्स का निर्माण करती हैं। वे रसायन मस्तिष्क मे जाते हैं, नाडी-सस्थान मे जाकर मिलते हैं, बिन्दुओ को उत्तेजित करते है और उन उत्तेजनाओ के आधार पर मनुष्य का चरित्र और व्यवहार बनता है। एक आदमी शात खडा है, कोई डर नही, कोई भय नही, अकस्मात् देखा—सामने डाकू आ रहे हैं, हाथ मे पिस्तौल है, बन्दूक है, देखते ही घबरा जाएगा, डर जाएगा। क्यो ? क्या वह डाकू से डरता है ? क्या वह शस्त्र से डरता है ? पिस्तौल से डरता है ? बिल्कुल नही ! यह भ्रान्ति है हमारी। उससे नही डरता। किन्तु भय का केन्द्र उत्तेजित होता है, इसलिए डरता है। वही आदमी नीद मे सोया हुआ है, पास मे ही डाकू आ जाए, पिस्तौल लिये, सामने खड़ा हो जाए, कोई भय नही होगा। जब तक भय का केन्द्र उत्तेजित नही होता, भय नही होता। डाकू की उपस्थिति से भय नही है। शस्त्र की उपस्थिति से भय नही होता, किन्तु भय के केन्द्र के उत्तेजित हो जाने पर भय होता है। जब भय होता है, भय का बिन्दु उत्तेजित होता है, यह अभिवृक्क ग्रन्थि सक्रिय हो जाती है, अधिक स्राव करती है और आदमी नाना प्रकार की चेष्टाएं करने का, प्रहार करने का प्रयत्न करता है, अधिक शक्ति बटोर लेता है। यह सारी प्रक्रिया पूरी होती है हमारे शरीरगत आन्तरिक हेतुओ से। ये हेतु है—नाड़ी-सस्थान मे रहे हुए रसायन और विद्युत्-प्रवाह। ये जो सारे परिवर्तन होते है, इन परिवर्तनो को जाने बिना हम कैसे साधना मे आरोहण कर सकते है ? कैसे इन चरित्र और व्यवहार मे आने वाले दोषो से बच सकते है ?

प्रतिक्षण परिवर्तन

परिवर्तन समूचे जगत् का स्वभाव है। जगत् में जितने तत्त्व हैं, जितने द्रव्य हैं, जितने पदार्थ है, उनमे तीन प्रकार के धर्म होते हैं—उत्पन्न होना, नष्ट होना और अस्तित्व मे स्थिर रहना। प्रत्येक पदार्थ अपने अस्तित्व मे स्थिर है। किन्तु स्थिर होते हुए भी अस्थिरता का चक्र भी बराबर चल रहा है। उत्पन्न भी हो रहा है, नष्ट भी हो रहा है। बदल रहा है। कितना बदलता है? जैन दर्शन ने इस विषय पर बहुत सूक्ष्म विवेचन किया है। हर पदार्थ प्रति समय बदल जाता है। समय एक बहुत छोटा काल-माप है। एक आंख मूंदते हैं, खोलते है, असंख्य समय बीत जाते हैं अर्थात् आख के एक निमेष मे और उन्मेष मे हर पदार्थ असख्य बार बदल जाता है। आश्चर्य न करें। आज का विज्ञान भी बहुत सूक्ष्मता मे जा रहा है। अभी पढा कि ब्रिटेन मे एक कैमरा विकसित हो रहा है, उसकी खोज हुई है। वह एक सैकिण्ड मे साठ करोड़ फोटो ले सकेगा। उस कैमरे मे यह क्षमता है कि एक-बटा-दो हजार करोडवें हिस्से मे होने वाले परिवर्तन को वह पकड सकेगा। आश्चर्य है, हमारा जगत् कितना सूक्ष्म है, कितना बदलता है। आदमी सोचता है—मै कुछ बदला ही नही, कुछ नही बदला। हर क्षण मे कितना बदल जाता है आदमी, कुछ पता ही नही चलता। प्रतिपल बदल रहा है, प्रतिक्षण बदल रहा है। इन सूक्ष्म परिवर्तनो, सूक्ष्म परिणमनो को हम छोड़ दें तब तो आदमी कोई काम ही नही कर सकता। मोटे-मोटे होने वाले परिवर्तनो को भी पकड ले तो भी बडी बात है। बदलना जरूरी है और बदलने के लिए उन चैतन्य-केन्द्रो को, ग्रन्थियो को और हमारे मस्तिष्क मे विद्यमान स्वभाव, व्यवहार, आदतो और चरित्र को नियन्त्रित करने वाले बिन्दुओं को खोजना जरूरी है। खोजने से क्या होगा? कोई अर्थ होना चाहिए। जान लिया, क्या हुआ? जानने का एक बहुत बडा अर्थ है। हम जानते नही तो हमारा अज्ञान नही मिटता, हमारी मूर्च्छा नही टूटती। जब तक यह मूर्च्छा की पट्टी आख पर बंधी रहती है तब तक हम बहुत बडी सम्पत्ति को रौंदते हुए ऊपर से निकल जाते हैं। हमे पता नही चलता कि कितनी अगाध सम्पदा के हम अधिकारी हो सकते हैं।

आंखों पर पट्टी

एक बार दो देवताओ मे विवाद हो गया कि भाग्य बडा है या पुरुषार्थ? पुरानी कहानी है। विवाद हर व्यक्ति के मन मे पैदा होता है, चाहे मनुष्य हो, चाहे देवता हो। निश्चित हुआ, परीक्षा करें। एक देवता ने कहा—देखो! भाग्य बड़ा नहीं होता, पुरुषार्थ बडा होता है। दूसरे ने कहा—नही! नही। उस आदमी को देखो। तुम्हे साक्षात् प्रमाणित करूंगा कि पुरुषार्थ बड़ा नही होता, भाग्य बड़ा

होता है।

पति-पत्नी जा रहे थे। देवता ने रास्ते के बीच रत्नो का ढेर लगा दिया। रत्न ही रत्न बिखेर दिए। जब आस-पास आए, पत्नी ने कहा—अभी तो हमारी आखे अच्छी है, हम देख सकते है, हमे सब कुछ दिखाई देता है। कभी ऐसा भी हो सकता है कि बुढापा आने के साथ-साथ हमारी आखे चली जाए, हम अन्धे हो जाए। फिर काम कैसे चलेगा? पति ने कहा—परीक्षा कर लें। देखे, कैसे काम चलेगा? दोनो ने आखो पर पट्टी बाध ली। दोनो चले। जहा रत्न बिखरे हुए पडे थे, ढेर लगा था आस-पास मे, उससे आगे निकल गए। कुछ आगे जाकर पति बोला—आखो के बिना काम तो चल जाएगा, ऐसी कोई बात नही है। खोल लो पट्टी।

पट्टी खोल ली। देवता ने कहा—देखा तुमने! भाग्य मे नही था, कुछ नही मिला। भाग्य बडा है पुरुषार्थ से।

भाग्य और पुरुषार्थ की चर्चा को हम छोड दे किन्तु इस बात को हम नही छोडेंगे कि जब तक आखो पर मूर्च्छा की पट्टी बधी हुई है तब तक हमारे आस-पास मे, हमारे सामने, दाए-बाए, चारो तरफ सम्पदा बिखरी पडी है, पर हमे कुछ भी पता नही चलता। हम उस सपदा से अनजान रह जाते है।

शरीर-प्रेक्षा के तीन परिणाम

अज्ञान मिटे, मूर्च्छा मिटे और हमारी सक्रियता, हमारे वीर्य और पराक्रम की ज्योति जो बुझी पड़ी है वह प्रज्ज्वलित हो उठे। कर्म के कारण हमारी चेतना मलिन हो रही है, आवृत हो रही है। जब चेतना मलिन हो रही है तो सूक्ष्म-शरीर मे ऐसी व्यवस्था है कि इस स्थूल शरीर मे जितने केन्द्र बने है वे केन्द्र भी मलिन बने हुए है। हमारी चेतना मोह से ग्रस्त है, मूर्च्छित है इसलिए हमारा आनन्द का केन्द्र भी मूर्च्छित है, सोया पडा है। अनन्त आनन्द का सागर भीतर मे लहरा रहा है, हम उसका एक कण भी उपलब्ध नही कर रहे है। पता ही नही चलता कि भीतर मे कोई आनन्द है। हमारे शरीर मे आनन्द का केन्द्र मौजूद है। आनन्द का केन्द्र है पर वह उद्घाटित नही हो रहा है। हमारी असीम शक्ति है पर इतना अवरोध हो रहा है कि वह शक्ति काम नही कर रही है। शरीर-प्रेक्षा के द्वारा ये तीन काम हो सकते है—चैतन्य-केन्द्र निर्मल हो सकते है, आनन्द केन्द्र जो सोया पडा है, मूर्च्छित है, वह जाग सकता है और शक्ति का संस्थान जो अवरुद्ध हो रहा है, विघ्न और बाधाओ से प्रताडित हो रहा है वह फिर सक्रिय हो सकता है और उसकी ज्योति प्रज्ज्वलित हो सकती है। हम शरीर को देखना सीखें। देखने और जानने पर ये सारी बातें घटित हो सकती हैं। क्रोध, अभिमान, वासना, स्वार्थ-चेतना, ईर्ष्या, भय, द्वेष, घृणा—ये सारी वृत्तिया तब जागती है जब

हमारा चित्त नाभि के आस-पास होता है। शरीर-शास्त्र की भाषा मे जब एड्रीनल ग्रंथि के आस-पास चेतना काम करती है तब ये वृत्तियां जागती हैं। जब तक एड्रीनल सक्रिय नही होती, तब तक ये वृत्तिया नही जाग सकती। मनुष्य का चित्त ज्यादा नाभि से नीचे ही काम करता है, ऊपर काम नही करता, ऊपर नहीं रहता। उसे पता ही नही कि नीचे रहने से क्या होता है? हम इस सचाई को जान लें कि चित्त को अधिक से अधिक हृदय से ऊपर, कठ से ऊपर, सिर तक रखना लाभदायक होता है। बार-बार वही रखें तो हमारी वृत्तिया समाप्त हो सकती हैं, स्वभाव बदल सकता है, व्यवहार बदल सकता है और चरित्र बदल सकता है। यह बहुत बडा रहस्य है व्यवहार और आचरण को बदलने का, स्वभाव और आदतो को बदलने का।

चित्त की यात्रा चैतन्य-केन्द्रों पर

चित्त का यह स्वभाव है कि वह सिर से लेकर पैर तक चक्कर लगाता है। कभी ऊपर, कभी नीचे, सदा यह चलता रहता है। कभी हमे अचानक हिंसा की स्मृति आ जाती है, कभी द्वेष की स्मृति आ जाती है, कभी घृणा का विचार जाग जाता है, कभी अच्छा विचार जाग जाता है, कभी ऐसी उत्कट भावना परमार्थ की जागती है कि सब कुछ त्यागने की भावना आ जाती है। ऐसा क्यों होता है? वृत्तिया क्यो बदलती हैं? कभी किसी स्मृति का दरवाजा खुलता है और कभी किसी स्मृति की खिडकी खुलती है। क्यो खुलती रहती है? कौन भीतर बैठा है जो इन्हे खोलता रहता है? और कोई नही, यह चित्त की यात्रा जब-जब होती है, चित्त जिस ग्रन्थि से, जिस केन्द्र से, जिस साइकिक सेन्टर का स्पर्श करता है, जिसके साथ लीन होता है, उस समय वही चेतना और वही स्मृति जाग जाती है और वही विचय हमारे सामने प्रस्फुटित हो जाता है। इस रहस्य को जान लेने के बाद साधक का रास्ता बहुत सीधा हो जाता है। जो साधक बदलना चाहता है, जो व्यवहार को, स्वभाव को और चरित्र को बदलना चाहता है उसके लिए बहुत आवश्यक है कि वह उन चैतन्य-केन्द्रों पर चित्त की यात्रा अधिक से अधिक करे जो चैतन्य-केन्द्र हमारे स्वभाव, आचरण का नियन्त्रण कर रहे हैं। विशुद्धि-केन्द्र, ज्योति-केन्द्र, दर्शन-केन्द्र, ज्ञान-केन्द्र, शाति केन्द्र—ये पाच केन्द्र हमारे व्यवहार को पवित्र बनाते है, आचरण को पवित्र बनाते है और असत् आचरण पर, असत् व्यवहार पर नियन्त्रण करते है। ये सारा शासन कर रहे है। किन्तु जब तक इनकी आराधना नही होती, जब तक इनकी साधना नही होती, हमारा ध्यान इन पर केन्द्रित नही होता, इन्हे हम सक्रिय नही बना लेते, तब तक ये हमारा पूरा सहयोग नही करते। साधना का बहुत बडा रहस्य है कि हम तैजस-केन्द्र, स्वास्थ्य-केन्द्र, शक्ति-केन्द्र का परिष्कार करें, आनन्द केन्द्र से ज्ञान-केन्द्र तक

के चैतन्य-केन्द्रो का सहयोग उपलब्ध करे। चित्त की यात्रा हमारी ऊपर की ओर हो, नीचे की ओर न हो। यह इतना बडा रहस्य है कि इसे जान लेने पर समूचा व्यक्तित्व बदल सकता है। इसे जाने बिना आदमी असली आदमी नही बनता, नकली रह जाता है।

प्रेक्षा है—प्राण का सतुलन

आदमी बीमार क्यो होता है ? एक डॉक्टर कहेगा कि जर्म्स के कारण बीमार होता है, रोग-निरोधक शक्ति कम हो जाती है इसलिए बीमार होता है। एक आयुर्वेद का चिकित्सक कहेगा कि वात, पित्त और कफ की गड़बडी से बीमार होता है। किन्तु अध्यात्म की साधना करने वाला व्यक्ति इन दोनो बातो को स्वीकार नही करेगा। उसका उत्तर होगा कि प्राण-शक्ति मे असतुलन होता है इसलिए मनुष्य बीमार होता है। यदि प्राण-शक्ति का सतुलन बना रहे तो आदमी बीमार नही हो सकता। असतुलन ही मनुष्य को बीमार बना रहा है। कही प्राण ज्यादा हो गया और कही कम हो गया। सतुलन बिगड गया। पूरे शरीर मे प्राणधारा का एक सतुलन होना चाहिए। शरीर मे विद्युत् का प्रवाह सतुलित रहना चाहिए। वह सतुलन बिगडा और आदमी बीमार बन गया। दर्द होता है, शरीर निकम्मा हो जाता है, काम करने की शक्ति किसी अवयव की कम हो जाती है। पीड़ा होती है, वेदना होती है। सारी इसलिए होती है कि प्राण का सतुलन बिगड जाता है। प्रेक्षा करने वाला पूरे शरीर को देखता है। सिर से पैर तक देखता है। देखने का मतलब है, जहा चित्त जाता है वहा प्राण जाता है। चित्त और प्राण दोनो साथ-साथ जाते हैं। चित्त जहा केन्द्रित हुआ, प्राण को उसके साथ जाना ही होगा। प्राण चित्त का अनुचारी है, अनुगामी है। पूरे शरीर मे चित्त की यात्रा होती है इसका अर्थ है कि पूरे शरीर मे प्राण की यात्रा होती है। जो सतुलन बिगडा हुआ होता है, वह सतुलन फिर ठीक हो जाता है। पूरा शरीर प्राण से भर जाता है। शरीर-प्रेक्षा का पहला उद्देश्य है—प्राण का सतुलन उसकी निष्पत्ति है प्राण का सतुलन। प्राण बिल्कुल सतुलित हो जाता है। शरीर-प्रेक्षा का दूसरा परिणाम है—चैतन्य-केन्द्र निर्मल हो जाते है।

पुराने जमाने मे रत्न-कवल होते थे। उनकी धुलाई पानी से नही, अग्नि से होती थी। आग मे डालो और रत्न-कम्बल निर्मल बन जाएगी। पानी मे डालो, कुछ भी परिवर्तन नही होगा। हमारे चैतन्य-केन्द्र रत्न-कम्बल है। इनकी धुलाई पानी से नही होती। इनका मैल पानी से साफ नही होता। इनकी सफाई होगी आग के द्वारा। जब हम शरीर-प्रेक्षा करते है, चैतन्य-केन्द्रो की प्रेक्षा करते हैं तब विद्युत् की धारा, प्राण की धारा इतनी तेज वहां जाती है, जमा हुआ मैल साफ हो जाता है और वह विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र बन जाता है। निर्मलता आ जाती है

और उस निर्मलता में से चैतन्य अभिव्यक्त हो सकता है, बाहर प्रकट हो सकता है। सामान्य नियम को लोग जानते हैं कि लालटेन का शीशा जब अन्धा हो जाता है, बाहर पूरा प्रकाश नही आता। बल्ब पर ढक्कन दे दिया जाए, बाहर प्रकाश नही आएगा। लाल रग या लाल प्लास्टिक का टुकडा लगाने पर लाल रग और पीला रग लगाने पर पीला रग आएगा। जैसा करोगे वैसा आएगा। हमारा चैतन्य-केन्द्र जब तक निर्मल नही होगा तब तक भीतर मे ज्ञान कितना ही भरा पडा है, वह बाहर नही फूटेगा, उसकी रश्मिया बाहर को प्रकाशित नही कर पाएगी। इसलिए चैतन्य-केन्द्रो को निर्मल बनाना जरूरी है। शरीर-प्रेक्षा के द्वारा ये चैतन्य-केन्द्र निर्मल हो जाते हैं। चैतन्य-केन्द्रो की प्रेक्षा से और अधिक प्राण-धारा वहां इकट्ठी होती है और वे निर्मल बन जाते है। प्रेक्षा का दूसरा परिणाम है—चैतन्य-केन्द्रो की निर्मलता।

शरीर-प्रेक्षा का तीसरा परिणाम होता है—आनन्द-केन्द्र का जागरण। हमारे चित्त मे ऐसे केन्द्र हैं कि जिनके जाग जाने पर व्यक्ति सदा सुख की स्थिति मे रहता है। विज्ञान की भाषा मे दो लघु-ग्रन्थिया हैं पिछले भाग मे, एक सुख की और एक दुख की। दोनो सटी हुई है। एक ग्रन्थि जागृत हो तो व्यक्ति बहुत सुख मे रहता है, दूसरी जागृत हो जाए तो आदमी दुखी बन जाता है। आनन्द का केन्द्र भी हमारे भीतर है। यदि विद्युत् का, प्राण-धारा का ठीक प्रवाह वहां पहुचे, पूरा ताप लगे और उसको जगा पाए तो फिर आनन्द ही आनन्द हो जाता है। समता, साम्य, अनुकूल और प्रतिकूल स्थिति मे एक समान भाव रहना यह असम्भव नही है, सम्भव है। हजारो-हजारो साधको ने इन स्थितियो को सम्भव बनाया। जीवन जीया। कठिनाई आने पर कोई परिवर्तन नही आया। यह तभी सम्भव है कि वह आनन्द का केन्द्र, समता का केन्द्र जागृत हो जाए। शरीर-प्रेक्षा के द्वारा वह केन्द्र जागृत होता है।

शरीर-प्रेक्षा के ये तीन महत्त्वपूर्ण परिणाम हैं—प्राण-प्रवाह का सन्तुलन, चैतन्य-केन्द्र की निर्मलता और आनन्द-केन्द्र का जागरण।

शरीर-प्रेक्षा आध्यात्मिक प्रक्रिया है। साथ ही साथ यह मानसिक और शारीरिक प्रक्रिया भी है। स्वास्थ्य के लिए भी बहुत बडी चिकित्सा है—प्राण-चिकित्सा। शरीर-प्रेक्षा करने वाला केवल आध्यात्मिक प्रयोग ही नही कर रहा है, साथ-साथ मे प्राण-चिकित्सा का प्रयोग भी कर रहा है। बीमारियो की चिकित्सा भी कर रहा है।

आज करो, आज लाभ

आत्मा को उपलब्ध करने की, चैतन्य-केन्द्रो को निर्मल बनाने की प्रेरणा न कब जागेगी, किन्तु जब यह पता चलता है कि शरीर को भी लाभ होता है,

आदमी मे तत्काल आकर्षण पैदा हो जाता है। मन को लाभ होता है तो वडा आकर्षण होता है। तत्काल लाभ की वार्त वहुत आकर्षित करती है। मै तो यह मानता हू कि धर्म परलोक की साधना का तत्त्व नही है। जिन लोगो ने धर्म को परलोक के साथ जोड दिया, उन्होने धर्म की असामयिक हत्या कर दी। बहुत वडी समस्या पैदा हो गई। परलोक का आकर्षण कव पैदा होगा? आदमी सोचता है कि धर्म से यदि परलोक ही सुधरेगा तो अभी क्यो करे? वूढे वनेगे तव करेंगे। मरे बिना तो परलोक मे जाएगे नही। वूढे होने के वाद मरेंगे, अत धर्म अन्तिम समय मे कर लेंगे, परलोक सुधर जाएगा। ऐसी वडी भ्रान्ति घर कर गई और आदमी धर्म से विमुख हो गया।

धर्म का तत्त्व है कि आज करो, आज लाभ होगा, जिस क्षण मे करो, उसी क्षण मे लाभ होगा। आचार्य भिक्षु का एक वचन साधना की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है—'वर्तमान में हुवे तिकोइज खरो।'

कितना वडा सूत्र दिया है। आगे वह क्या करेगा, पीछे क्या किया, हमे इससे कोई मतलव नही। वह वर्तमान मे क्या कर रहा है, वह देखो।

प्रश्न हुआ कि साधु है, आज हम साधु को वन्दना कर रहे है। हो सकता है कि कल वह भ्रष्ट हो जाए। एक कोई डाकू है, बुरा आदमी है, हम उसे बुरा मान रहे हैं, कल न जाने वह क्या हो जाए? आचार्य भिक्षु ने कहा—अतीत को छोडो, भविष्य को छोडो। क्या होगा, वह व्यक्ति अपना जाने। वर्तमान मे क्या कर रहा है, बस उसी पर सारा निर्णय होगा। आधार केवल वर्तमान बनता है। जिस साधना के द्वारा, जिस आराधना के द्वारा, जिस ध्यान के द्वारा वर्तमान का क्षण आनन्दमय, चेतनामय और शक्तिमय नही होता वह धर्म नही, धर्म के नाम पर कोई दूसरा ही तत्त्व है। सचमुच, धर्म के द्वारा हमारी वर्तमान की समस्या सुधरनी चाहिए, वर्तमान वदलना चाहिए। यह ध्यान की साधना, शरीर-प्रेक्षा की साधना वर्तमान की साधना है। हम देखते है, शरीर मे होने वाले परिवर्तनो का अनुभव करते है। यह जान लेते है कि वर्तमान मे कौन-सा पर्याय घटित हो रहा है। क्या परिवर्तन और परिणमन घटित हो रहा है। प्रेक्षा करते है और जानते हैं यथार्थ को कि क्या-क्या हो रहा है। जानने के साथ-साथ परिणमन और परिवर्तन भी होता है। लगता है कि भार मिट रहा है, शरीर हल्का हो रहा है। व्यक्ति ध्यान करने वैठता है तो शरीर भारी-भारी लगता है, उठता है तो हल्का हो जाता है। ध्यान करने वैठता है तो कभी-कभी लगता है कि मस्तिष्क वोझिल वना हुआ है। उठता है तो लगता है कि बिल्कुल हल्का, भार-शून्य, तनाव-मुक्त हो गया है। तात्कालिक परिणाम और तात्कालिक लाभ होता है।

शरीर-प्रेक्षा का मूल्य इसलिए है कि यह वर्तनान मे लाभ का अनुभव

कराता है। इससे हमारी चेतना का जागरण होता है, निर्मलता बढती है, आनन्द का स्रोत फूटता है और निर्भारता का, हल्केपन का अनुभव होता है। इसीलिए साधक को, जो आत्मा को उपलब्ध होना चाहता, उसे श्वास की साधना, श्वास के साथ-साथ प्राण की साधना और प्राण की साधना के साथ-साथ समूचे शरीर की साधना करनी नितान्त आवश्यक है।

८. चित्त-शुद्धि और कायोत्सर्ग

१. चित्तशुद्धि का सबसे बडा सूत्र—शरीर की स्थिरता।

२. चित्त की मलिनता का सबसे बडा सूत्र—चचलता।

३. चचलता, यह कर्म-शरीर का अमोघशस्त्र।
इसलिए कि—
- अज्ञान का पता न चले।
- दु.ख का पता न चले।
- शक्तिहीनता का पता न चले।

४. कायोत्सर्ग होते ही चेतना भीतर की ओर लौटने लगती है, प्रतिक्रमण शुरू हो जाता है।

५. श्वास-दर्शन—श्वास के कपनों का अनुभव।
शरीर-दर्शन—शरीर के कपनो का अनुभव।
वेदना-दर्शन—विपाक-विचय।
विचार-दर्शन
आभामडल-दर्शन
तैजस-शरीर-दर्शन
कर्म-शरीर-दर्शन—दु ख के उपादान का दर्शन—अपाय-विचय।
- यह शरीर दु ख की अभिव्यक्ति का केन्द्र है। दु ख का उपादान है कर्म-शरीर, उसे प्रकपित करना है, इसका सहयोग लेना है।

सात

शरीर की स्थिरता मूल है

एक साधक ने पूछा—मानसिक शान्ति का सबसे बडा उपाय क्या है ? मैंने कहा—चित्त-समाधि। फिर प्रश्न हुआ कि चित्त-समाधि का सबसे बडा उपाय क्या है ? उत्तर दिया—चित्त की शुद्धि। चित्त की निर्मलता होती है तो चित्त की समाधि होती है। समाधि होती है तो मन की शान्ति होती है। प्रश्न आगे बढा। चित्त की शुद्धि का सबसे बडा सूत्र क्या है ? उत्तर मिला—शरीर की स्थिरता। शरीर जितना स्थिर होता है, उतना ही चित्त को समाधान मिलता है, चित्त शुद्ध होता है, चित्त की मलिनता समाप्त होती है। चित्त की शुद्धि का सबसे बडा सूत्र है—शरीर की स्थिरता। चित्त की अशुद्धि का सबसे बडा कारण है—शरीर की चचलता। समझने मे कठिनाई होगी। पूछने वाले ने चित्त की बात पूछी और मैंने शरीर की बात कही। तर्कसगत नही लगता। चित्त का प्रश्न है तो उत्तर भी चित्त का होना चाहिए। प्रश्न है चित्त का और उत्तर दिया गया शरीर का। चित्त और शरीर का क्या सम्बन्ध ? कोई सम्बन्ध दिखाई नही देता। बडा अजीब-सा लगता है यह सम्बन्ध। साधना की सीमा मे आगे बढने पर हम स्वीकार करेंगे कि शरीर की स्थिरता हुए बिना चित्त की स्थिरता नही होती। शरीर की स्थिरता हुए बिना श्वास शान्त नही होता, मौन नही होता, मन शात नही होता, स्मृतियां शान्त नही होती, कल्पनाए समाप्त नही होती, विचार का चक्र रुकता नही। इसलिए सबसे पहले आवश्यक है—कायोत्सर्ग, कायगुप्ति, कायसवर। कायसवर होता है तो अनायास सारी बातें हो जाती हैं। काय का संयम होता है, साधना के लिए अगले चरण अपने आप आगे बढ जाते है। यदि काया का सयम नही होता, काया की चंचलता नही मिटती तो कुछ भी नही होता।

चंचलता का चौराहा

कर्म-शरीर ने अपने अस्तित्व की सुरक्षा की व्यवस्था कर रखी है। हर कोई

करता है अपने अस्तित्व की सुरक्षा। कोई भी पदार्थ या कोई भी तत्त्व दुनिया मे ऐसा नही जो अपने अस्तित्व की सुरक्षा न करे। सबसे पहला प्रश्न है, अस्तित्व की सुरक्षा। हमारा एक शरीर है, अतिसूक्ष्म-शरीर, कर्म-शरीर, जो हमारे समूचे तन्त्र को सचालित कर रहा है, जो आत्मा और पुद्गल के साथ सम्बन्ध बनाए रख रहा है। कर्म-शरीर को कब इष्ट होगा यह कि आत्मा मुक्त हो जाए और उसके चगुल से छूट जाए। कभी इष्ट नही है। एक बार जो जिसको अपने चगुल मे फसा लेता है, वह नही चाहता कि वह छूट जाए। वह उसको अपने अधीन ही रखना चाहता है। शरीर चेतन को अपनी अधीनता मे रखना चाहता है। जो तत्त्व कर्म की अधीनता मे आ जाए, पुद्गल की अधीनता मे आ जाए और वह सहसा उसे छोड दे, यह कभी कल्पना ही नही की जा सकती। अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए, चेतन को अपने शिकजे मे जकडे रखने के लिए एक व्यवस्था है उसकी। उस व्यवस्था का सबसे बडा सूत्र, सबसे बडा रहस्य है—चचलता। यह एक ऐसा जाल है, जिसमे सब कुछ छिप जाता है। पता ही नही चलता। इतनी चचलता, इतनी तरगें, इतनी ऊर्मिया आ जाती है कि कुछ पता ही नही चलता। चचलता नही होती तो आत्मा कभी अपने स्वरूप मे चला जाता। कोई सन्देह नही। किन्तु एक चचलता के कारण वह अपने स्वरूप से भाग रहा है। चचलता इसलिए कि अज्ञान बना रहे, जिससे चेतन को अपने अस्तित्व का पता न चले। यदि चचलता नही होती तो यह प्रश्न नही होता। एक आत्मवान् पुरुष के सामने यह प्रश्न नही होता कि आत्मा है या नही। एक चैतन्यवान् पुरुष के सामने यह प्रश्न ही नही होता कि आत्मा स्वतन्त्र है या नही। आत्मा के बारे मे सन्देह, स्वतन्त्र चैतन्य के बारे मे सन्देह, त्रैकालिक अस्तित्व के बारे मे सन्देह इसीलिए है कि चचलता विद्यमान है। चचलता है इसीलिए इतने विकल्प पैदा होते है, इतने तर्क पैदा होते है। उन विकल्पो के अधकार मे, उन तर्कों के आवरण मे, अस्तित्व का प्रश्न धुधला हो जाता है और व्यक्ति के मन मे सन्देह पैदा हो जाते है। यदि यह बुद्धि का व्यायाम नही होता, यदि यह तर्क नही होता और इन सबको सचालित करने वाली यह चचलता नही होती तो अस्तित्व के बारे मे कभी सन्देह पैदा नही होता। तर्क हमेशा सचाई को छिपा देता है। वह सत्य पर आवरण डाल देता है।

अधिकारी ने कर्मचारी से कहा—तुम कार्यालय के समय मे हजामत करते हो और घटा-भर लगा देते हो। अच्छा नही है, ऐसा नही होना चाहिए। केश कटाना हो तो दूसरे समय मे कटाओ। कार्यालय के समय मे ऐसा नही करना है।

कर्मचारी बोला—महाशय! क्या कार्यालय के समय केश बढते नही हैं? यदि बढते है तो फिर कटाने मे क्यो आपत्ति होनी चाहिए?

तर्क वास्तविकता पर पर्दा डाल देता है, सचाई को आवृत कर देता है।

है और चेतना का फिर अपने भीतर आ जाना प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण अपने आप शुरू हो जाता है।

चेतना के प्रतिक्रमण के लाभ

हम जब प्रतिक्रमण की स्थिति मे होते हैं, चेतना तब भीतर लौटती है और बाहर से चेतना का सम्पर्क टूटता है। चित्त जब भीतर ही देखने लगता है, अपनी सारी शक्ति का नियोजन भीतर होता है, उस समय सबसे पहले श्वास का दर्शन होता है। सहजभाव से श्वास-प्रेक्षा हो जाती है। जरूरत नही, सुझाव की। कुछ कहने की जरूरत नही। चेतना भीतर लौटी, पहला कार्य होगा—श्वास-दर्शन। अपने आप पता चलेगा कि इस शरीर के भीतर एक घटना घट रही है। पहली घटना—शरीर स्थिर, शान्त, किन्तु श्वास चल रहा है। बहुत मन्द-गति से चल रहा है। दीर्घ-श्वास अपने आप हो जाएगा। दीर्घ-श्वास, मन्द-श्वास, यह सहज नियम है शरीर का। जब शरीर की चंचलता होगी, श्वास छोटा होगा। शरीर की स्थिरता होगी, श्वास लम्बा हो जाएगा, दीर्घ हो जाएगा, मन्द हो जाएगा। श्वास की स्थिरता, शरीर की स्थिरता पर निर्भर है। शरीर जितना चचल होता है, श्वास की गति बढ़ती जाती है। सख्या बढ़ती जाती है, श्वास छोटा होता चला जाता है। एक मिनट मे १६ श्वास लेने वाला व्यक्ति जब शरीर की चचलता को बढाता है तो श्वास की सख्या भी २०, २५, ३० आगे से आगे बढती चली जाती है। ६०, ७० तक भी चली जाती है। शरीर शान्त हुआ, श्वास की सख्या कम होने लग जाएगी, लम्बाई बढ ज़ाएगी, श्वास अपने आप मन्द हो जाएगा। यह श्वास की मन्दता का नियम स्थिरता के साथ जुडा हुआ है।

अध्यात्म और व्यवहार के नियम

अध्यात्म की साधना करने वाले व्यक्ति को, समाधि और ध्यान की साधना करने वाले व्यक्ति को अध्यात्म के नियमो को जानना जरूरी है। जो अध्यात्म के नियमो को नही जानता वह अध्यात्म की साधना ही नही कर सकता। हर एक के अपने नियम होते हैं। व्यवहार के अपने नियम होते हैं, अध्यात्म के अपने नियम होते है। परिवार के अपने नियम होते हैं, समाज की व्यवस्था के अपने नियम होते हैं। जो जहां का नियम है, वहां का नियम जानना जरूरी होता है। जो वहा के नियमो को नही जानता, वह उस दिशा मे विकास नही कर सकता।

जो स्थल-यात्रा का नियम है, वह वायु-यात्रा का नही हो सकता। वायुयान मे बैठा आदमी कितनी ही दौड़ लगाए, जल्दी नही पहुचेगा। वायुयान पहुंचेगा तभी पहुच पाएगा, पहले नहीं पहुंच पाएगा। चंचलता का अपना नियम है और स्थिरता का अपना नियम है।

दमन नही दर्शन

साधना करने वाला व्यक्ति यदि शरीर की चचलता के नियमो से परिचित होता है, अध्यात्म की स्थिरता के नियमो से परिचित नही होता, शरीर की स्थिरता के नियमो से परिचित नही होता, इसलिए ध्यान करने बैठता है मन मे विकल्प उठता है, विचार उठता है और वह विचारो को दबाने का प्रयत्न करता है और विचार फुफकारने लग जाता है। दबाने का प्रयत्न करोगे विचार और उखडेगा और उभरेगा, विकल्प आने लगेंगे। विचार को जैसे-जैसे दबाया जाता है, विचार भी वैसे-वैसे प्रतिरोध करना शुरू कर देता है और सामने आकर डट जाता है।

दमन का नियम राज्य-व्यवस्था का नियम है। चचलता का नियम है। किन्तु स्थिरता का यह नियम नही हो सकता। दबाने की कोई जरूरत नही, विचार को रोकने के लिए प्रयत्न करने की कोई जरूरत नही। शरीर को अधिक से अधिक स्थिर करें, विचार अपने आप दीखने लग जाएगा। विचार-दर्शन होगा। विचार-दर्शन हुआ और विचार शान्त। दबाओगे, विचार उखड़ेगा, विचार और ज्यादा आएगा। पारदर्शन हुआ, विचार को देखा और विचार शान्त। हर कोई व्यक्ति प्रयोग कर सकता है। यह कोई मानने की वात नही है, अनुभव की वात है, जानने की वात है। जव कभी ज्यादा विचार आए, ज्यादा चचलता वढे, ज्यादा विकल्प सताए, आप शात वैठें, शान्त लेट जाए। विचारो को देखना शुरू कर दे। चित्त को बिल्कुल स्थिर, शान्त कर विचारो को देखने लग जाए। आपको आश्चर्य होगा कि विचार कहा चले गए? विचारो का ताता लगा था। एक के वाद एक जो विचार और कल्पनाए आ रही थी वे तिरोहित हो गयी। स्वय ढूढना पडेगा आपको कि विचार कहा चले गए? पता ही नही चलेगा।

कायोत्सर्ग : अध्यात्म का पहला नियम

अध्यात्म की साधना करने वाले व्यक्ति को अध्यात्म के नियमो से परिचित होना जरूरी है। सवसे पहला और सवसे वडा नियम है—शरीर की स्थिरता, कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग होता है, श्वास-दर्शन होता है। कायोत्सर्ग होता है, शरीर-प्रेक्षा अपने आप हो जाती है। शरीर मे होने वाले कम्पन अपने आप प्रकट होने लगते हैं। सारे संवेदन जागने लगते हैं। कायोत्सर्ग होता है, विचार-दर्शन होता है, विचार अपने आप दीखने लग जाते हैं। विचार की तरग उठ रही है। देखा और शान्त। दूध उफन रहा है और कुछ करने की जरूरत नही, थोड़ा-सा पानी का छीटा मिला और दूध शान्त। विचार का उफान है, उसके लिए और कुछ करने की जरूरत नही, केवल चित्त वहा गया, चेतना

गयी, चेतना ने देखा और ऐसा छोटा लगा कि विचार तत्काल शान्त। वेदना का दर्शन होता है। शरीर मे जो भी पीड़ा होती है, कष्ट होता है, चंचलता मे पता नही चलता। जब स्थिरता होती है तो तत्काल पता चलता है कि कहा वेदना हो रही है? कहां पीडा हो रही है? वेदना का पता चलता है, कुछ वेदनाए प्रकट होती हैं, कुछ वेदनाएं अज्ञात रूप में पलती हैं। बहुत लोगो को बीमारी का पता नही चलता। जब बीमारी पल जाती है और जब भयकर रूप लेती है तब पता चलता है कि कोई बीमारी है। बीमारी का पहले पता चल जाए तो शायद इलाज भी हो जाए। अन्तर्-व्रण, बाहर का नही, भीतर का व्रण होता है। पहले पता नही चलता। वर्षों तक बीमारी पलती चली जाती है और जब अगले स्टेज मे चली जाती है तब पता चलता है। तब वह बीमारी असाध्य जैसी बन जाती है। न जाने हमारी कितनी बीमारियां, कितनी वेदनाएं और कितनी पीडाए ऐसी हैं जिनका पहले कोई पता नही चलता। चंचलता मे कोई पता नही चलता। शरीर की स्थिरता जब सधती है, शरीर के हर अवयव की स्थिरता सधती है, प्रत्येक कोशिका की स्थिरता का अभ्यास होता है तो फिर किस कोशिका मे कहां क्या हो रहा है, घटना का पता लगने लग जाता है। नाड़ी-संस्थान मे, ग्रन्थि-सस्थान मे जो कुछ हो रहा है, विद्युत्-प्रवाह की जो गति हो रही है, हमारे शरीर के रसायन किस प्रकार अपने विविध परिणमन कर रहे हैं और किस प्रकार के रसायन बन रहे हैं उन सब घटनाओं का कायोत्सर्ग मे पता लगने लग जाता है। कायोत्सर्ग जैसे-जैसे विकसित होता है, जैसे-जैसे शरीर की स्थिरता सधती है वैसे-वैसे जागरूकता बढ़ती जाती है, चेतना निर्मल होती जाती है और इस स्थूल शरीर की सीमा का अतिक्रमण कर सूक्ष्म शरीर की घटनाओ का भी पता लगने लग जाता है।

आभामण्डल : एक विज्ञान

आभामडल का दर्शन होता है। हर प्राणी के आस-पास एक आभामंडल होता है, एक रश्मियों का घेरा होता है कवच जैसा। पूरे शरीर के बाहर फैला हुआ। किसी का तीन फुट का, किसी का पांच फुट का और किसी का सात फुट का। हर व्यक्ति का एक घेरा होता है। किसी का बहुत सुन्दर होता है, किसी का बहुत भद्दा होता है। किसी का बड़ा आकर्षक होता है, किसी का ग्लानि पैदा करने वाला होता है। किसी का आभामंडल पास मे आने वाले व्यक्ति को शान्ति देता है और किसी का आभामंडल पास मे आने वाले व्यक्ति को चिन्ता, दुर्मनस्कता से भर देता है। हर व्यक्ति के पास आभामडल होता है। आभामडल लक्षण है हमारी जीवट का। आभामंडल लक्षण है हमारी भावधारा का। अभामडल लक्षण है हमारी चैतन्य प्रक्रियाओ का। आभामंडल का दर्शन हर किसी को नहीं होता।

शरीर की स्थिरता की साधना करने वाले व्यक्ति को होने लगता है। परा-मनोविज्ञान की खोज करने वाले वैज्ञानिको ने आज ऐसे कैमरे बना लिये है जिनके द्वारा आभामडल के फोटो लिये जा सकते है। अमेरिका मे कई सस्थान है, रूस मे कई सस्थान है जिन्होने आभामडल के फोटो लिये है, प्रकाशित किए है। आभा-मडल तैजस-शरीर का विकिरण है, सूक्ष्म-शरीर का विकिरण है। दुनिया का हर पदार्थ चेतन और अचेतन अपने आकार मे रश्मियो का विकिरण करता है। कोई भी पदार्थ, कोई भी अस्तित्व दुनिया का ऐसा नही है जिससे रश्मियो का विकिरण न होता हो। प्रत्येक पदार्थ से अपने आकार की रश्मियो का विकिरण होता है। इसीलिए वस्तु या व्यक्ति के चले जाने के दो घटा बाद भी उसका फोटो लिया जा सकता है। व्यक्ति चले गए, उनके आभामडल से विकिरण होने वाले, फैलने वाले परमाणु उसी आकार मे विद्यमान हैं। यदि उतना सेन्सिटिव, संवेदनशील कैमरा हो तो दो घटा बाद भी उन सबका फोटो लिया जा सकता है।

क्या आभामडल को देखा जा सकता है ?

हमारे शरीर से भी विकिरण होते हैं और फैलते हैं, दूसरो को प्रभावित करते हैं। कायोत्सर्ग की प्रगाढ अवस्था मे आभामडल का दर्शन होने लगता है। प्रश्न होता है क्या आभामडल देखा जा सकता है ? बहुत अच्छी तरह से देखा जा सकता है।' ध्यान की स्थिति मे दिखाई देता है। अचानक कभी-कभी ऐसा होता है कि ध्यान करते-करते शरीर तो नही किन्तु पूरे शरीर के आकार का एक विद्युत् का मडल सामने दीखने लगता है। ऐसा लगता है कि जैसे सामने कोई प्रतिमा आकर बैठ गयी है। तदाकार—उसी आकार की, अपने शरीर के आकार की। कभी-कभी गहरे अधेरे मे हाथ को देखें। हाथ दिखाई नही देगा किन्तु हाथ के आकार की एक आभा दीखने लग जाएगी। पूरा का पूरा विद्युत्मय हाथ दीखने लग जाएगा। अधकार सघन चाहिए।

अपूर्वकरण की प्राप्ति

जब कायोत्सर्ग सघन होता है, कायगुप्ति सघन बन जाती है। काया का संयम गहरा होता है। सर्वथा काया का सवर हो जाता है। बाहर से परमाणुओ को लेना बन्द कर देती है यह काया। परमाणुओ का भीतर आना बन्द हो जाता है। बाहर का सपर्क टूट जाता है। उस स्थिति मे अतिसूक्ष्म-शरीर (कर्म-शरीर) के स्पदन दीखने लग जाते है। स्थूल-शरीर को पार करने के पश्चात् तैजस-शरीर के स्पदन जागते है। उस सूक्ष्म-शरीर को पार करने के पश्चात् अतिसूक्ष्म शरीर के स्पदन जागते हैं। कर्म-शरीर के स्पंदनो को हम पकडना शुरू कर देते हैं। उसका साक्षात्कार होते ही हमारी सारी दृष्टि बदल जाती है। सम्यक्-दर्शन

जागता है, अपूर्वकरण होता है। जैसा सम्यक-दर्शन पहले नही जागा, वैसा सम्यक्-दर्शन जागता है।

स्थूल-शरीर नही, सूक्ष्म-शरीर है उत्तरदायी

हम मानते थे कि सारा दु:ख इस शरीर से होता है। इस शरीर मे दु ख के सारे केन्द्र है। इस शरीर मे वेदनाओ के सारे केन्द्र हैं। शरीर मे वासनाओ के सारे केन्द्र हैं। इस शरीर मे क्रोध, कपट, लोभ, घृणा आदि बुराइयो के केन्द्र है। सारा मस्तिष्क इन केन्द्रो से भरा है। सारा ग्रन्थि-तन्त्र इन दायित्वों को निभा रहा है। ये विद्युत् के प्रवाह, ये नाना प्रकार के रसायन, शरीर मे पैदा होने वाले केमिकल—इन सारे दायित्वो को निभा रहे हैं। हमारी पूरी की पूरी कल्पना जुडी हुई थी स्थूल शरीर के साथ। सारा भार आरोपित कर रहे थे इस स्थूल-शरीर पर। अविवेक का, मूर्खता का, दु:ख का, सारा का सारा नाता इस शरीर के साथ जोड़ रहे थे, किन्तु जैसे ही कर्म-शरीर के स्पन्दनो का पता चला, वे पकड मे आए, हमारी भ्रान्ति टूट गयी। हमे पता चला वास्तविकता का कि यह स्थूल-शरीर तो वेचारा कुछ भी नही है। यह तो केवल अभिव्यक्ति का माध्यम है। जो भी घटना भीतर घटती है यह उसे प्रकट कर देता है। सारा का सारा सचालन-सूत्र भीतर बैठे सेनापति कर्म-शरीर के हाथ मे है। वेचारा यह स्थूल-शरीर सैनिक है, लड़ रहा है। सैनिक का काम है—मोर्चे पर जाना। उसका काम है—मरना, मारना। पर सूत्र-संचालन कर्म-शरीर करता है। हमे पता चलेगा कि इस स्थूल-शरीर मे जितने केन्द्र है, जितने बिन्दु हैं वे सारे के सारे सम्वादि हैं। सूक्ष्म-शरीर मे, अतिसूक्ष्म-शरीर मे जितनी क्रियाए चल रही हैं, जितनी क्षमता, अक्षमता चल रही है, उतने ही केन्द्र इस शरीर मे वन जाते है। वहा से स्रोत चलता है और यहा आकर प्रकट हो जाता है। सचालन का काम कर्म-शरीर का और अभिव्यक्ति देने का काम स्थूल-शरीर का।

कायोत्सर्ग की फलश्रुति

कायोत्सर्ग से इस स्थूल-शरीर के प्रति हमारी पकड़ कम हो जाती है और हम दु:ख के उपादान तक पहुच जाते है। यह शरीर है—दु ख को प्रकट करने का हेतु, किन्तु प्रकट करने का उपादान नही है। उपादान, मूल कारण है—कर्म-शरीर। हमारी अपाय-विचय की खोज पूरी होती है। हमे दु ख के उपादान का दर्शन होता है। जव दु ख के उपादान का दर्शन होता है तव सारा व्यक्तित्व भिन्न प्रकार का होता है। फिर, जिसे सहयोगी मानता रहा, उसे असहयोगी मानने लग जाता है। असहयोगी मान रहा था, उसे सहयोगी मानने लग जाता है। एक सत्य होता है चेतना मे कि कर्म-शरीर को क्षीण करना है, इस स्थूल-शरीर का

सहयोग लेना है। साधक भी जब तक इस सचाई तक नही पहुंचता तब फिर इस शरीर का असहयोग करना शुरू करता है। वह मानने लगता है कि सारे दु.खो का मूल है यह शरीर। इस शरीर का असहयोग किया जाए। इस शरीर को सताया जाए। सताने की धारणा बनती है। परन्तु अध्यात्म की गहराई मे जाने वाले किसी भी व्यक्ति ने यह नही कहा कि इस शरीर को सताना है। न जाने क्यो हमारी धारणा बन गई।

काय-क्लेश क्या है ?

,जैन साधना-पद्धति मे एक शब्द आता है—काय-क्लेश। मध्यकाल मे उसकी व्याख्याए भी विचित्र बन गई। काय-क्लेश यानी शरीर को सताओ, शरीर को कष्ट दो। शब्द का अनर्थ हुआ। शब्द का सही अर्थ नही हुआ। शब्द तक नही पहुच पाए। काय-क्लेश का अर्थ शरीर को सताना नही है। यह अर्थ कैसे होगा ? हम आनन्द के लिए, मोक्ष के लिए साधना करते हैं। हम मानते हैं कि मोक्ष का स्वरूप है अनन्त-चेतना, अनन्त-आनन्द और अनन्त-शक्ति। आनन्द की साधना के लिए जाते है और सबसे पहले शुरू करते हैं शरीर को सताना। साधना करनी है आनन्द की। जाना है आनन्द की दिशा मे और सताने के साथ यात्रा शुरू करनी है। दु ख के साथ यात्रा शुरू करनी है तो हम लक्ष्य की तरफ नही जा सकेंगे। हमारी गति लक्ष्य की दिशा मे नही होगी। कही भटक जाएगा आदमी। काया को सताना—यह अर्थ नही है काय-क्लेश का, इसका अर्थ है—शरीर की स्थिरता, शरीर को साधना।

कार्य किसी का · श्रेय किसी को

हमारा विरोध है उस कर्म-शरीर से जो हमे सता रहा है। उसके साथ हम लड नही सकते। तब फिर बेचारे स्थूल-शरीर को सताना शुरू कर देते है। बात कुछ समझ मे नही आती। इस शरीर का तो हमे सहयोग प्राप्त करना है। जब इसका सहयोग न मिले तो जैसे-तैसे इसे समझाकर सहयोग लेना है। कभी-कभी सहयोग न मिलने पर सहयोग लेने का कोई रास्ता निकालना पडता है।

पिता बूढा हो गया। पिता ने मूर्खता यह की कि सारी सम्पत्ति बेटो को सौप दी, हाथ मे कुछ भी नही रखा। यद्यपि उदारता की बात है कि पिता अपने बेटो को सब कुछ सौप दे, किन्तु दुनिया का नियम भी जानना चाहिए। सब जगह धर्म का नियम नही चलता। सब जगह अध्यात्म का नियम नही चलता। व्यवहार के अपने नियम होते है। व्यवहार का यह नियम होता है कि जब तक कुछ पास मे होता है तब तक मक्खिया भनभनाती है और पास मे कुछ नही होता तब फिर मक्खिया भी दूर चली जाती है। लडको ने सेवा बन्द कर दी। सोचा, पिता के

पास कुछ है नही, कोई आकर्षण शेष नही । सेवा का कोई प्रयोजन शेष नही रहा। सेवा वन्द हो गई । वडा दु.खी हो गया वूढा ।

एक स्वर्णकार था मित्र । वह आया । उसने पूछा—क्या स्थिति है ?

वूढ़े ने कहा—स्थिति विकट है। कोई भी पूछता नही है। उसने कहा—चिन्ता मत करो। उपाय करूगा। दो-चार दिन के वाद वह आया। एक पेटी लाया । सिरहाने रख दी । जव स्वर्णकार वूढे पिता के पास आया तव छोटा लडका भी वहा आ पहुचा। पेटी को देखकर वह वोला—'यह क्या है ?'

'यह रत्नो की पेटी है ।'

'रत्नो की पेटी कहा थी इतने दिन ।'

स्वर्णकार ने कहा—'मेरे पास रखी हुई थी । मैंने सोचा—सेठजी वूढे हो गए चल-फिर नही सकते । मेरे पास पडी रह जाएगी । आज लाकर यह सौंप दी है।'

लडको ने कहा—'हमे सौंप दीजिए । ये क्या करेंगे ?'

स्वर्णकार वोला—'नही, यह तुम्हे नही मिलेगी। सेठजी के पास रहेगी, मेरे मित्र के पास रहेगी, इनके सिरहाने ही रहेगी ।'

वह लड़का दौडा-दौडा भाइयो के पास गया। रत्नो की वात सुनाई। सबके मुह मे पानी भर आया । वूढे की सेवा प्रारम्भ हो गई ।

जब हमें यह पता चल जाए कि रत्न है तो सहयोग मिलना शुरू हो जाएगा। हम इसीलिए सहयोग नही कर रहे है कि हमे पता है कि पास मे कुछ भी नहीं है ।

इस शरीर का सहयोग लेना है स्थिरता में। शरीर का काम हे चचलता। साधना नही करने वाला व्यक्ति स्थिरता उत्पन्न नही करता ।

रोग अनेक : दवा एक

आज के डॉक्टर कायोत्सर्ग वहुत अच्छा करवाते हैं। जव किसी की हड्डी टूट जाती है, पैर के पक्का प्लास्टर करते है। पैर का इतना अच्छा कायोत्सर्ग होता है कि सामान्य आदमी कर ही नही सकता । दो-तीन महीने तक पूरा कायोत्सर्ग हो जाता है। हाथ का कायोत्सर्ग, पैर का कायोत्सर्ग और कभी-कभी पूरे शरीर का कायोत्सर्ग करा देते है। डॉक्टर इस वात को जानता है कि कायोत्सर्ग नही होगा तो हड्डी भी नही जुडेगी। शरीर की स्वस्थता के लिए भी कायोत्सर्ग जरूरी है। किसी भी मानसिक चिकित्सक के पास आप जाए। सवसे पहले व्यवस्था होगी कि लेट जाएं। शरीर को रिलेक्स करें। पूरा रिलेक्सेशन। शिथिलीकरण। फिर आपको निर्देश मिलेगा कि मन को देखें, विचारो को देखे और जो भी विचार आए कहते चले जाए, छिपाए नही। जो कुछ आए, एक भोले वच्चे की भाति सव कुछ प्रकट करते चले जाएं। मानसिक चिकित्सक भी कायोत्सर्ग करवाता है।

कायोत्सर्ग का अनुदान

कोई समस्या सामने आती है। आप सोचते है कि समस्या का समाधान कैसे मिले ? एकान्त मे जाकर बैठते है, शान्त होकर बैठते है, समस्या का समाधान मिल जाता है। जीवन की यात्रा चलाने वाला, व्यवहार की भूमिका पर जीने वाला हर व्यक्ति समय-समय पर कायोत्सर्ग करता है। अध्यात्म की यात्रा करने वाले व्यक्ति के लिए तो इसके सिवाय और कोई विकल्प ही नही है। जो कायोत्सर्ग की सम्यक् आराधना नही करता, कायोत्सर्ग को ठीक नही साधता वह अध्यात्म के क्षेत्र मे कोई प्रगति नही कर सकता। चित्त की शुद्धि के लिए जरूरी है—कायोत्सर्ग। मन की शान्ति तब होगी जब चित्त की समाधि होगी। समाधि तब होगी जब चित्त की शुद्धि होगी और चित्त की शुद्धि तब होगी जब कायोत्सर्ग होगा, शरीर की स्थिरता होगी। हमारा यह शरीर जिस दिन हिमालय की भाति निष्प्रकम्प, अडोल और अचचल बन जाएगा तो फिर साधना के लिए और कुछ जानने की, और कुछ समझने की, और कुछ करने की जरूरत नही होगी। साधना की सारी घटनाए अपने आप घटित होने लग जाएगी और साधना स्वय साकार होकर हमारे सामने मूर्तिमान बन जाएगी।

८. चित्त-शुद्धि और अनुप्रेक्षा

१. ध्यान और स्वाध्याय।

२. समस्या के एक पहलू पर केन्द्रित होना, समस्या के अनेक पहलुओं पर चिंतन करना।

३ ध्यान के समय समस्याएं पैदा होती हैं :

- कुंडलिनी—तैजस-शक्ति जागृत होती है तब काम सक्रिय होता है।
- ध्यान द्वारा ताप, शोष और भेद।
  शरीर का (योग का) और कर्म-शरीर का तब उभार होता है।
- ऊर्जा की ऊर्ध्वयात्रा तब भयंकर गर्मी। अन्य कठिनाइयां भी होती हैं।
  —इन सबका समाधान स्वाध्याय द्वारा।

४. सहिष्णुता के पांच आलंबन।

५. अहंकार से बचने की चार अनुप्रेक्षाएं—

- अनित्य अनुप्रेक्षा
- अशरण अनुप्रेक्षा
- एकत्व अनुप्रेक्षा
- संसार अनुप्रेक्षा

आठ

ध्यान और स्वाध्याय

साधना के दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व है—ध्यान और स्वाध्याय। समाधि के लिए ध्यान बहुत आवश्यक है और ध्यान के लिए स्वाध्याय अत्यन्त अपेक्षित है। निर्विचार अवस्था मे जाने पर स्वाध्याय नही होता। निर्विचार अवस्था की उपलब्धि के लिए ध्यान बहुत आवश्यक होता है। विचार को सर्वथा छोडा नही जा सकता। निर्विचारता की एक सीमा है। वह एक सीमा मे ही सभव है। अमुक देश और काल मे मनुष्य निर्विचार रह सकता है किन्तु जीवन भर वह निर्विचार नही रह सकता। जीवन-यात्रा मे विचार आवश्यक होता है। बडी बात है, विचार को ध्यान मे बदल दें। विचार को ही ध्यान बना दें।

विचय-ध्यान विचार का ही ध्यान है। वह निर्विचार का ध्यान नही है।

स्वाध्याय क्या और क्यो ?

स्वाध्याय नही करने वाला साधक ध्यान की मर्यादा को नही जान सकता। उसके लिए ध्यान मे जाना भी सहज-सरल नही होता। स्वाध्याय एक सोपान है। इस पर आरोहण करने वाला ध्यान के सोपान पर भी आरोहण कर सकता है। जो स्वाध्याय के सोपान पर आरोहण नही करता वह ध्यान के सोपान पर भी आरोहण नही कर सकता। दोनो साथ-साथ चलते हैं। ध्यान के पश्चात् स्वाध्याय और स्वाध्याय के पश्चात् ध्यान। दोनो का योग आवश्यक होता है। ये दोनो एक ही चित्त की दो अवस्थाए है। जब तक पानी तरल है तब तक पानी है और जब वह जम जाता है तब बर्फ बन जाता है, पानी नही रहता। मूलत दोनो मे कोई अन्तर नही है। एक ही जल की दो अवस्थाए हैं। इसी प्रकार एक ही चित्त की दो अवस्थाए हैं—ध्यान और स्वाध्याय। एक तरल अवस्था है और एक जमी हुई अवस्था है। जब जमने का बिन्दु आता है तब तरल पानी जम जाता है। जब तक जमने का बिन्दु नही आता तब तक वह तरल बना रहता है। बर्फ का भी अपना

मूल्य है और तरल पानी का भी अपना मूल्य है। तरल रहने से उसका मूल्य समाप्त नही हो जाता, कम नही हो जाता। उसकी अपनी विशेषताएं कही नहीं जाती।

स्वाध्याय हमारे चित्त की तरल अवस्था है। एक विन्दु पर हम चित्त को केन्द्रित करते है, चित्त वहां जम जाता है, स्थिर हो जाता है। वह तरल चित्त ध्यान वन जाता है। जव चित्त उस विन्दु पर जमता नही, स्थिर नही होता, आस-पास घूमता है तव वह स्वाध्याय वन जाता है। समस्या को सुलझाने के लिए स्वाध्याय भी वहुत जरूरी है और ध्यान भी वहुत जरूरी है। एक समस्या पर ध्यान केन्द्रित करना विचय-ध्यान की प्रक्रिया है। समस्या के जो पर्याय अज्ञात हैं, जिनकी हमे कोई जानकारी नही है, अज्ञात को ज्ञात करना है, अनुपलव्ध को उपलव्ध करना है, सत्य का अनुसधान करना है तो उस विन्दु पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। जव चेतना की धारा एक दिशागामी, एक लक्ष्यगामी और एक विचारगामी होती है, तव ऐसा क्षण आता है कि समाधान मिल जाता है। समस्या सुलझ जाती है। अज्ञात ज्ञात हो जाता है।

स्वाध्याय : पथ-दर्शन

जव तक ध्यान की स्थिति नही वनती तव तक स्वाध्याय के द्वारा भी समस्या को सुलझाया जा सकता है, चिन्तन और विचारो के द्वारा भी समस्या को सुलझाया जा सकता है। वहुत वार ऐसा होता है कि ध्यान-काल मे भी समस्याए पैदा होती है और ध्यान-साधक के सामने अनेक समस्याए उपस्थित हो जाती हैं। यदि स्वाध्याय का आलवन न हो तो व्यक्ति उलझ जाता है। यदि गुरु का मार्ग-दर्शन न हो तो वह भटक जाता है। यदि ये दोनो वातें नही होती हैं तो ध्यान का मार्ग वहुत कटीला है। ध्यान-साधक यह मानकर चलता है कि ध्यान का मार्ग फूलो की सैर का मार्ग है। किन्तु उचित मार्ग-दर्शन के विना उसके पैर कांटो से विंध जाते हैं। फूल हाथ नही लगते, काटे पहले ही चुभ जाते है।

ध्यान-साधक के लिए पथ-दर्शन अपेक्षित होता है। स्वाध्याय पथ-दर्शन करने मे क्षम है। वह स्वय पथ-दर्शक है। अध्ययन करना, जिज्ञासा करना, पुनरावर्तन करना, अनुप्रेक्षा करना, धर्म-कथा करना—ये सव स्वाध्याय के अग हैं। मत्र का जप करना भी स्वाध्याय है और अनुचिंतन करना भी स्वाध्याय है।

ध्यान में उभरती समस्याए · निराकरण का उपाय

कुछेक व्यक्ति कहते है—ध्यान करने वाले को ग्रथ नही पढने चाहिए, मत्र का जप नही करना चाहिए। सकल्प-शक्ति और प्राण-शक्ति का प्रयोग नही करना ए, चिंतन-मनन नही करना चाहिए। ध्यान-साधक जितना निर्विकल्प और

निर्विचार रहे यह अच्छा है। इसका कोई विरोध नही कर सकता। किन्तु निर्विचारता की उपलब्धि प्रारभ मे ही नही हो जाती। यह सहज मार्ग नही है। वहुत कटीला पथ है। ध्यान साधक ध्यान प्रारंभ करता है। ध्यान के द्वारा तैजस-शक्ति जागती है, हठयोग की भाषा मे कुडलिनी का जागरण होता है, ऊर्जा की ऊर्ध्वयात्रा होती है तव वासना का प्रवल उभार आता है, विकल्पो का ज्वार आता है और तव साधक सोचता है, चला था ध्यान करने, मन को स्थिर करने, आत्मा को उपलव्ध करने, किन्तु जितनी वासना पहले नही थी उतनी आज उभर रही है। काम जितना पहले नही सताता था, उतना आज सता रहा है। चले थे कुछ और करने, हुआ कुछ और ही।

ऐसा होता है। इसका कारण है। हमारे शरीर की सरचना मे शक्ति-केन्द्र और काम-केन्द्र दोनो सटे हुए है। दोनो मे कोई अन्तर नही है। जव ध्यान के द्वारा ऊर्जा जागती है तव साथ-साथ मे काम-केन्द्र भी सक्रिय हो जाता है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नही मिलेगा जिसने शक्ति को जगाने का प्रयत्न किया हो और उसका काम-केन्द्र सक्रिय न हुआ हो। शक्ति-केन्द्र की सक्रियता के साथ-साथ काम-केन्द्र भी सक्रिय होगा। वह जव सक्रिय होगा तो काम-वासना का तूफान आएगा। विना गुरु के पथ-दर्शन के इस तूफान को शान्त नही किया जा सकता। स्वाध्याय के बिना यह शान्त नही हो सकता। जो व्यक्ति स्वाध्याय करता है, अध्यात्म के रहस्यो को जानता है, वह जान लेता है कि किस यात्रा-पथ पर क्या स्थिति बनेगी। यात्रा-पथ मे कितने मोड हैं, कहा कितना रुकना है, कैसे चलना है, यह सव उसे ज्ञात हो जाता है। चले और पहुच गए, ऐसा नही होता। पथ की सारी जानकारी गुरु से प्राप्त की जा सकती है। गुरु का पथ-दर्शन भी स्वाध्याय है। पढना-सुनना भी स्वाध्याय है, समाधान पाना या अनुचिन्तन करना भी स्वाध्याय है। गुरु सुलभ हो तो गुरु का पथ-दर्शन लें और यदि वे सुलभ न हो तो पुस्तको के द्वारा भी मार्ग-दर्शन उपलव्ध हो सकता है।

ताप, शोप और भेद

ध्यान करते समय तीन वाते होती है—ताप, शोप और भेद। जैसे सोने को निर्मल वनाने के लिए उसे तपाया जाता है, उसका शोषण किया जाता है, शोधन किया जाता है और विदारण किया जाता है, वैसे ही ध्यान साधक को इन तीनो अवस्थाओ से गुजरना होता है। ध्यान करने वाले व्यक्ति मे ताप वढता है, उसका शरीर तप जाता है। ध्यान करते समय कभी-कभी इतनी गर्मी वढ जाती है कि सिर फटने लगता है, सारे शरीर से ऊष्मा की ऊर्मिया निकलती रहती है। शरीर जल उठता है। ध्यान करने वाले के शरीर का शोप होता है। उसका शरीर थक जाता है। चर्वी घट जाती है। चर्वी को घटाने का सुन्दर उपाय है—ध्यान। चर्वी

का शोषण होता है। ध्यान करने वाले व्यक्ति के शरीर का विदारण होता है, जमी हुई ग्रन्थियो का भेद होता है, ग्रन्थियां खुल जाती हैं। जिस प्रकार स्थूल-शरीर मे ये तीनो अवस्थाए घटित होती हैं वैसे ही कर्म-शरीर मे भी ये तीनो अवस्थाए घटित होती है। कर्म शरीर का ताप होता है। कर्म-शरीर का शोष होता है। कर्म-शरीर का भेदन होता है।

पशु अपने स्थान पर इतना भयकर नही होता। उसको छेडने से उसका भयकर रूप प्रत्यक्ष हो जाता है। सिंह अपनी गुफा मे इतना भयकर नही होता जितना वह छेडने से होता है। कर्म-शरीर की भी यही वात है। वह भीतर पडा है और अपने ढंग से कार्य कर रहा है। न उसमे कोई उफान आता है और न कोई तूफान आता है। वह भयकर रूप धारण नही करता। किन्तु जव ध्यान के द्वारा उसके साथ छेड़छाड होती है तव वह रौद्र रूप धारण कर लेता है। उसमे भयकर तूफान आता है, ववडर उठते हैं। यदि उस समय गुरु का पथ-दर्शन नही मिलता, स्वाध्याय का सम्वल नही मिलता तो व्यक्ति निराश हो जाता है, टूट जाता है। वह उन स्थितियो को सभाल नही पाता। ध्यान करने वाले व्यक्ति मे जव ऊर्जा जागती है तव क्रोध भी वढ जाता है। शक्ति का कार्य है उत्तेजना पैदा करना। आग से पकाया भी जा सकता है और जलाया भी जा सकता है। अग्नि जलाती है। उसमे यह विवेक नही होता कि किसको जलाना है और किसको नही जलाना है। जो भी सामने आता है उसे वह जलाकर राख कर देती है। जब वह चूल्हे मे सीमित होती है तो पका सकती है। जब वह सीमा का अतिक्रमण कर फैलती है तव सव कुछ भस्मसात् कर देती है। हमारे भीतर की ऊर्जा भयकर आग है। शरीर मे तैजस की इतनी वडी और भयकर आग है कि अन्यत्र वह दुर्लभ है। जिस साधक को तेजोलब्धि प्राप्त हो जाती है, उसमे इतनी क्षमता विकसित हो जाती है कि वह एक क्षण मे हजारो मील के भूभाग को भस्म कर सकता है। एक अणु-विस्फोट से अधिक विनाश करने मे वह सक्षम हो जाता है। जव यह शक्ति जागती है और यदि उसे सही रास्ता मिल जाए, एक चूल्हा मिल जाए, नियामक तत्त्व मिल जाए तो वह हमारी अन्यान्य शक्तियो के सवर्धन मे हेतुभूत हो सकती है। यदि ऐसा नही होता तो वह उसी व्यक्ति को जलाने लग जाती है। जव तैजस-शक्ति का जागरण होता है तव भयकर ताप पैदा होता है। यदि साधक उस ताप को सहने मे सक्षम नही होता तो वह पागल हो जाता है। यह शक्ति वहुत खतरनाक होती है। इससे क्रोध वढ जाता है। शाप देने की शक्ति हाथ मे आ जाती है। ध्यान करने वाले कुछ तपस्वी ऐसे होते हैं, जिनकी शक्ति जाग जाती है, क्रोध वढ जाता है, पर उन्हे क्रोध के उपशमन का उपाय हाथ नही लगता तव उनकी शक्ति दूसरो का अनिष्ट करने मे, शाप देने मे, खपती है।

स्वाध्याय के द्वारा यह जाना जा सकता है कि शक्ति-जागरण होने पर किस

प्रकार की अनुप्रेक्षाए करनी चाहिए, क्या-क्या करना चाहिए। जब शक्ति के जागरण मे अनुप्रेक्षाओ का सहारा लिया जाता है तब खतरा नही होता, कोई कठिनाई नही होती। साधक अपनी शक्ति का उपयोग नही करता। भयकर से भयकर स्थिति सामने होने पर भी वह शक्ति का सन्तुलन बनाए रखता है। वह उत्तेजित नही होता। किसी को शाप नही देता। जिन साधको ने ध्यान के द्वारा साधना के रहस्यो को उपलब्ध किया, साधना की सचाइयो को उपलब्ध हो गए, उनके सामने भयानक स्थितिया आईं, पर उनमे प्रतिकार की भावना जागृत नही हुई। वे चाहते तो उन स्थितियो को एक क्षण मे समाप्त कर देते। सारे विरोधियो को भस्म कर देते, पर उन्होने वैसा नही किया। जब भी दूसरे उनको सताते तो वे सोचते 'ये अज्ञानी है', हमे निमित्त बनाकर स्वय बन्धन पैदा कर रहे हैं।

अनुप्रेक्षा · आलम्बनों की जननी

अध्यात्म का एक सूत्र है—कोई व्यक्ति क्रोध करे, गाली दे, उसे सहन करो। सहन करना सामान्य बात नही है। इसके लिए पुष्ट आलम्बन चाहिए। किसी आलम्बन के आधार पर ही सहा जा सकता है। सामान्यत गाली का उत्तर गाली से, क्रोध का उत्तर क्रोध से, उत्तेजना का उत्तर उत्तेजना से दिया जाता है। सामने कोई प्रतिक्रिया हो और दूसरा प्रतिक्रिया न करे, ऐसा सम्भव नही लगता, किन्तु अनुप्रेक्षा के आलम्बन के सहारे इन सब स्थितियो को सहा जा सकता है। तब कोई प्रतिक्रिया नही होती। ये आलम्बन अनुप्रेक्षा से प्राप्त होते हैं। क्रोध आदि आवेशजन्य स्थितियो को सहने, मन को शान्त और सन्तुलित रखने के लिए कुछ पुष्ट आलम्बन हैं।

सहिष्णुता के पांच आलंबन

१. भूल की खोज

कोई व्यक्ति क्रोध करता है, गाली देता है, उत्तेजित होता है तो जिस व्यक्ति को आलबन प्राप्त हैं, वह सोचता है—अवश्य ही मेरी कोई न कोई त्रुटि हुई है। मुझे उस त्रुटि को खोजना चाहिए। मेरी त्रुटि के कारण ही यह उत्तेजित और क्रोधित हुआ है। वह साधक अपनी भूल की खोज मे लग जाता है। वह क्रोध का उत्तर क्रोध से नही देता। सामने वाला व्यक्ति भी शात हो जाता है।

२ मैं अज्ञानी नही

जब दूसरा कोई क्रोध करता है तब वह आलंबन-प्राप्त साधक सोचता है—यह अज्ञानी है, इसलिए क्रोध कर रहा है। इसे क्रोध के दुष्परिणाम ज्ञात नही हैं।

मैं ज्ञानी हूं। मुझे क्रोध के दुष्परिणाम ज्ञात है। मैंने क्षमा का मूल्य समझा है। अज्ञानी आदमी को क्रोध करते देखकर यदि मैं भी क्रोध करू तो मैं भी अज्ञानी वन जाऊगा।

एक व्यक्ति अपने मित्र के घर गया। पूछा—आज इतने प्रसन्न कैसे लग रहे हो? उसने कहा—आज एक अजीव घटना घटी। मैं पडोसी के घर गया। उसने जाते ही मुझे कहा—तुम गधे हो। मित्र ने पूछा—तुमने प्रत्युत्तर मे क्या कहा? उसने कहा—मैं मौन रहा। क्योकि मैं भी गाली का उत्तर गाली से देता तो सचमुच मैं गधा वन जाता। उसने मुझे गधा कहा, इससे मैं गधा नही बना किन्तु मै गाली देता तो अवश्य ही गधा वन जाता।

जिनमे सहन करने की शक्ति दुर्वल होती है, वे गुस्से के प्रति गुस्सा, उत्तेजना के प्रति उत्तेजना करने में रस लेते हैं। जिनमे यह चेतना जाग जाती है—अज्ञानी मनुष्य को देखकर अज्ञानी नही वनना है। क्रोध वह करता है जो अज्ञानी होता है, मुझे ज्ञान उपलब्ध हुआ है, मैं अज्ञानी नही हूं, क्रोध को देखकर क्रोध नही करूगा, यदि करूंगा तो अज्ञानी वन जाऊगा—उन्हे दूसरा आलवन प्राप्त हो जाता है।

३. मैं मूर्ख नहीं

क्रोध करना मूर्खता का लक्षण है। क्रोध करने वाला मूर्ख होता है। समझदार आदमी कभी क्रोध नही करता। समझदार आदमी कारण को खोजता है, क्रोध के प्रति क्रोध नही करता। जो व्यक्ति कारण की खोज मे लग जाता है, वह क्रोध की ओर कम जाता है, कारण तक पहुंचने का प्रयत्न करता है। साधक इन आलबन-सूत्रो को पुष्ट करे—मैं मूर्ख नही हूं। मूर्खता मेरा स्वभाव नही है।

४. दोप मेरा ही है

मैं सवके साथ सद्-व्यवहार करता हू, किसी का प्रतिवाद नही करता, फिर भी कोई व्यक्ति मेरे व्यवहार से कुपित होता है तो यह मेरे पूर्वकृत कर्म का ही फल हो सकता है। कोई ऐसा विपाक है, मेरे स्वरो मे या शव्दो के व्यवहार मे ऐसी कोई कमी है कि सामने वाला कुपित हो जाता है। दोप दूसरों का नही है, मेरा ही है। इस आलंवन के आधार पर वह गुस्से से वच जाता है। संपर्क मे आने वाला प्रत्येक व्यक्ति उसके ऊपर क्रोध करता है, किन्तु वह क्रोध नही करता क्योकि उसे एक पुष्ट आलवन प्राप्त है।

५. आग हाथ जलाती है

जो क्रोध करता है उसका मन रुग्ण हो जाता है। क्षमा करने वाले का चित्त स्वस्थ रहता है। यह सचाई जव समझ मे आ जाती है तव क्रोध की जड़ पर तीव्र

प्रहार होता है। जिसने यह स्पष्ट रूप से जान लिया कि आग मे हाथ डालने से हाथ जल जाते हैं, वह व्यक्ति कभी आग मे हाथ नही डालेगा। जिस व्यक्ति की चेतना मे इस सचाई का स्पष्ट अवतरण हो जाए कि क्रोध करने वाले का चित्त रुग्ण होता है, मन मलिन होता है, रक्त विषैला बनता है, भयकर बीमारियां उत्पन्न होती हैं, वह व्यक्ति क्रोध का कभी पालन-पोषण नही करेगा। यह पाचवा आलवन है।

सहिष्णुता के ये पाच पुष्ट आलबंन हैं।

शक्ति पर खोल चढ़ा दो

ध्यान की साधना के साथ जब शक्ति जागती है तब क्रोध भी उभरता है, किंतु स्वाध्याय और अनुप्रेक्षा करने वाला व्यक्ति यह जान लेता है कि क्रोध आने पर किन-किन आलवनो का सहारा लेना चाहिए। वह उन पुष्ट आलम्वनो का सहारा लेता है और क्रोध पर एक इन्सुलिन चढा देता है। शक्ति पर एक खोली चढा देता है। शक्ति पर खोली हो तो फिर वह खतरनाक नही वनती। यदि उस पर कोई खोली नही होती तो शक्ति शक्ति है, वह जला भी सकती है, मार भी सकती है। इसलिए यह वहुत जरूरी है कि जब ध्यान की साधना के साथ-साथ शक्ति जागे तो स्वाध्याय, अनुप्रेक्षा की खोली उस पर चढा दी जाए, जिससे कि वह खतरनाक न बने और उसका ठीक उपयोग हो सके। वह हमारे काम आती रहे।

अहंकार का उफान और शमन

विचय-ध्यान करने वाला, विचार का ध्यान करने वाला अनुप्रेक्षा को कभी नही छोड सकता। ध्यान के साथ कुछ शक्तियां प्राप्त होती हैं, कुछ लब्धियां प्राप्त होती हैं, कुछ विभूतिया प्राप्त होती हैं, तब अहकार के जागने की बहुत बड़ी सभावना बन जाती है। शक्तिप्राप्त व्यक्ति सोचता है—यह शक्ति मेरे मे है, दूसरो मे नही—यह चेतना जागते ही उसका अहकार उफनने लगता है। यदि सबको वह शक्ति उपलब्ध होती तो उसमे अहंकार नही जागता। जब कुछ अतिरिक्तता होती है तब अहकार को जागने का अवकाश मिल जाता है।

दो साधक मिले। एक ने कहा—चलो, आज पानी पर बैठकर चर्चा करें। उसे पानी पर बैठने की शक्ति प्राप्त थी। दूसरा साधक भी शक्ति-सम्पन्न था। उसने कहा—पानी पर क्या बैठें, चलो, आज आकाश मे अधर बैठकर चर्चा करें। उसे आकाश मे अधर बैठने की शक्ति प्राप्त थी। पहले साधक का अहकार कुछ ठडा पडा, क्योकि पानी पर बैठने से आकाश मे बैठना बड़ी वात थी। दूसरे साधक का अहकार फुफकार उठा। इतने मे ही एक अध्यातम योगी उधर आ

निकला। उसने दोनो की बात सुनी। उसने कहा—एक मछली भी पानी मे तैरती है, बैठती है। यह तो मामूली बात है। मक्खी आकाश मे उड़ती है। अधर रह जाती है। इसमे क्या अनोखापन है? पानी पर बैठना या आकाश मे अधर रहना कोई महत्त्व की बात नही है। मछली और मक्खी का जीवन मत जीओ। साधना की सही दिशा मे चलो। अध्यात्म को उपलब्ध करो और अपने कषायों और मलिनताओं को दूर करो, अशुद्धियो को समाप्त करो। अन्यान्य लब्धिया महत्त्वपूर्ण नही हैं। वे साधना के साथ स्वय उपलब्ध होती हैं।

अहकार से बचने का एकमात्र उपाय है—अनुप्रेक्षा। जो व्यक्ति ध्यान के साथ-साथ अनित्य अनुप्रेक्षा का प्रयोग प्रारभ कर देता है, उसमे अहकार जागने की संभावना कम हो जाती है। यदि अहकार जागता भी है तो शात हो जाता है। क्रोध आता है तो वह टिक नही पाता, अपने आप विलीन हो जाता है। ध्यान करने वाले व्यक्ति को इस अनुप्रेक्षा का बार-बार आलबन लेना चाहिए। इसके कुछ सूत्र ये हैं—

अनित्य अनुप्रेक्षा

यह शरीर अनित्य है। यह यौवन अनित्य है। शरीर की सुदरता का अभिमान हो सकता है। यौवन का अभिमान हो सकता है। यह परिवार का सयोग अनित्य है। अपने परिवार का अभिमान हो सकता है। यह वैभव, यह सपदा अनित्य है। संपदा का अहकार हो सकता है। इष्ट का सयोग भी अनित्य है। ये सब अनित्य हैं। और क्या? जीवन भी अनित्य है। जब अनित्यता का यह अनुचितन सामने रहता है, बार-बार चेतना मे उभरता है तब अहंकार के प्रश्न समाप्त हो जाते हैं। जिस व्यक्ति को अनित्यता का अनुभव नही होता उसमे क्रोध आने का बहुत अवकाश रहता है। जिसकी चेतना मे यह बात जम गई कि सयोग अनित्य है, पदार्थ नश्वर है, तब पदार्थ के चले जाने पर भी वह दुःखी नही होगा।

हमारे व्यावहारिक जीवन मे भी अनित्य अनुप्रेक्षा का बहुत बडा महत्त्व है। जिस व्यक्ति के चित्त मे यह सस्कार पुष्ट बन जाता है कि सब पदार्थ अनित्य है, फिर उस व्यक्ति के मन से विवाद बढने वाली बातें समाप्त हो जाती हैं। वह घटना को जान लेता है, भोगता नही। ध्यान करने वाले मे और ध्यान नही करने वाले में यही अन्तर है। ध्यान करने वाला व्यक्ति घटना को जानता है, भोगता नही। ध्यान नही करने वाला व्यक्ति घटना को जानता नही, भोगता है। घटना को जानने वाला व्यवहार को अमृतमय बना देता है, मधुर बना देता है। घटना को भोगने वाला स्वय दुःख पाता है और सारे वातावरण मे दुःख के परमाणुओं को बिखेर देता है, सारा वातावरण दुःखपूर्ण बन जाता है। वह दुःख उसी तक सीमित नही रहता, विस्तृत हो जाता है।

पति-पत्नी लड रहे थे। पडोसी आया। पूछा—क्या तुम सदा से लड़ते रहे हो ? पति बोला—यह हमारे विवाह का तीसरा वर्ष है। पहले वर्ष मै कुछ कहता, यह सुन लेती। दूसरे वर्ष मे यह कुछ कहती और मै सुन लेता। इस तीसरे वर्ष मे हम दोनो बोलते हैं और पडोसी सुनते हैं। तीसरा वर्ष उनके लिए दु ख बिखेरने का वर्ष बन गया।

अशरण अनुप्रेक्षा

दूसरा सूत्र है—अशरण अनुप्रेक्षा। ध्यान साधक वहुत जागरूक रहता है। वह भ्रान्तियो को तोडता रहता है। यह एक वहुत वड़ी भ्रान्ति है कि आदमी हर एक को शरण मान लेता है। व्यवहार मे ऐसा मानना पडता है, पर यह अतिम सचाई नही है। हर एक चीज त्राण नही होती। हमारा यह विवेक स्पष्ट होना चाहिए कि हम व्यवहार को अन्तिम सचाई न मानें। व्यवहार व्यवहार होता है और यथार्थ यथार्थ होता है। व्यवहार की सचाई व्यवहार की सचाई होती है और वास्तविकता की सचाई वास्तविकता की सचाई होती है। व्यवहार की सचाई इतनी-सी है कि जव तक दोनो का स्वार्थ जुडा रहता है तव तक एक दूसरे के लिए त्राण या शरण वने रहते है। जहा स्वार्थ को धक्का लगा कि त्राण समाप्त हो जाता है, शरण समाप्त हो जाता है फिर वह पछतावे के शब्दो मे कहता है—अरे, मैंने इसके पालन-पोषण के लिए कितना किया, आज यह मेरे साथ ऐसा व्यवहार कर रहा है ? उस व्यवहार के कारण कोई दु खी नही होता, दु खी होता है नियम की विस्मृति के कारण। व्यक्ति जव व्यवहार को, पदार्थ को और व्यक्ति को अतिम सत्य मान लेता है और त्राण मान लेता है, तव दु.खी होना पडता है। यह है अशरण अनुप्रेक्षा। व्यवहार मे अनेक पदार्थों को त्राण मानते चलें, किन्तु इस सचाई को न भूलें कि वास्तविक या अतिम त्राण अपना ज्ञान, अपना दर्शन और अपना आचरण तथा व्यवहार होता है। दूसरे मे त्राण देने की क्षमता नही है।

एकत्व अनुप्रेक्षा

तीसरा सूत्र है—एकत्व अनुप्रेक्षा। सामाजिक प्राणी सहयोग लेता है और सहयोग देता है। वह अकेला जीवन नही जी सकता। सवका सहयोग लेता है तो समाज चलता है। सामाजिक जीवन जीते ुए भी लोग इस सचाई को भूल जाते हैं कि अन्तत व्यवित अकेला है। ध्यान करने वाले साधक को इस सचाई से वहुत परिचित रहना है। इस अनुप्रेक्षा को वार-वार दोहराना है। जिसका यह आलवन पुष्ट हो जाता है—आत्मा अकेली है, व्यक्ति अकेला है—उसे सहयोग न मिलने पर भी कोई कष्ट नही होगा, क्योकि उसका चित्त इस भावना से पूर्णरूपेण भावित

है। वह परिस्थिति के आने पर भी टूटेगा नही। यदि यह भावना चित्त मे स्थित नही है, और व्यक्ति सुनता है कि सबने उसका साथ छोड़ दिया है, तो वह विक्षिप्त बन जाएगा, पागल हो जाएगा। ऐसा इसलिए होता है कि वह व्यक्ति अटल सचाई को विस्मृत किए चलता है। वह उस सचाई का पालन नही करता, अनुभव नही करता। यदि चित्त सचाई से भावित रहे तो ऐसी घटना घटने पर भी आदमी विचलित नही होता, वह सभला रहता है।

जब सब साथ कार्य करते थे, वह आश्चर्य की बात नही है। अब सब बिछुड़ गए या सहयोग खीच लिया, यह भी आश्चर्य की बात नही है। आश्चर्य की बात यह है कि ऐसी घटनाए प्रतिदिन घटती रहती हैं, फिर भी आदमी आख मूदकर सचाई की अवहेलना करता जा रहा है। 'मैं अकेला हूं'—यह है एकत्व अनुप्रेक्षा।

संसार अनुप्रेक्षा

चौथा सूत्र है—संसार अनुप्रेक्षा। इसका अर्थ है—संसार की नाना परिणतियो को जानना, विविध परिवर्तनो को जानना। जन्म और मृत्यु के चक्र से बराबर परिचित रहना।

चित्त-शुद्धि की प्रक्रिया : अनुप्रेक्षा

अनुप्रेक्षाएं अनेक हैं। मैंने चार मुख्य अनुप्रेक्षाओ की चर्चा का है। जो व्यक्ति ध्यान के साथ-साथ इन अनुप्रेक्षाओ का अभ्यास करता है, उसके चित्त पर कोई मूर्च्छा नही जमती, मैल नही जमता। कभी कुछ जमता है तो अनुप्रेक्षा से उसकी धुलाई हो जाती है। इसलिए प्रेक्षा-ध्यान करने वाले साधको को चित्त-शुद्धि के लिए अनुप्रेक्षाओ का अभ्यास करना जरूरी है। उनके लिए स्वाध्याय भी बहुत अपेक्षित है। प्रेक्षा-ध्यान की प्रक्रिया मे स्वाध्याय का भी स्थान है, गुरु के पथ-दर्शन का भी स्थान है। इस सचाई को बराबर मानते चलें तो ध्यान के साथ-साथ हमारे चित्त की निर्मलता और चित्त की निर्मलता पर संभावित दोषो का शोधन करते चले जाएगे और तब व्यवहार के क्षेत्र मे भी- जीवन-यात्रा सुखद होती चली जाएगी। उस स्थिति मे अध्यात्म की यात्रा निर्विघ्न और निर्बाध बन सकेगी।

६. चित्त-शुद्धि और लेश्या-ध्यान

१. ध्यान स्थिर—लेश्या शुद्ध, आभामडल शुद्ध, भाव शुद्ध, चरित्र शुद्ध।
२. चरित्र-शुद्धि ध्यान की व्यावहारिक कसौटी। लेश्या की शुद्धि और आभामडल की शुद्धि आन्तरिक कसौटी।
३. चरित्र के आधार पर आभामडल जाना जा सकता है। आभामडल के आधार पर चरित्र जाना जा सकता है।
४. ध्यान की दीक्षा आभामडल देखकर।

नौ

वैज्ञानिक उपलब्धि

मनुष्य सारी जीवन-यात्रा स्थूल शरीर की परिक्रमा करते हुए करता है। जीवन इसी स्थूल शरीर के आसपास चलता है। इस सीमा को पार कर आगे जाने वाले कुछ ही लोग होते हैं। हमारे पास जानने के जितने भी साधन है, वे सब स्थूल हैं। वे स्थूल को पकड़ सकते हैं। सूक्ष्म को जानने का कोई भी साधन नही है।

इस वैज्ञानिक युग ने मनुष्य जाति का बहुत उपकार किया है। आज धर्म के प्रति जितना सम्यग् दृष्टिकोण है वह ५०-१०० वर्ष पूर्व नही हो सकता था। आज सूक्ष्म सत्य के प्रति जितनी गहरी जिज्ञासा है, उतनी पहले नहीं थी। कुछ समय पूर्व तक जब कभी सूक्ष्म सत्य की बात प्रस्तुत होती तो मनुष्य उसे पौराणिक या मनगढंत मानकर टाल देता था। वह उसे अंधविश्वास कहता था। एक ऐसा शब्द है अंधविश्वास कि उसकी ओट मे सब कुछ छिपाया जा सकता है। किन्तु विज्ञान ने जैसे-जैसे सूक्ष्म सत्यो की प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत की, वैसे-वैसे अधविश्वास कहने का साहस टूटता गया। अब यदि कोई व्यक्ति किसी बात को अंधविश्वास कहकर टालता है तो वह साहस ही करता है। आज विज्ञान जिन सूक्ष्म सत्यो का स्पर्श कर चुका है, दो शताब्दी पूर्व उसकी कल्पना करना भी असभव था। यह कहा जा सकता है कि विज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान की सीमा के आस-पास पहुच रहा है। प्राचीनकाल मे साधना द्वारा अतीन्द्रिय ज्ञान का विकास और सूक्ष्म सत्यो का साक्षात्कार किया जाता था। आज के आदमी ने अतीन्द्रिय ज्ञान की साधना भी खो दी और अतीन्द्रिय ज्ञान का विकास करने का अभ्यास भी खो दिया। पद्धति भी विस्मृत हो गयी। अब सिवाय विज्ञान के कोई साधन नही है। वैज्ञानिकों ने कोई साधना नही की, अध्यात्म का गहरा अभ्यास नही किया, अतीन्द्रिय चेतना को जगाने का प्रयत्न नही किया किन्तु इतने सूक्ष्म उपकरणो का ...ग किया कि जिनके माध्यम से अतीन्द्रिय सत्य खोजे जा सकते हैं, देखे जा

सकते हैं। जो इन्द्रियो से नही देखे जा सकते, वे सत्य इन सूक्ष्म उपकरणो से ज्ञात हो जाते है। इसका फलित यह हुआ कि आज का विज्ञान अतीन्द्रिय तथ्यो को जानने-देखने और प्रतिपादन करने मे सक्षम है।

सूक्ष्म शरीर

सूक्ष्म शरीर ज्ञात नही है। इस स्थूल शरीर से परे कोई शरीर है, यह न आज का चिकित्सक जानता है और न दूसरे व्यक्ति जानते हैं। आज के चिकित्सक ने शरीर के एक-एक अवयव को जान लिया है। वह शरीर के सूक्ष्मतम अवयवो को भी जानता है। उनको उसने देखा है, जाना है, उनकी प्रक्रिया से भी वह अवगत है। एक-एक स्नायु और ग्रन्थि के विषय मे उसे पूरी जानकारी है। परन्तु यह सारा इस स्थूल शरीर की परिधि के सदर्भ मे है। इससे आगे भी कोई सूक्ष्म या सूक्ष्मतम शरीर और है, यह वात उसे ज्ञात नही है और वह इस तथ्य को मानने के लिए भी सावकाश नही है। मेडिकल साइन्स इस स्थूल शरीर की सीमा मे ही ज्ञान कर सका है।

कुछेक वैज्ञानिको ने ऐसे अनुसधान किए है जिनके आधार पर वे स्थूल शरीर से आगे की वात कहने मे सक्षम हैं।

लदन के एक डॉक्टर **W H. J. मीलर** ने एक पुस्तक लिखी है—**'दि ह्यूमन एनाटॉमी'**। उसमे उन्होने लिखा है कि अनेक रोगियो के परीक्षण के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि मनुष्य के इस भौतिक शरीर मे एक ऐसा शरीर और है जो प्रकाश का पिंड है, विद्युतमय है, तेजोमय है।

रूस के वैज्ञानिको ने अनेक परीक्षणो के पश्चात् यह प्रतिपादन किया कि इस स्थूल शरीर मे एक विद्युत् शरीर भी है। यह विद्युत्-शरीर, प्रकाश-शरीर मृत्यु के समय देखा जा सकता है। जब आदमी मरता है तब वह स्थूल शरीर को छोडकर वाहर निकलता है। उसे वाहर निकलते देखा जा सकता है। जीवित प्राणियो मे भी यह देखा जा सकता है और इसके फोटो भी लिये जा सकते है।

लेश्या का सिद्धान्त स्थूल शरीर के परे का सिद्धान्त है। हम जब लेश्या के विषय मे कुछ जानने का प्रयत्न करते हैं, उसका अर्थ होता है कि इस औदारिक शरीर की सीमा को पार कर, सूक्ष्म शरीर की सीमा मे प्रवेश हो रहा है। इस स्थूल शरीर के भीतर, इसी के पूरे आकार का, एक शरीर फैला हुआ है। उसे तैजस शरीर, विद्युत्-शरीर कहा जाता है। वह प्रकाश का शरीर है। उसके सारे परमाणु प्रकाशमय है। वे वहुत तरल हैं।

जैव प्लाजमा

इस दृश्य जगत् मे चार प्रकार के द्रव्य हैं—तरल, ठोस, गैसीय और प्लाजमा।

आज वैज्ञानिकों ने यह प्रतिपादन किया कि ये चार ही प्रकार नहीं होते। एक और प्रकार भी है। उसे जैव प्लाज्मा कहा जाता है। वह जैव प्लाज्मा मृत्यु के बाद भी नष्ट नहीं होता। वह विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्रों में चला जाता है।

तैजस शरीर भी मृत्यु के बाद नष्ट नहीं होता। एक दृष्टि से यह अमर कहा जाता है। जब तक मनुष्य इस शरीर से सर्वथा मुक्त नहीं हो जाता तब तक यह तैजस शरीर कभी नहीं मरता। मनुष्य अनादिकाल से शरीर धारण करता आ रहा है। एक स्थूल शरीर को छोड़ता है और दूसरे स्थूल शरीर को धारण कर लेता है। उसने कितने शरीर बदले हैं, कितनी बार बदले हैं। किन्तु इतना सब होने पर भी उसके पास एक तैजस शरीर है जो सदा से उसके साथ आ रहा है। वह नहीं मरता, नहीं बदलता। इस दृष्टि से वह अमर है, सदा साथ रहने वाला है। तैजस शरीर से भी सूक्ष्म है कर्म-शरीर। वह भी प्राणी का साथ नहीं छोड़ता। वह भी नहीं मरता। वह कभी नहीं मरा। उसने जीव का साथ आज तक नहीं छोड़ा और तब तक नहीं छोड़ेगा जब तक जीव बंधनों से सर्वथा मुक्त नहीं हो जाएगा। ये दोनों शरीर अमर हैं।

जब हम तैजस शरीर में प्रवेश करते हैं तब हमारा चिन्तन बदल जाता है, भावधारा बदल जाती है। भावों का सारा निर्माण इस तैजस शरीर या विद्युत् शरीर की सीमा में होता है। हमारे भाव बनते हैं, अच्छे होते हैं, बुरे होते हैं, वे सब तैजस शरीर की सीमा में होते हैं। तैजस शरीर के आसपास सारी घटनाएं घटित होती हैं। वे घटनाएं और भाव स्थूल शरीर में उतरते हैं और हमारे ग्रंथि संस्थान, हमारे स्नायु-मंडल को प्रभावित करते हैं। फिर वे हमारे आचरण में आते हैं। मनुष्य के आचरण और व्यवहार का अध्ययन नाड़ी-मंडल और ग्रन्थि-संस्थान के आधार पर नहीं किया जा सकता। उसका अध्ययन किया जा सकता है तैजस शरीर के आधार पर, लेश्याओं और भावतंत्र के आधार पर।

प्रकाश ही है रंग

हम जब इस स्थूल शरीर की सीमा से पार जाकर देखते हैं तो हमें विचित्र रंग दिखाई देते हैं। विचारों को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले दो तत्त्व हैं—शब्द और रंग। मनुष्य इन दोनों से अत्यधिक प्रभावित होता है। दो इन्द्रियां—चक्षु और श्रोत्र आदमी पर प्रभाव डालती हैं। हमारे आस-पास रंगों का वलय बना हुआ है। हमारे भीतर रंगों का वलय बना हुआ है। आप देखें। आंखों को बंद करें। दर्शन-केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित करें। थोड़े समय में ही रंगों के बिन्दु दीखने लग जाएंगे। आंख को मूंदकर दबाएं और देखें, प्रकाश के बिन्दु और रंगीन बिन्दु आस-पास चक्कर लगाते हुए दीख पड़ेंगे। सर्वेन्द्रिय-संयम मुद्रा करें। आंखों के सामने रंग ही रंग दीख पड़ेंगे। ये रंग हमारे भीतर हैं। तैजस शरीर रंगों का

शरीर है। प्रकाश और रंग दो नहीं हैं, एक ही हैं। प्रकाश का उनचासवां प्रकंपन ही रग होता है। एक फ्रिक्वेन्सी मे प्रकाश रग बन जाता है। सूर्य की किरणो मे सभी मूल रंग हैं। जहा तैजस है, प्रकाश है वहां रग है। प्रकाश और रंग दोनों साथ-साथ होते हैं। हमारा तैजस शरीर प्रकाश का शरीर है, रगो का शरीर है। उसमे सभी रग विद्यमान हैं। रग हमारे सामने आते रहते हैं। यदि कोई द्रष्टा हो, जिसके चक्षु निर्मल हो, जिसे दृष्टि उपलब्ध हो, वह सामने दीखने वाले रगीन विन्दुओ के आधार पर जान लेता है कि किस प्रकार का भाव निर्मित हो रहा है और अब कौन-सी वृत्ति अभिव्यक्त होगी। इन रगो के आधार पर जाना जा सकता है कि हमारे आस-पास मे किस प्रकार के परमाणु अधिक मात्रा मे आदोलित हो रहे हैं, चक्कर लगा रहे हैं। समूचा स्वरोदय का सिद्धान्त इन विन्दुओ के आधार पर चलता है। विन्दुओ को देखकर स्वर-साधक जान जाता है कि अव पृथ्वी तत्त्व चल रहा है, जल तत्त्व चल रहा है या अग्नि तत्त्व चल रहा है।

गुण तीन माने गए हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्। इन तीनो गुणो के द्वारा मनुष्य पर विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं होती है। इन तीनों का रंगीन विन्दुओ के आधार पर पता लगाया जा सकता है।

लेश्याए छह हैं। छहो लेश्याओ का इन विन्दुओ के आधार पर पता लगाया जा सकता है। यह जाना जा सकता है कि कौन-सी लेश्या काम कर रही है।

यह सूक्ष्म शरीर की सक्षिप्त चर्चा है। इसको सुनकर यह अभीप्सा पैदा होती है कि कभी-कभी स्थूल शरीर से परे भी जाना चाहिए। सूक्ष्म-शरीर का ज्ञान हमे नही है। हमारी अतिम सीमा स्थूल शरीर है। हमारी सारी प्रवृत्तियां इसी की परिधि मे होती हैं। इससे परे आदमी सोचता भी नही। सारी घटनाएं इसके ईर्द-गिर्द हो रही हैं। किन्तु प्रेक्षा ध्यान का अभ्यास करने वाला व्यक्ति सीमा को पार करना चाहेगा। जव वह सीमा को पार करेगा तव उसे पता चलेगा कि कब श्वेत रग दिखाई देता है। कहा-कव लाल रग और चमकीला ब्लू रंग दिखाई देता है। किस प्रकार शान्ति, आनन्द और प्रसन्नता घटित होती है। अपने आप मन मे एक जिज्ञासा जागती है—रग क्यो आता है ? यह क्या है ?

रगो का दीखना शुभ लक्षण है। इससे यह प्रतीत होता है कि मन स्थिर हो रहा है, लेश्या शुद्ध हो रही है। यह ध्यान की कसौटी है। जैसे-जैसे लेश्या शुद्ध होती है, वैसे-वैसे आभामडल निर्मल और पवित्र होता है। जैसे-जैसे आभामडल निर्मल होता है, वैसे-वैसे व्यक्ति का चरित्र शुद्ध होता चला जाता है। चरित्र-परिवर्तन का मूल आधार है लेश्या का परिवर्तन। चरित्र-परिवर्तन का मूल आधार है आभामंडल का परिवर्तन। आभामंडल जितना दूषित होता है, चरित्र भी उतना ही दूषित होता है। आभामडल जितना शुद्ध होता है, चरित्र भी उतना ही शुद्ध होता है। आभामंडल का विश्लेषण करने वाला व्यक्ति चरित्र का विश्लेषण

कर सकता है। वह व्यक्ति-व्यक्ति के चरित्र को जान सकता है।

ध्यान की दीक्षा देने वाला गुरु शिष्य के आभामंडल को देखकर उसके समूचे चरित्र को पढ लेता है और जान जाता है कि यह कैसा व्यक्ति है? इसकी भाव धारा कैसी है?

एस्ट्रलप्रोजेक्शन और समुद्घात

एक हब्शी महिला है। उसका नाम है—लिलियन। वह अतीन्द्रिय प्रयोगो मे दक्ष है। उससे पूछा गया—तुम अतीन्द्रिय घटनाए कैसे बतलाती हो? उसने कहा, 'मैं एस्ट्रलप्रोजेक्शन के द्वारा उन घटनाओ को जान जाती हूं। प्रत्येक प्राणी मे प्राणधारा होती है। उसे एस्ट्रल बॉडी भी कहा जाता है। एस्ट्रलप्रोजेक्शन के द्वारा मैं प्राणशरीर से बाहर निकलकर, जहा घटना घटित होती है, वहा जाती हूं और सारी बातें जानकर दूसरो को बता देती हूं।'

विज्ञान द्वारा सम्मत यह एस्ट्रलप्रोजेक्शन की प्रक्रिया जैन परपरा की समुद्घात प्रक्रिया है। समुद्घात का यही तात्पर्य है कि जब विशिष्ट घटना घटित होती है तब व्यक्ति स्थूल शरीर से प्राणशरीर को बाहर निकालकर घटने वाली घटना तक पहुचाता है और घटना का ज्ञान कर लेता है। यह प्राण-शरीर बहुत दूर तक जा सकता है। इसमे अपूर्व क्षमताए हैं।

समुद्घात सात है—वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात, तैजस समुद्घात, आहारक समुद्घात और केवली समुद्घात। जब व्यक्ति को क्रोध अधिक आता है तब उसका प्राण-शरीर बाहर निकल जाता है। यह कषाय समुद्घात है। जब आदमी के मन मे अति लालच आता है तब भी प्राण-शरीर बाहर निकल जाता है। इसी प्रकार भयंकर बीमारी मे, मरने की अवस्था मे भी प्राण-शरीर बाहर निकल जाता है। आज के विज्ञान के सामने ऐसी अनेक घटनाए घटित हुई हैं।

एक रोगी ऑपरेशन थियेटर मे टेबल पर लेटा हुआ है। उसका मेजर ऑपरेशन होना है। डॉक्टर ऑपरेशन कर रहा है। उस समय उस व्यक्ति मे वेदना समुद्घात घटित हुई। उसका प्राण-शरीर स्थूल शरीर से निकलकर ऊपर की छत के आसपास स्थिर हो गया। ऑपरेशन चल रहा है और वह रोगी अपने प्राण-शरीर से सारा ऑपरेशन देख रहा है। ऑपरेशन करते-करते एक बिन्दु पर डॉक्टर ने गल्ती की। तत्काल ऊपर से रोगी ने कहा, 'डॉक्टर! यह भूल कर रहे हो।' डॉक्टर को पता नही चला—कौन बोल रहा है। उसने भूल सुधारी। वेदना कम होते ही रोगी का प्राण-शरीर पुन. स्थूल शरीर मे आ जाता है। की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। होश आने पर रोगी ने डॉक्टर से कहा, पर लटकते हुए मैंने पूरा ऑपरेशन देखा है।

शरीर प्रक्षेपण की अनेक प्रक्रियाए हैं। इन प्रक्रियाओ मे प्राण-शरीर बाहर चला जाता है।

उस हब्शी महिला लिलियन ने कहा, 'मैं एस्ट्रलप्रोजेक्शन के द्वारा यथार्थ बात जान लेती हूं। मैं लोगो के आभामडल मे प्रविष्ट होकर उनके चरित्र का वर्णन कर सकती हू। किन्तु शराबी आदमी के चरित्र को मैं नही जान सकती, क्योकि शराबी आदमी का आभामडल अस्त-व्यस्त हो जाता है। वह इतना धुंधला हो जाता है कि उसके रगो का पता ही नही चलता।'

हमारी भावनाए, हमारे आचरण आभामडल के निर्माता हैं। जब अच्छी भावनाए, और पवित्र आचरण होता है तब आभामडल बहुत सशक्त और निर्मल होता है। भावधारा मलिन होती है और चरित्र भी मलिन होता है तब आभामडल धूमिल, विकृत और दूषित हो जाता है।

भामंडल और आभामडल

दो शब्द हैं। एक है—भामडल और दूसरा है—आभामडल। ऑकल्ट साइन्स (Occult-Science) मे भामडल को हॅलो (Hallow) कहते हैं। यह सिर के पीछे होता है। आज भी जो अवतारो के चित्र मिलते हैं, बड़े व्यक्तियो के चित्र मिलते हैं उनमे हम व्यक्ति के सिर के पीछे गोलाकार पीले रग का एक चक्र-सा देखते हैं। यह भामडल हैं। यह प्रत्येक प्राणी मे नही होता। विशिष्ट व्यक्तियो के ही होता है। दूसरा है आभामडल। इसे ऑकल्ट साइन्स मे 'ओरा' (Auro) कहते हैं। यह आभामडल हमारे चरित्र का, हमारी भावधारा का प्रतिनिधित्व करता है। आभा-मडल को देखकर व्यक्ति के चरित्र को जाना जा सकता है और व्यक्ति के चरित्र को देखकर आभामडल को जाना जा सकता है। जो व्यक्ति चरित्रवान् है, उसका आभामडल सशक्त होगा। उस पर दूसरो का प्रभाव नही हो सकेगा। दूसरे तत्त्व उस आभामडल मे प्रवेश नही कर सकेंगे।

हम जिस दुनिया मे जीते हैं वह सक्रमण को दुनिया है। एक व्यक्ति पर अनेक तत्त्व सक्रमण करते हैं। अनेक रूप-रग आक्रमण करते है और आभामंडल को विचलित करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु जिनका चरित्र शुद्ध होता है, भावधारा निर्मल होती है, उनका आभामडल विचलित नही होता। बाह्य आक्रमणो से वह आक्रान्त नही होता। उसमे इतनी क्षमता होती है कि जो आता है, टकराता है और वापस चला जाता है, भीतर प्रवेश नही पा सकता। एक चरित्रवान् व्यक्ति को कोई अभिशाप दे, उस पर कोई असर नही होगा।

हमारा चरित्र और भाव जब निर्मल होता है तब इस सक्रमण की दुनिया मे रहते हुए भी हम बाह्य प्रभावो से बच जाते हैं। चरित्र का बहुत बडा मूल्य है। आदमी सफल होता है और कभी-कभी प्रत्येक कार्य मे सफल होता चला जाता

है। वह नही जानता कि यह कैसे हुआ ? यह सारा होता है भाव की शुद्धि और चरित्र की शुद्धि के द्वारा।

महान् योगी आनन्दघनजी

एक बहुत बड़े योगी सन्त थे आनन्दघनजी। वे पहुंचे हुए सिद्धयोगी थे। लोगों को पता चला कि ये सिद्धयोगी हैं। अब लोग अपनी-अपनी दुःख गाथाओं को लेकर आते और दु:ख प्रतिकार की बात पूछते। आनन्दघनजी ने सोचा—यह क्या ? मेरी साधना का सारा समय यदि मैं इनके दु:ख दूर करने मे लगा दू तो फिर साधना कब करू। वे गाव को छोड जगल मे चले गए। वहां भी लोग पहुंच गए। आनन्दघनजी वहा से अज्ञात स्थान मे चले गए। एक बार एक सुनार और एक बनिया—दोनो उनको ढूढने निकले और भाग्यवश उन तक पहुंच गए। बहुत अनुनय-विनय किया। आनन्दघनजी का मन करुणा से भर गया। उन्होंने पूछा—क्या चाहते हो ? दोनों ने कहा—और कुछ नही, केवल स्वर्ण चाहते हैं। आनन्दघनजी बोले—अच्छा, मैं तुम्हे स्वर्ण-सिद्धि का मंत्र देता हू। किन्तु मंत्र की साधना करनी होगी। तुम्हे अहिंसा, सत्य अचौर्य और ब्रह्मचर्य का पालन करना होगा। सग्रह नहीं करना होगा। उन्होंने कहा—महाराज ! आप कितने भोले हैं। यदि संग्रह नही करना है तो हमें स्वर्णसिद्धि की क्या आवश्यकता है ? यह नियम नही पल सकता, और सभी नियमो का पालन हम करेंगे। तब आनन्दघनजी बोले—अच्छा, दो व्रतो का पालन अवश्य करना। एक है—झूठ न बोलना और दूसरा है—कम तोल-माप न करना। दोनो ने स्वीकार कर लिया। आनन्दघनजी ने मत्र दे दिया। ये घर गए। जनता को पता चला कि ये न झूठ बोलते हैं और न कम तोल-माप करते हैं, भीड़ बढने लगी। व्यापार चौगुना हो गया। धन आने लगा।

एक वर्ष पूरा हुआ। आनन्दघनजी उस गांव में आए। स्वर्णकार भी दर्शन करने गया और बनिया भी पहुंचा। आनन्दघनजी ने पूछा—स्वर्णसिद्धि मंत्र की साधना कैसे चल रही है ? वे बोले—'महाराज! मंत्र के प्रयोग की आवश्यकता ही नही पड़ी। केवल दो व्रतो की साधना से स्वर्ण ही स्वर्ण हो गया।'

जब जीवन मे व्रत आता है तब मनुष्य का चरित्र शुद्ध होता है, आभामंडल निर्मल होता है और उस व्यक्ति मे ऐसे परमाणुओं का विकिरण होता है कि बिना बुलाए लोग आते हैं। आकर्षण पैदा हो जाता है। मंत्र की साधना जरूरी नही होती।

धर्म के दो अंग : प्रयोग और अनुभव

आज सबसे बडी समस्या यही है कि लोगों ने चरित्र का मूल्यांकन कम कर

दिया। धार्मिक लोगो ने भी यही किया। उन्होने धर्म को रूढ बना दिया। जो धर्म प्रायोगिक था, वह आज प्रयोगशून्य हो गया। जो अनुभव के द्वारा प्राप्त होने वाला तत्त्व था, उससे अनुभव को काट दिया गया। धर्मरूपी पछी के दो पख थे। एक था प्रयोग का पख और दूसरा था अनुभव का पख। दोनो पख काट दिए गए। आज वह धर्म का पखी पखविहीन होकर तडफ रहा है।

जिस धर्म के साथ प्रयोग नही है, कुछ नया जानने की जिज्ञासा नही है, नये तथ्य खोजने की अभीप्सा नही है, वह धर्म रूढ हो जाता है और गढे मे गिरे हुए पानी जैसा गदला बन जाता है।

जिसके साथ स्वय का कोई अनुभव नही होता, केवल सुनने और मानने की बात चलती है, वह धर्म बहुत भला नही कर सकता।

त्याग की शक्ति का उत्स—धर्म की चेतना

धर्म की सबसे बडी शक्ति है—त्याग की शक्ति। दुनिया मे कोई भी तत्त्व ऐसा नही है जो त्याग की शक्ति पैदा कर सके। एकमात्र धर्म की चेतना से व्यक्ति मे त्याग करने की क्षमता आती है। ससार के सारे शास्त्र भोग की बात सिखाते हैं, बटोरने की बात और इन्द्रियो के विषयो के सेवन की बात सिखाते है। एकमात्र धर्म की चेतना व्यक्ति को त्याग सिखाती है। वह कहती है—त्याग करो, विषयो का परित्याग करो, अनुपलब्ध को उपलब्ध करने का प्रयत्न मत करो। किन्तु आज मूल पर ही कुठाराघात हो चुका है। चरित्र की चेतना जब लुप्त हो जाती है, तब व्यक्ति के मन मे यह विचार उठता है कि चरित्रवान् दुःख पाता है और चरित्रहीन सुख भोगता है। जब यह विचार दृढमूल बन जाता है तब उस व्यक्ति का, समाज या राष्ट्र का चरित्र-पक्ष कभी उज्ज्वल नही रह सकता। वे कभी उन्नति के शिखर का स्पर्श नही कर सकते।

आनन्दघनजी से सबधित चारित्रिक पक्ष की एक दूसरी घटना है। एक बार एक प्रदेश के राजा-रानी आनन्दघनजी के पास आए। वे बोले—गुरुवर! और सब कुछ है, पर पुत्र नही है। पुत्र के बिना सपदा और वैभव का प्रयोजन ही क्या हो सकता है? आनन्दघनजी बोले—मैं क्या पुत्र दूगा? जाओ, और किसी से याचना करो। राजा-रानी ने बहुत आग्रह किया। आनन्दघनजी ने एक पन्ने पर कुछ लिखा और कहा—रानी के बाए हाथ पर बाध देना। मेरी एक शर्त मानना, सदा सदाचार का पालन करना। अहिंसा, सत्य का पालन करना। मनोकामना पूरी होगी। अन्याय मत करना, शोषण और उत्पीडन से बचना। न्याय करना।

राजा-रानी ने सभी व्रतो का पालन प्रारंभ कर दिया। आचरण का पक्ष उज्ज्वल हुआ। क्षमता बढ़ी। भावनाओ मे शक्ति आई, सकल्प-शक्ति का विकास हुआ। सयोग की बात पुत्र की प्राप्ति हो गई। वे दोनो आनन्दघनजी के पास

आकर बोले—महाराज ! आपका मंत्र सफल हुआ। हम आपके अत्यन्त आभारी हैं। आनन्दघनजी ने कहा—रानी के हाथ पर बंधा पत्र लाओ। उसे पढो। उसमे लिखा था—रानी को पुत्र हो तो आनन्दघनजी को क्या ? पुत्र न हो तो आनन्दघनजी को क्या ? यह न कोई यंत्र था और न मंत्र।

चरित्र और संकल्प

जब व्यक्ति का चरित्र शुद्ध होता है तब उसका संकल्प अपने आप फलित होता है। चरित्र की शुद्धि के आधार पर संकल्प की क्षमता जागती है। जिसका संकल्प बल जाग जाता है उसकी कोई भी कामना अधूरी नही रहती।

संकल्प लेश्याओं को प्रभावित करते हैं। लेश्या का बहुत बडा सूत्र है—चरित्र। तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या—ये तीन उज्ज्वल लेश्याए हैं। इनके रंग चमकीले होते हैं। कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या—ये तीन अशुद्ध लेश्याए है। इनके रंग अंधकार के रंग होते है। वे विकृतभाव पैदा करते हैं। वे रंग हमारे आभामंडल को धूमिल बनाते हैं। चमकते रंग आभामंडल मे निर्मलता और उज्ज्वलता लाते है। वे आभामंडल की क्षमता बढाते है। उनकी जो विद्युत्-चुम्बकीय रश्मिया हैं वे बहुत शक्तिशाली बन जाती हैं।

हम लेश्या-ध्यान का प्रयोग करते है। जब हम दर्शन केन्द्र पर बाल सूर्य के अरुण रंग का ध्यान करते हैं और वह रंग जब प्रकट होता है तब करने वाले को ज्ञात होता है कि उसमे कितना आनन्द जाग रहा है। जिस व्यक्ति ने तेजोलेश्या का प्रयोग नही किया, ध्यान नही किया, वह व्यक्ति इस स्थूल शरीर से परे भी कोई आनन्द होता है, इन विषयो से परे भी कोई सुखानुभूति है, नही समझ पाता, कल्पना भी नही कर पाता।

आंसू क्यों ?

जैन विश्व भारती के प्रागण मे प्रेक्षा ध्यान का शिविर था। वह सम्पन्न हुआ। अन्तिम दिन पति-पत्नी मेरे पास आए। वे रोने लगे। मैंने पूछा—क्यो ? उन्होने कहा—जाना पड रहा है, पर जाने को जी नही करता क्योकि जिस सुख का अनुभव यहां हुआ, वह जीवन मे कभी नही हुआ था। हमने दर्शन-केन्द्र पर बाल-सूर्य के लाल रंग का ध्यान किया। ऐसा तेज प्रकाश जागा कि आज तक हमने वैसा रंग नही देखा। उससे जो आनन्दानुभूति हुई वह अनिर्वचनीय है। आज जा रहे है, बडा दु:ख हो रहा है। इसीलिए आखो मे ये आसू आ गए।

सुख के निमित्त : विद्युत् प्रकंपन

जब तक वे प्रयोग से नही गुजरे थे, तब तक उन्हे यह ज्ञात ही नही था कि

ऐसा अनिर्वचनीय सुख भी हो सकता है। आश्चर्य होगा, प्रश्न भी होगा कि न कुछ खाया, न सूघा, न सुना, न देखा और न स्पर्श किया। फिर कैसा सुख ? कहा से मिला ? बहुत बार आदमी भ्रान्ति मे उलझ जाता है। क्या खाने से, सुनने और सूघने से, स्पर्श करने और देखने से सुख मिलता है ? इस भ्रान्ति को तोडें। पदार्थों मे सुख नही है। हमारे भीतर एक विद्युत्-धारा है। वह सुख का निमित्त बनती है। वैज्ञानिक प्रयोगो से यह सिद्ध हो चुका है कि विद्युत् के प्रकपनो के बिना कोई सुख का सवेदन नही हो सकता। जो सुख, इन्द्रिय-विषयो के उपभोग से उपलब्ध किया जाता है, वही सुख इन्द्रिय-विषयो के बिना कल्पना से भी किया जाता है और वही सुख केवल विद्युत् के प्रकपन पैदा करके भी किया जा सकता है। कान के बिन्दु पर या स्वाद के बिन्दु पर इलेक्ट्रोड लगाकर प्रकपन पैदा किए जाए, तो पदार्थ के बिना भी उनके उपभोग की-सी सुख-सवेदना का अनुभव होता है। वस्तु के सयोग से जो प्रतिक्रियाए पैदा होती हैं, वे प्रतिक्रियाए वस्तु के बिना भी विद्युत् के प्रकपनो से पैदा की जा सकती हैं। इसलिए यह तथ्य प्रमाणित हो गया कि सुख का सवेदन विद्युत् प्रकपन-सापेक्ष है।

जब तेजोलेश्या जागती है तब विद्युत् के प्रकपन बहुत बढ जाते हैं, तीव्रतम हो जाते है। प्रेक्षा-ध्यान का अभ्यास करने वाले को इलेक्ट्रोड लगाने की जरूरत नही है। जब वह तेजोलेश्या का ध्यान करता है, बाल सूर्य की रश्मिया साकार होती है, विद्युत् के प्रकपन तीव्र होते हैं तब इतने सुख का अनुभव होता है कि व्यक्ति उसे छोडना नही चाहता। इन्द्रिय विषयो को भोगने के बाद कठिनाइया भी पैदा होती है, कभी शक्तिहीनता का अनुभव होता है और कभी सताप का। नानाप्रकार की प्रतिक्रियाए होती है। किन्तु तैजस शरीर की जो प्रतिक्रियाए है, बायोइलेक्ट्रीसिटी के द्वारा जो प्रकपन पैदा होते है, वे केवल सुखद होते हैं। वे अपने पीछे दुःखद परिणाम नही छोडते। जिस व्यक्ति ने इस सचाई का अनुभव नही किया वह इसकी कल्पना भी नही कर सकता कि पदार्थो को भोगे बिना भी अपूर्व सुख का अनुभव हो सकता है।

जब पद्म-लेश्या के स्पदन जागते हैं, पीले रग के परमाणुओ के प्रकपन पैदा होते हैं तब व्यक्ति को अनिर्वचनीय निर्मलता प्राप्त होती है। उसमे प्रज्ञा की निर्मलता, बुद्धि की निर्मलता और ज्ञान-ततुओ की निर्मलता इतनी तीव्र होती है कि वह हजारो ग्रन्थो के अध्ययन से भी उपलब्ध नहीं होती। गहराई मे जाने की ऐसी दृष्टि मिल जाती है कि आदमी समस्या को तत्काल सुलझाने मे सक्षम हो जाता है।

समस्या सुलझाने का प्रयोग

समस्या को सुलझाने का एक छोटा-सा प्रयोग करें। जब कभी समस्या आए,

शान्त होकर कायोत्सर्ग मुद्रा मे बैठें। श्वास शांत, शरीर शात, मासपेशिया शिथिल, पूरा कायोत्सर्ग। दस मिनिट तक करें। मस्तिष्क मे पीले रग का ध्यान करें, पद्मलेश्या का ध्यान करें। अथवा दस मिनिट तक आखें बद कर आंखो पर पीले रग का ध्यान करें। अथवा दस मिनिट तक आनन्द केन्द्र मे अरुण रग का ध्यान करें। ऐसा लगेगा कि समस्या बिना सुलझाए सुलझ रही है। समाधान स्वत. कही से उतर कर सामने आ गया है।

शुक्ल लेश्या—

जब शुक्ल लेश्या के प्रकपन तीव्र होते हैं तब अनिर्वचनीय शाति प्राप्त होती है। ऐसी शाति उतरती है कि मन मे कोई संताप शेष नही रहता। सफेद रंग शाति का प्रतीक है। जब आभामडल सफेद परमाणुओ से भर जाता है तब व्यक्ति प्रफुल्लित हो जाता है। मन मे कोई विषाद नही रहता। कार्य का कितना ही भार हो, उसे कुछ लगता ही नही। उसे पर्वत-सी समस्या राई जैसी लगने लगती है।

व्यक्तित्व-रूपान्तरण के घटक

तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या के प्रयोग, उनसे परिष्कृत होने वाला आभामडल और उन आभामडलो मे आने वाले वे परमाणु—ये सारे हमारे व्यक्तित्व को नया निखार और नया रूप दे देते हैं।

लेश्या-ध्यान एक कसौटी है। सामाजिक जीवन मे ध्यान करने वाले व्यक्ति की कसौटी होती है उसका व्यवहार और उसका चरित्र। ध्यान करता चला जाए और व्यवहार न बदले, चरित्र न बदले तो मानना चाहिए कि उसका ध्यान भी एक नशामात्र है। कोरा आनन्द मिलना, कोरी शाति मिलनी या तृप्ति मिलनी—यह ध्यान की परिपूर्णता नही है। ये तो प्रारभिक बातें हैं। ध्यान की व्यावहारिक कसौटी होगी कि ध्यान करने वाले का जीवन बदले, उसका व्यवहार और चरित्र बदले। यदि यह होता है तो समझना चाहिए कि व्यक्ति को ध्यान उपलब्ध हो गया। ध्यान करने वाले व्यक्ति की आंतरिक कसौटी है—आभामडल का परिष्कार। जिसका आभामंडल निर्मल हो गया, लेश्याए विशुद्ध हो गई, भाव-धारा शुद्ध हो गई तो समझा जा सकता है कि व्यक्ति ध्यान करता है। इसीलिए प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति मे एक कसौटी के रूप मे और आने वाले अवरोधों को समाप्त करने के लिए लेश्या-ध्यान का बहुत बडा महत्त्व है।

१०. चैतन्य का अनुभव

साम्यं स्वास्थ्य समाधिश्च, योगश्चेतोनिरोधनम् ।
शुद्धोपयोग इत्येते, भवन्त्येकार्थ वाचकाः ।।

अध्यात्म की दो पद्धतिया—

१. आज्ञा-विचय—विचारध्यान

- पहले आगम द्वारा अपने आप मे आत्म-सस्कार को आरोपित करें। उस सस्कारित आत्मा मे एकाग्रता कर कुछ भी चितन न करें।
- मानसिक प्रक्षेपण की पद्धति ।

२. निर्विचार ध्यान ।

३. रेचन—एकमात्र उपाय ।

४. खाली करने की कला ।

५. निर्विकल्प चेतना के आलंबन—
क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव ।

६. रोग का कारण कुपथ्य ही नही, विचार और आचार भी ।

७. निर्विचार की निष्पत्तियां ।

दस

प्रेक्षा-ध्यान : अप्रयत्न का प्रयत्न

प्रेक्षा-ध्यान का प्रयत्न अप्रयत्न का प्रयत्न है, अनायास का आयास है। यह क्यो ?

यह प्रश्न सहज है। प्रेक्षा-ध्यान में श्वास की प्रेक्षा करते हैं, शरीर और चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा करते हैं, रंगो का ध्यान करते हैं—यह सब क्यो ? श्वास भी नश्वर है, शरीर भी नश्वर है, चैतन्य-केन्द्र भी नश्वर हैं और ये सारे रग भी नश्वर हैं। क्या इन नश्वर तत्त्वों की उपलब्धि के लिए ही इतना वडा समारंभ, इतना वडा प्रयत्न और इतना वढ़ा आयास किया जा रहा है ? इतना समय और शक्ति का दान क्या इन्हीं की उपलब्धि के लिए दिया जा रहा है ? यह तो वैसा ही एक तुच्छ प्रयत्न होगा, जैसे पहाड़ को खोदा और निकली एक चुहिया। यह आयास बुद्धि-सगत नही लगता।

प्रेक्षा-ध्यान एक प्रयत्न है, समारंभ है, आयास है। किन्तु यह अप्रयत्न के लिए प्रयत्न है, अनायास के लिए आयास है, सहज के लिए थोड़ा असहज भी है। हमारा ध्येय है अनाकार तक पहुंचना। विज्ञान नही मानता कि इस दुनिया मे कोई भी पदार्थ अनाकार है। हमारा उद्देश्य है चेतना तक पहुचना। चेतना को सब स्वीकार करते हैं। कोई भी दर्शन ऐसा नहीं है जो चेतन-तत्त्व को स्वीकार न करता हो। इस स्वीकृति मे मतभेद अवश्य है। कुछ मानते हैं कि चेतन तत्त्व है, पर जब तक यह जीवन है तव तक चेतन का अस्तित्व है, जीवन समाप्त चेतन भी समाप्त। यदि जीवन के साथ-साथ चेतन भी समाप्त होने वाला है तो उसके साक्षात्कार के लिए इतना प्रयत्न क्यों ? नश्वरता की दृष्टि से शरीर और चेतन मे अन्तर ही क्या रहा ? शरीर भी एक दिन नष्ट होगा और चेतन भी एक दिन नष्ट हो जाएगा। दोनो मे कोई अंतर नही है। जिन लोगों ने चेतन-तत्त्व के विषय मे यह धारणा वनाकर मान लिया कि श्वास नश्वर है, शरीर नश्वर है, चैतन्य-केन्द्र नश्वर है और रग नश्वर हैं, उन लोगों ने इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को विस्मृत कर दिया कि इन नश्वर

तत्त्वो के पीछे एक अनश्वर तत्त्व भी है। इन सबके नष्ट हो जाने पर भी वह नष्ट नही होता। उसी को जानने के लिए यह महान् प्रयत्न किया जाता है। उसे जानने की भावना ही आत्म-जिज्ञासा है। यह मनुष्य की अनादिकालीन जिज्ञासा है। वह चिरकाल से आत्मा को जानने का प्रयत्न करता रहा है, आत्मा के साक्षात्कार का आयास करता रहा है। आत्म-जिज्ञासा एक बलवती जिज्ञासा है, अदम्य जिज्ञासा है। न जाने आत्मा को नकारने के कितने-कितने प्रयत्न हुए, कितने ग्रन्थ लिखे गए, नास्तिकता का पुरजोर प्रचार किया गया और यह प्रतिपादित किया गया कि जीवन से परे कुछ नही है, फिर भी मनुष्य मे आत्म-ज्ञान की जिज्ञासा, आत्म-साक्षात्कार की भावना कभी विनष्ट नही हुई। उसकी यह प्रबल भावना सदा जलती रही है और आज भी वह प्रज्ज्वलित है।

प्रेक्षा-ध्यान और समाधि का सारा समारंभ उस आत्म-साक्षात्कार के लिए, चेतन तत्त्व की उपलब्धि के लिए और अनश्वर तथा अनाकार की आराधना के लिए है।

प्रश्न है—क्या आत्मा को देखा-जाना जा सकता है? क्या चैतन्य का अनुभव किया जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर वही पा सकता है जो स्वय प्रयोग करता है।

आत्म-साक्षात्कार की दो प्रक्रियाएं

आत्म-साक्षात्कार की दो पद्धतिया हैं। एक है—सविचार-ध्यान और दूसरी है—निर्विचार-ध्यान। ध्यान का अभ्यास करने वाला स्थूल से प्रारंभ करता है और सूक्ष्म तक पहुचता है। प्रारंभ मे ही सूक्ष्म तक कोई पहुच जाए, यह कभी सभव नही है। साधक प्रारभ स्थूल से करेगा और सूक्ष्म तक पहुंच जाएगा। हम आत्मा को मानते है, जानते नही। हम शास्त्रो के आधार पर आत्मा को मानते हैं।

विचार-ध्यान : एक प्रक्रिया

हमे आत्मा का साक्षात्कार करना है। सबसे पहले हमें श्रुत का सहारा लेना होगा। आगम का सहारा लेना होगा। जिन्हें अतीन्द्रिय ज्ञान उपलब्ध हुआ, उन्होंने अपनी अनुभव की वाणी मे जो बताया, उसका सहारा लेना होगा। सबसे पहले साधक अपने आपको इन सस्कारो से भावित करे—'आत्मा' है। वह चैतन्यमय, अनाकार, निर्लेप, शब्दातीत, रूपातीत, गंधातीत, रसातीत और स्पर्शातीत है। वह केवल चैतन्यमय है। सारा चैतन्य ही चैतन्य है। वह एक सूर्य है, ज्योति है, प्रकाशपुज है। वहां कोई अधकार नही है, कोई तमस् नहीं है। इस भावना से साधक अपने मन को भावित करे। वह यह आरोपण करे—मैं अनाकार हू। मैं निरजन हू। मैं पदार्थ और पुद्गल से परे हूं। मैं अमूर्त हूं। मैं चेतनामय, आनन्द-

मय और शक्तिमय हूं। मैं शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श से परे हूं। इस भावना से चित्त को भावित कर साधक अपने स्वरूप का ध्यान करता है। वह प्रारम्भ करता है श्रुत से, विकल्प से, किन्तु आत्म-स्वरूप से चित्त को भावित कर ऐसा करता है। वह स्वरूप मे तन्मय बन जाता है, एकाग्र हो जाता है, विचारों को छोड़ देता है। यह आत्म-साक्षात्कार की, विचार-ध्यान की एक पद्धति है। विचार-ध्यान के द्वारा आत्मा का अनुभव किया जा सकता है। जब तल्लीनता और एकाग्रता बढती है तब जिस स्वरूप की कल्पना की थी वह स्वरूप साक्षात् होने लगता है। द्रष्टा, ध्याता ध्यान मे बैठा है। आभास होता है, जैसे सामने ही आत्मा स्थित है या भीतर वैसी ही आत्मा सक्रिय हो रही है। प्रत्यक्षत साक्षात्कार हो जाता है। इस ध्यान को आज्ञा-विचय-ध्यान कहा जाता है। हमने स्थूल का आलंबन लिया, स्थूल का विचार किया, वह स्थूल हट गया और सूक्ष्म सामने प्रस्तुत हो गया। चित्त सूक्ष्म हुआ, चेतना सूक्ष्म हुई, चेतना की कुशाग्रीयता बढी और तद्‌रूप आत्मा का आभास हो गया। यह एक अतीन्द्रिय तत्त्वो के साथ सपर्क स्थापित करने की पद्धति है, सूक्ष्म तत्त्वो को जानने की एक प्रक्रिया है।

मानसिक प्रक्षेपण

जब सूक्ष्म सत्य जानने होते हैं तब सबसे पहले कायोत्सर्ग करना होता है। शरीर को शिथिल कर, सर्वथा शून्य कर, पूर्ण रिक्त करना होता है। कोई तनाव न रहे। न शरीर का तनाव रहे और न मन का तनाव रहे। कोई अवरोध न रहे। ऐसी स्थिति मे अवस्थित होकर जब सूक्ष्म-तत्त्व का ध्यान किया जाता है तब वह तत्त्व शरीर मे प्रविष्ट होकर सक्रिय बन जाता है। जैसे ही ध्यान सघन होता है, एकाग्रता बढती है तब साधक उस तत्त्व के साथ तन्मय और तद्‌रूप बन जाता है। यह तन्मय बनने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के आधार पर शक्ति और स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है।

शरीर को सर्वथा शून्य बनाकर आरोग्य का ध्यान करते ही समरसी भाव पैदा होता है। उस समय एकरसता और समाधि की स्थिति उपलब्ध होती है और तब वही आरोग्य का परिणमन होने लग जाता है।

कुछेक वैज्ञानिको ने परीक्षण के लिए वनस्पति के साथ तादात्म्य स्थापित किया। उनका तादात्म्य इतना गहरा था कि पौधो मे जो सवेदन होता, वे उसे पकड़ लेते। सवेदन का तार ऐसा जुडा कि पौधों मे जो प्रतिक्रियाए होती वे प्रतिक्रियाए स्वय मे होने लग जाती और जो प्रतिक्रियाए स्वय मे होती वे प्रतिक्रियाए पौधो मे होने लग जाती। यह शून्यीकरण की प्रक्रिया है। इससे आरोपण हो सकता है। यह मनोविज्ञान का विषय है, आत्मा की वस्तुस्थिति नही है। इस पद्धति से आत्मा की सचाई को नही जाना जा सकता। यह आरोपण है। यह एक

मानसिक प्रक्रिया है, मानसिक प्रक्षेपण है। जिस प्रकार की मानसिक कल्पना व्यक्ति करता है, एकाग्रता के कारण वह कल्पना प्रकट होते-होते सामने आ जाएगी। यह मात्र मानसिक प्रक्रिया है। इससे आत्मा का कोई पता नही चल सकता।

जिस व्यक्ति के चित्त मे अपने इष्ट के प्रति श्रद्धा और समर्पण भाव है, ध्यान करते-करते वही इष्ट उसी रूप मे उसके सामने प्रस्तुत हो जाता है। जिस इष्ट का जिस रूप मे ध्यान करेगे, चित्त को एकाग्र करेगे और जब वह एकाग्रता एक निश्चित बिन्दु पर पहुचेगी तब वह प्रतिमूर्ति साकार होकर सामने प्रस्तुत हो जाएगी। मनोविज्ञान की भाषा मे यह मानसिक प्रक्षेपण है। इससे यह पता नही चलता कि हमे अपने इष्ट का साक्षात्कार हुआ है।

बहुत लोग यह कहते हैं—हमे परमात्मा या गुरु का साक्षात्कार हो गया, हमे अमुक देवी या अमुक देवता का साक्षात्कार हो गया। वह उनका साक्षात्कार नही है, वह उन लोगो का ही मानसिक प्रक्षेपण है। हम स्वय मन मे एक कल्पना कर लेते है, एक आकार बना लेते हैं। वह आकार पुष्ट होते-होते एक दिन साकार हो जाता है और कभी-कभी वह हमसे बात भी कर लेता है। वह निर्देश देने और पथ-प्रदर्शन करने भी लग जाता है। यह कुछ देने भी लग जाता है। यह सारा है मानसिक प्रक्षेपण, मानसिक आरोपण। यह हमारे ही मन की प्रतिक्रिया है।

इस पद्धति का आलम्बन इसलिए लिया जाता है कि व्यक्ति मे श्रद्धा और आस्था का निर्माण हो, उसमे सूक्ष्म सत्यो को जानने की तीव्र अभीप्सा जाग जाए। यह स्थूल से सूक्ष्म को जानने की प्रक्रिया है, किन्तु आत्मा जैसे अतिसूक्ष्म या परम-सूक्ष्म को जानने की प्रक्रिया नही है। यह अतिम प्रक्रिया या समाधान नही है।

निर्विचार-ध्यान

आत्म-साक्षात्कार की दूसरी प्रक्रिया है—निर्विचार ध्यान, निर्विचार समाधि। जब समाधि विकल्पशून्य, चिन्तनशून्य होती है, जिसमे केवल चैतन्य का अनुभव मात्र होता है, वह है निर्विचार समाधि। निर्विचार अवस्था मे न चिन्तन होता है, न कल्पना होती है और न स्मृति होती है। न शब्द का आलबन, न रूप का आलबन। पदस्थ ध्यान भी नही, रूपस्थ ध्यान भी नही, पिडस्थ ध्यान भी नही। तीनो ध्यान नही होते। सब छूट जाते हैं। केवल निर्विकल्प और निर्विचार अवस्था, अमन अवस्था होती है। मन समाप्त हो जाता है। उस स्थिति मे शुद्ध चैतन्य का अनुभव होता है। उसी स्थिति मे आत्मा का साक्षात्कार घटित होता है। **से न रूवे, न सद्दे अरूवी सत्ता।** वह न रूप है, न श[illegible] है, अरूपी सत्ता है। आत्मा अपद है। वह पद के द्वारा नही जाना जा सकता—**अपयस्स पय णत्थि।**

शब्दातीत को शब्द से कैसे ?

अनेक लोग आत्मा को जानने के लिए तर्क का प्रयोग करते हैं, बुद्धि का व्यायाम करते हैं। कैसे जानेंगे ? अपद को पद के द्वारा नही जाना जा सकता। जिसका शब्द के साथ कोई सबध ही नही है उसे शब्द के द्वारा कैसे जाना जा सकता है। जो विकल्पातीत है उसे विकल्प के द्वारा नही जाना जा सकता। जो विचारातीत है वह विचारो के द्वारा नही जाना जा सकता। **सव्वे सरा णियट्टंति**—स्वर जाते हैं किन्तु बीच से ही लौट आते हैं। वहा तक पहुच ही नही पाते। **'तक्का जत्थ न विज्जइ'**—तर्क वहा है ही नही। आत्मा की सिद्धि के लिए अनेक तर्क दिए गए हैं। मध्यकाल मे तर्कों का विकास हुआ और तर्कशास्त्र के अनेक ग्रन्थ लिखे गए। उन पडितो ने आत्मा की सिद्धि के लिए प्रबल तर्क दिए। मैं मानता हू कि वे सारे तर्क अनुभवशून्य है। केवल बौद्धिक व्यायाममात्र हैं। वे आत्मा तक नही पहुचाते। आत्मा के खडन मे भी उतने ही तर्क हैं जितने तर्क आत्मा के मडन मे है। खंडन करने वाला भी नही जानता कि आत्मा नही है और मडन करने वाला भी नही जानता कि आत्मा है। वादी और प्रतिवादी—दोनो अनुभवशून्य हैं। दोनो इस ज्ञान से शून्य है। आत्मा को जानता कोई नही। आस्तिक भी नही जानता और नास्तिक भी नही जानता। दोनों केवल मानते हैं।

तर्क से आत्मा के अस्तित्व का खडन भी किया जा सकता है और तर्क से आत्मा का मडन भी किया जा सकता है। तर्क कही नही पहुचाता। वह उलझाता है। यह तर्क का एक खेल है। एक पक्ष आत्मा को सिद्ध कर रहा है। दूसरा पक्ष उसके अस्तित्व को नकार रहा है। किन्तु दोनो नही जानते कि वास्तविकता क्या है ? जब तक हम तर्कातीत, शब्दातीत और विकल्पातीत नही होते तब तक आत्मा को उपलब्ध नही कर सकते। उसको उपलब्ध करने का एकमात्र उपाय है—निर्विकल्प-चेतना का निर्माण। इसे साम्य-चेतना, स्वस्थ-चेतना, समाधि-चेतना, शुद्धोपयोग-चेतना कहा जा सकता है। यही चित्त-निरोध की चेतना है। जिस तत्त्व को चित्त का निरोध करके जानना होता है उसे हम बुद्धि के व्यापार से, चित्त के व्यापार से जानना चाहे, यह कभी सभव नही है। जिस तत्त्व को आखें बन्द कर जानना होता है उसे हम आखें फाड-फाडकर जानना चाहते हैं। जिस तत्त्व को कान बद कर जानना होता है उसे हम शब्दो को सुन-सुनकर जानना चाहते हैं। यह कभी सभव नही है। इन्द्रियातीत चेतना, बुद्धि से परे की चेतना, मनसातीत चेतना होती है तब आत्मा की सीमा मे प्रवेश किया जा सकता है, अन्यथा नही।

रेचन : एकमात्र उपाय

दूसरे शब्दो मे चैतन्य के अनुभव का एकमात्र उपाय है—रेचन, खाली करना। बुद्धि को, चित्त को और मन को पूर्ण खाली करे, समाप्त करें, विलीन करें। इन्द्रियो को खाली करें। खाली करने पर ज्ञात होता है कि यथार्थ क्या है ?

खाली में भगवान होता है

एक सन्यासी एक दूकान पर गया। दुकानदार से पूछा—इस डिब्बे मे क्या है ? दुकानदार ने कहा—आटा है। इसमे क्या है ? दाल है। इसमे क्या है ? घी है। पूछता रहा। दुकानदार बताता रहा। अन्त मे एक डिब्बा बचा। सन्यासी ने पूछा—इसमे क्या है ? उसने कहा—यह खाली है। इसमे कुछ भी नही है। सन्यासी उछल पड़ा, उसने कहा डिब्बे मे कुछ नही। इसका अर्थ है इसमे भगवान् हैं। दुकानदार ने कहा महाराज ! यह खाली है। इसमे भगवान् कैसे ? सन्यासी वोला—जिसमे और कुछ नही होता, खाली होता है, उसमे भगवान् होते हैं।

सन्यासी ने वहुत बड़े सत्य का उद्‌घाटन किया कि जो रिक्त है उसी मे भगवान् का निवास है। रिक्त मन मे, रिक्त चित्त मे और रिक्त इन्द्रियों मे सचमुच भगवान् रहता है, अपना प्रभु होता है, अपनी आत्मा होती है।

लोग भरे हुए का मूल्य समझते हैं, खाली का मूल्य नही समझते। भरा हुआ वहुत सताता है।

नौका नदी पार कर रही थी। अनेक व्यक्ति उसमे थे। भार अधिक हो गया। नौका डगमगाने लगी। नाविक ने कहा—नौका ड्‌ब जाएगी। यदि सबको बचना है तो स्वय को सुरक्षित रखते हुए अपना सारा सामान नदी मे वहा दो। अन्यथा सामान के साथ-साथ प्राण भी जाएंगे। सबने अपने जीवन की सुरक्षा को महत्त्व देते हुए सामान नदी मे डाल दिया। एक वनिए के पास तीन खाली डिब्बे और एक रुपयों से भरा डिब्बा था। उसने खाली डिब्बे पानी मे डाल दिए। नाविक ने कहा—इस वजनी डिब्बे को डाल दो। वनिए ने रुपयो को ऐसे व्यर्थ वहाना उचित नही समझा। वह डिब्बे को साथ ले नदी मे कूद पड़ा। नौका हल्की हो गई। पर वह वनिया उस डिब्बे के भार से दवकर डूव गया। यदि वह खाली डिब्बे के साथ कूदता तो सम्भव है वच जाता, पर भरे हुए डिब्बे ने उसे डुवो दिया।

लोगों का भरे हुए पर अधिक विश्वास है, खाली पर नही। काम मे लगे रहते हैं तो समझते है भरे हुए हैं, समय का उपयोग हो रहा है। जव खाली होते हैं तव समझते हैं, आज तो समय व्यर्थ ही खो रहे हैं। लोग खाली रहना नही जानते और खाली रहने के समय का उपयोग करना भी नही जानते। आदमी खाली कहा रह पाता है। जब उसके पास कोई काम नही होता, तव भी वह खाली

नही है। उसके मन का चक्का इतनी तीव्र गति से घूमता है कि दुनिया की सारी स्मृतिया उस समय उभर आती हैं। मस्तिष्क विचारो से, सकल्प-विकल्पो से भर जाता है। कहा है खाली वह आदमी ? उसका दिमाग भरा ही रहता है।

बहुत बड़ा कवि था—इमरसन। वह घूमने निकला। अकस्मात् वर्षा आ गई। उसके पास अपनी कविताओ की एक पांडुलिपि थी। भीगने के डर से उसने उस पाडुलिपि को एक दुकानदार के पास रख दी। इमरसन चला गया। दुकानदार ने देखा—कुछ पन्ने भरे हुए हैं, कुछ खाली हैं। वह भरे हुए पन्नों मे वस्तुएं लपेट कर ग्राहको को देता रहा। कुछ समय पश्चात् वर्षा रुकी, इमरसन आया पांडुलिपि मागी। दुकानदार ने कहा—'माफ करना, कुछेक भरे पन्नो का मैंने उपयोग कर लिया है। खाली पन्ने ज्यो के त्यो हैं। भरे काम के नही थे। खाली लिखने के काम आ सकते हैं।' यह सुनते ही इमरसन का माथा ठनका। उसकी सद्य. लिखित महत्त्वपूर्ण कविताओ के पन्ने निकल चुके थे। शेष बचे थे केवल कोरे कागज।

अध्यात्म है खाली होने की प्रक्रिया

सभव है इमरसन ने भी ध्यान नही दिया होगा और दुकानदार ने भी ध्यान नही दिया होगा कि व्यवहार की दुनिया मे खाली का मूल्य नही होता, भरे का मूल्य होता है। खाली पन्ने का क्या मूल्य हो सकता है व्यवहार की दुनिया मे और खाली डिब्बे का क्या मूल्य हो सकता है व्यवहार की दुनिया मे ? इसी प्रकार खाली चित्त और खाली मन का भी क्या मूल्य हो सकता है व्यवहार की दुनिया मे ? व्यवहार मे जीने वाले यही चाहते हैं कि ये सब सदा भरे ही रहें, कभी खाली न हो। जब अध्यात्म की यात्रा शुरू होती है तब भरे का क्या मूल्य है और खाली का क्या मूल्य है, स्पष्ट हो जाता है। उस यात्रा मे यह अनुभव होता है कि लिखा हुआ कागज चला गया, अच्छा हुआ। भरा हुआ डिब्बा चला गया तो अच्छा हुआ। भरा हुआ मन, भरी हुई बुद्धि, भरा हुआ चित्त खाली हो गया तो अच्छा हुआ। वहा खाली होना ही श्रेयस्कर माना जाता है। जब खाली होने की प्रक्रिया प्रारभ होती है तब उस क्षण मे जो अनुभव होता है, वही वास्तव मे चैतन्य का अनुभव है। चैतन्य के अनुभव का वही क्षण है जिस क्षण मे हमारा चित्त खाली हो गया होता है। उस क्षण मे न श्वास-प्रेक्षा, न शरीर-प्रेक्षा, न चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा और कोई भी प्रेक्षा की जरूरत नही होती। न रगो का ध्यान, न लेश्या-ध्यान, न केन्द्र-ध्यान, कुछ भी आवश्यक नही होता। फिर लेश्यातीत स्थिति प्राप्त हो जाती है।

इस सदर्भ मे एक प्रश्न आता है कि जिन क्रियाओ की जरूरत नही है, उन्हे हम करते ही क्यो हैं ? जिन्हे छोडना है, उन्हे क्यो करते जा रहे हैं ? प्रश्न स्वाभाविक है। इस ससार का स्वभाव ही ऐसा है कि जिसे छोड़ना होता है, उसे पहले

करना होता है। नदी को पार कर नौका को छोडना पडता है। किन्तु जब तक नदी का किनारा न आ जाए तब तक नौका पर चलना होता है, उसे छोडा नही जा सकता। जब तक निर्विकल्प चेतना न जाग जाए तब तक अध्ययन, पुनरावर्तन, जिज्ञासा, अनुप्रेक्षा—ये सब करने पडते है। विचार ध्यान का अभ्यास करना पडता है। जब विचार ध्यान की सीमा समाप्त होती है और निर्विचार ध्यान की सीमा मे प्रवेश करते है, निर्विचार चेतना मे जाते हैं, केवल आत्म-ध्यान की भूमिका मे जाते है तब अध्ययन, 'अनुप्रेक्षा आदि छूट जाते है। कोई आवश्यकता नही रहती। सब समाप्त हो जाते है। वहां फिर आलबन बनते है—क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव और मार्दव।

निर्विकल्प-चेतना के आलंबन

निर्विकल्प-चेतना का पहला आलबन बनता है—क्षान्ति। इसका अर्थ है—क्रोध-मुक्ति। क्रोध के पर्याय नष्ट होते हैं और क्रोध-मुक्ति की भावना जाग जाती है। वह उस चेतना का आलवन बन जाता है। आत्म ध्यान से क्रोध नष्ट होता है, क्रोध को देखने से क्रोध नष्ट होता है। क्रोध आता है। श्वास रोका, क्रोध नष्ट हो गया। अच्छा विचार उभरा, क्रोध शात हो गया। यह क्रोध का उपशमन है। इसे कुछ लोग दमन भी कहते हैं। दमन और उपशमन एक ही बात है। क्रोध भी एक विकल्प है। दूसरा विकल्प आते ही क्रोध शात हो जाता है। एक विकल्प के द्वारा दूसरे विकल्प को परास्त कर दिया। एक शक्तिशाली हाथी ने दूसरे मदोन्मत्त हाथी को परास्त कर दिया। एक साड ने दूसरे साड पर विजय पा ली। इतना ही हुआ। वह मिटा नही, नष्ट नही हुआ। परास्त होने वाला निमित्त पाकर पुन फुफकार सकता है। उपशान्त किया हुआ क्रोध न जाने कब पुनः सक्रिय होकर सताने लग जाए। विकल्प के द्वारा विकल्प का उपशमन— यह दमन की प्रक्रिया है। यह क्षय की प्रक्रिया नही है। उस विकल्प को क्षीण करने की प्रक्रिया है—निर्विकल्प चेतना का जागरण। निर्विकल्प चेतना जैसे-जैसे पुष्ट होती है, क्रोध का विकल्प अपने आप क्षीण होता जाता है। उपशात नही, क्षीण हो जाता है।

जब निर्विकल्प चेतना शक्तिशाली होती है तब क्षमा स्वय एक आलंबन बन जाती है।

मुक्ति का अर्थ है—निर्लोभता। लोभरहित चेतना एक आलवन बनती है। अनुभव होने लगता है कि चेतना मे लोभ का कोई पर्याय नही है। चेतना स्वय एक आलोक है। लोभ चेतना का एक विकार है, अन्धकार है। उस विकार का साक्षात् होने लगता है। इसी प्रकार कपट की चेतना का साक्षात् होता है, ऋजुता की चेतना जाग जाती है। अहकार के विकल्प का साक्षात् होता है, मृदुता की

चेतना जाग जाती है। साधक को यह स्पष्ट अनुभव होने लगता है कि क्रोध चेतना का स्वभाव नही है, अहकार और लोभ चेतना का स्वभाव नही है। माया और कपट चेतना का स्वभाव नही है। चेतना का स्वभाव है—क्षमा, ऋजुता, मृदुता, लघुता आदि। ये ही निर्विकल्प चेतना के आलबन बनते हैं। इस चेतना के जागने पर सारे ग्रन्थ छूट जाते है, स्वाध्याय और अनुप्रेक्षाए छूट जाती है। उनके केवल सूक्ष्म पर्याय बचते है, स्थूल पर्याय छूट जाते है। जब क्षमा, ऋजुता, मृदुता आदि चेतनाओ का साक्षात्कार होता है तब उनके नीचे छिपी हुई सूक्ष्म चेतना का भी साक्षात्कार होने लगता है। चित्त निर्मल होता है, स्वस्थ बनता है। अस्वस्थ चित्त से क्या-क्या नही हो जाता।

विचार और आचार भी रोग के कारण

आत्रेय आयुर्वेद के महान् आचार्य थे। अग्निवेश ने उनसे पूछा—'भगवन्! आपने कहा है कि रोगो का कारण है कुपथ्य। किन्तु कभी-कभी एक साथ इतने रोग फैलते हैं कि सारे गाव, नगर और पूरा जनपद ही नष्ट हो जाता है। क्या सबने एक साथ कुपथ्य कर लिया कि सबको एक साथ मरना पडा?'

आत्रेय ने कहा—'वत्स! केवल कुपथ्य ही रोगो का कारण नही है। मनुष्यों के विचार और आचरण भी रोगो के कारण बनते हैं। जब एक साथ कोई बुरा विचार फैलता है तब महामारी की स्थिति बन जाती है। जब एक साथ कोई बुरा आचरण होता है तब भयकर बीमारी से सारा जनपद आक्रान्त हो जाता है। जब तक बुरा विचार और बुरा आचरण नही छूटता, तब तक बीमारी से छुटकारा नही मिलता, लोगो का स्वास्थ्य नही बनता।'

रोग का कारण केवल भोजन ही नही है, विचार और आचार भी उसके मुख्य कारण हैं। स्वास्थ्य की कामना करने वाले व्यक्ति को आहार से अधिक ध्यान विचार और आचार पर केन्द्रित करना पडता है। जब निर्विकल्प चेतना जागती है तब पता चलता है कि वास्तव मे स्वास्थ्य क्या है? आज समाज के स्तर पर विषमता मिटाने और समता की स्थापना करने के अनेक प्रयत्न चलते हैं, किन्तु यथार्थ मे समता क्या है, विषमता क्या है इसका ज्ञान निर्विकल्प चेतना के जागने पर ही हो सकता है। निर्विकल्प चेतना का क्षण वास्तव मे साधना की परम उपलब्धि का क्षण है।

निर्विचार का ससार : निष्पत्तियां

हमारे सारे प्रयत्न आरभिक हैं। हम अभी यह न मानें कि रगो का स्पन्दन या श्वास के स्पन्दन पकड़ मे आ गए, चैतन्य-केन्द्र और शरीर के स्पन्दन पकड मे आ गए, हम ध्यान मे सफल हो गए। यह तो अध्यात्म-यात्रा का प्रथम पडाव है।

हमे यहां रुकना नही है। बहुत आगे जाना है। गन्तव्य दूर है। हमे चलते रहना है। इस कपन और स्पन्दन वाले शरीर मे, इन्द्रिय-चेतना, मनस्थ चेतना और चित्त की चेतना वाले शरीर मे एक ऐसा तत्त्व भी है जो इन स्पन्दनो से परे है, इन चेतनाओ से परे है। उसका साक्षात्कार हमे इष्ट है। जितने क्षण हम निर्विकल्प चेतना मे रहेगे, जितने क्षण हम शून्य मे रहेगे, उन क्षणो मे आत्म-साक्षात्कार होगा। आत्म-साक्षात्कार की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है—निर्विकल्प चेतना का निर्माण।

अध्यात्म जगत् की यह एक महत्त्वपूर्ण देन है। भौतिक और व्यावहारिक जगत् मे इसका कोई मूल्य नही है। इस सीमा पर पहुचकर ही हम भौतिक जगत् और अध्यात्म जगत् के अन्तर को समझ सकते है।

अव्यथ चेतना

जिस दुनिया मे निर्विचार और निर्विकल्प का महत्त्व है, सचमुच वह कोई दूसरे प्रकार की दुनिया है। यह काल्पनिक बात नही है। यह यथार्थ है। जब यह चेतना जागती है तब सारी असमाधिया दूर हो जाती हैं। सबसे पहला सुफल होता है—अव्यथ चेतना की जागृति। निर्विकल्प चेतना मे जीने वाला व्यक्ति निर्व्यथ जीवन जीता है। उसकी चेतना मे व्यथा नही होती। उसके सामने कितना ही प्रतिकूल वातावरण उपस्थित हो, भयकर परिस्थितिया और समस्याए हो, वह कभी व्यथित नही होता। उसका चित्त सदा अव्यथ रहता है। वह घटना को जानता है, पर व्यथित नही होता। उस पर घटना का कोई असर नही होता। जैसे सोये हुए व्यक्ति के सामने घटने वाली घटना का उस पर कोई असर नही होता वैसे ही निर्विकल्प चेतना मे जीने वाले व्यक्ति पर घटनाओ का कोई असर नही होता। कोई भी घटना उसे क्षुब्ध नही कर पाती। वह घटना को जान लेता है, भोगता नही। वह केवल ज्ञाता रहता है, भोक्ता नही।

अमूढ चेतना

दूसरा सुफल यह होता है कि चेतना असम्मोह स्थिति मे चली जाती है। उसमे फिर मूढता पैदा नही होती। इस दुनिया मे मूढता पैदा करने वाले अनेक तत्त्व हैं। वह एक शब्द सुनता है, एक रूप देखता है और सम्मोहित हो जाता है। उसकी चेतना समूढ बन जाती है। एक विचार सामने आता है और समूढ बन जाता है। पग-पग पर समूढता के कारण बिखरे पडे हैं। वह इनमे फस जाता है। सारे सम्मोहन विकल्प चेतना मे जागते रहते है। विकल्प उभरता है। साथ-साथ मूढता उभरती है। निर्विकल्प चेतना के उपलब्ध होने पर चित्त मूढ नही बनता, सम्मोहन समाप्त हो जाते हैं।

पग-पग पर मूढता है

वह अभी-अभी संन्यासी बना था। एक तालाब के पास सो रहा था। कुछ स्त्रियां पानी लेने तालाब पर आई। उन्होंने संन्यासी को देखा। एक स्त्री बोली—देखो, सन्यासी हो गया तो क्या? अभी सिरहाने का मोह नही छूटा। कपड़े का तकिया नही मिला तो ईंट का तकिया बना दिया।

सन्यासी के कानो मे ये शब्द पडे। वह उन शब्दो से समूढ़ हो गया। उसने तत्काल सिर के नीचे दी हुई ईंट निकाल दी। स्त्रियों ने यह देखा। एक स्त्री बोली—'अच्छे संन्यासी बने! थोड़ी-सी बात कही और डर गए। उन शब्दो के प्रभाव मे आ गए। महाराज! आपने सन्यास ले लिया। घर-बार छोड दिया, पर लगता है अभी तक आपने चित्त नही छोड़ा। हम तो गृहस्थ है। यो ही कहते रहेगे। हमारे कहे-कहे आप करते रहेगे तो सन्यास का पालन ही नही कर पाएगे। आप कभी ईंट निकालेंगे और कभी रखेंगे।'

कितनी मार्मिक है कथा! कोई व्यक्ति पग-पग पर मूढ बनता है तो दुनिया उसको टिकने नही देती। यह दुनिया अच्छे कार्य की भी आलोचना करती है और बुरे कार्य की भी आलोचना करती है। यदि कोई व्यक्ति शब्दो और विचारो के आधार पर समूढ होता है तो उसे जीने का अधिकार ही प्राप्त नही होता। निर्विकल्प चेतना मे समूढ होने की स्थिति समाप्त हो जाती है।

विवेक-चेतना

तीसरा सुफल यह होता है कि उससे विवेक-चेतना जाग जाती है। विवेक-चेतना के जागने पर साधक मे पार्थक्य-शक्ति विकसित हो जाती है। वह जान जाता है कि यह छाछ है और यह मक्खन। यह खली है और यह तेल। यह शरीर है और यह आत्मा। यह अचेतन है और यह चेतन। यह अशाश्वत है और यह शाश्वत। आत्मा और पुद्गल का स्पष्ट भेद उसे साक्षात् हो जाता है। यह विवेक चेतना बहुत बडी उपलब्धि है।

व्युत्सर्ग-चेतना

चौथा सुफल यह होता है कि जब विवेक-चेतना पुष्ट होती है तब व्युत्सर्ग की क्षमता बढती है, त्याग और विसर्जन की शक्ति का विकास होता है। फिर छोड़ने मे सकोच नही होता, चाहे शरीर को छोडना पड़े, इन्द्रिय-विषयों को छोडना पड़े, परिवार या धन को छोडना पड़े। उसमे छोड़ने की इतनी क्षमता बढ जाती है कि वह जब चाहे तब किसी को भी छोड सकता है। कोई मोह नही रहता।

व्युत्सर्ग की चेतना जागने पर साधक को स्पष्ट अनुभव हो जाता है कि मैं

चैतन्यमय हू। यही मेरा अस्तित्व है। चैतन्य के अतिरिक्त जितना भी जुडा हुआ है वह विजातीय है, मेरा नही है। वह रहे या न रहे इससे मुझे क्या ? समय पर सवको छोड दूगा। व्युत्सर्ग-चेतना से त्याग की शक्ति प्रवल होती है।

समाधि-यात्रा और निष्पत्ति

समाधि का पहला विन्दु है—केवल ज्ञान और केवल दर्शन—केवल जानना और केवल देखना। इस विन्दु से हम समाधि की साधना प्रारभ करते हैं। दूसरे शव्दो मे, समाधि की यात्रा सवेदनशून्य ज्ञान और सवेदनशून्य दर्शन से होती है। हम प्रयत्न करते हैं कि हमारे कुछ क्षण ऐसे बीतें जिनमे हम केवल जानें, केवल देखें, कोई सवेदन साथ मे न जुडे। प्रियता और अप्रियता, राग और द्वेष—कोई विकल्प न रहे। यहा से समाधि की यात्रा शुरू होती है और वह आगे बढ़ती-बढती निर्विकल्प चेतना तक पहुच जाती है। यहा पहुचने पर विचारो के विकल्प, पदार्थों के विकल्प, सव विकल्प शात हो जाते हैं। मन का समुद्र शात हो जाता है। उसमे विकल्प की कोई तरग नही उठती। जिस चेतना मे विकल्प की हल्की-सी तरग भी नही उठती, वह है—निर्विकल्प चेतना। उस स्थिति तक पहुच जाना ही हमारी साधना का उद्देश्य है। यही हमारा गन्तव्य है, यही हमारी मजिल है। जैसे-जैसे चेतना का विकास होगा, जैसे-जैसे विकल्पो को कम करते हुए निर्विकल्प चेतना के क्षणो मे जीने का अभ्यास होगा, वैसे-वैसे वह चेतना पुष्ट होगी और चेतना का वह अनन्त सागर एक दिन निस्तरग और ऊर्मिविहीन वन जाएगा। उस स्थिति मे, उस परम सत्य का साक्षात्कार होगा जिसके लिए हजारो-हजारो लोग सदा उत्सुक रहते हैं।

आत्मा का साक्षात्कार कैसे हो ? परमात्मा का साक्षात्कार कैसे हो ? परम सत्य का साक्षात्कार कैसे हो ?—ये प्रश्न किसी शाव्दिक उत्तर के द्वारा समाहित नही होगे। ये प्रश्न शव्दातीत चेतना के जागने पर ही समाहित हो सकेंगे।

अप्पाणं सरणं गच्छामि

शिविर ४

अणुव्रत विहार, नई दिल्ली
१५-५-७६ से २०-५-७६

११ : समस्या के मूल की खोज

१. समस्या के मूल की खोज।

२. मूल है—मनोबल की दुर्बलता।

३. मनुष्य परिस्थिति को झेलने मे असमर्थ होता है तब टूट जाता है।

४. अनुप्रेक्षा है आच, टॉनिक।

- कल्पना जगत् से निकल यथार्थ के जगत् मे।
- स्वतन्त्रता।
- अपनी शक्तियो के प्रति जागरूकता।

५. समस्या क्या है?

- शरीरशास्त्र और मन शास्त्र की भाषा मे—तनाव।
- कर्मशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र की भाषा मे—कर्म-विपाक।
- समाजशास्त्र की भाषा मे परिस्थिति और वातावरण।
- अर्थशास्त्र की भाषा मे—उत्पादन कम, खपत अधिक, आय कम, आवश्यकता अधिक।

६. बहुमुखी जीवन—बहुमुखी समस्याएं।

ग्यारह

मूल की खोज

एक भाई ने मेरे पास आकर कहा—'मन को शान्त करना चाहता हू। मन बहुत अशान्त है।' मैंने पूछा—क्या हुआ ?" उसने कहा—'अभी-अभी मेरी पत्नी का देहावसान हो गया। उसका वियोग मेरे मन मे खटक रहा है। मन को समझाता हूं पर वह मानता ही नहीं।'

यह शिकायत एक की नही, सवकी है कि हम मन को समझाते हैं, पर वह मानता ही नही। मनुष्य ने इस सूत्र को पकड़ लिया कि मन मानता ही नहीं, समस्या कैसे सुलझे ! यह वहुत वड़ा वहाना है। जो मानता है उसे हम मनवाना नही चाहते, और जो वेचारा नही मानता उसे हम मनवाना चाहते हैं। जिसे मनवाना चाहिए उस ओर हम ध्यान नही देते। यही हमारी सवसे बडी समस्या है। जब तक हम समस्या का मूल नही खोज लेते तव तक समस्या का समाधान नही हो सकता। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि समस्या मिटे, दु ख मिटे, सुख आए, सुलझाव आए। चाहता है, पर केवल चाह से कुछ भी नही मिल सकता। मनुष्य अनन्तकाल तक चाह करता रहे पर वह चाह कभी पूरी नही होती। जब तक चाह की पूर्ति के लिए कोई प्रयत्न नही किया जाता तव तक चाह से कुछ नही बनता। चाह के अनुरूप मार्ग की खोज होनी चाहिए। सवसे पहले यह खोज होनी चाहिए कि समस्या का मूल क्या है ? जव तक समस्या का मूल नही खोजा जाता तब तक समस्या का अंत नही हो सकता। एक समस्या को सुलझाते हैं तो दूसरी समस्या सामने आ खड़ी हो जाती है, क्योकि मूल विद्यमान है। जव तक मूल (जड) हरा-भरा है तो वसन्त भी आएगा और पतझड़ भी आएगा। इनको रोका नही जा सकता। नये पत्ते आते रहेंगे, पुराने पत्ते गिरते रहेगे, उनका अन्त कभी नही होगा, क्योकि जड़ हरी-भरी है। मूल बात है जड़ की, पत्ते की नही है। हम पत्ते का समाधान चाहते हैं। यह समाधान होता नही। समाधान के लिए जड़ तक पहुचना जरूरी है।

समस्या का मूल है—मनोबल की दुर्बलता

आज की समस्या का मूल है—चित्त की दुर्बलता, मनोबल की कमी। जब मन की शक्ति कम होती है तब समस्याएं भयकर बनती चली जाती हैं। जब मन की शक्ति दृढ होती है तब समस्याए आती हैं पर लगता है कि कोई समस्या ही नही है। बहुत बडी समस्या भी छोटी हो जाती है। जब मन का बल टूट जाता है तब राई पहाड बन जाती है। समस्या को बड़ा-छोटा नही कहा जा सकता। कोई भी समस्या स्वय मे बडी नही है और कोई भी समस्या स्वय मे छोटी नही है। मनोबल अटूट है तो प्रत्येक समस्या छोटी है। मनोबल टूटा हुआ है तो प्रत्येक समस्या बडी है। समस्या का छोटा होना या बडा होना, भयकर होना या सरल होना इस बात पर निर्भर है कि मनोबल कम है या अधिक। आदमी समस्या पर ध्यान अधिक केन्द्रित करता है, समस्या को सुलझाने का अधिक प्रयत्न करता है। जैसे-जैसे वह सुलझाने का प्रयत्न करता है, वैसे-वैसे समस्या उलझती जाती है और इसलिए उलझती जाती है कि समस्या को सुलझाने की जो शक्ति है—इच्छा-शक्ति, एकाग्रता की शक्ति या सकल्प-शक्ति—वह वहा नही है। व्यक्ति न इच्छा-शक्ति को जगाने का अभ्यास करता है, न एकाग्रता को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और न सकल्प-शक्ति को जगाने का प्रयत्न करता है। जब यह नही होता, भीतर से शक्ति का जागरण नही होता तब मनोबल नही बढता और मनोबल के अभाव मे समस्या का समाधान हो सके, यह संभव नही हो सकता। समस्या के समाधान के लिए शक्ति का सचय जरूरी है। जितनी शक्ति है उतनी यदि खर्च हो जाती है तो समस्या का समाधान नही हो सकता।

शक्ति का सचय

पत्नी पढी-लिखी थी। उसने पति से कहा—अब आय-व्यय का हिसाब मैं रखा करूगी। उसने एक कॉपी ली। एक ओर आय का विभाग, एक ओर व्यय का विभाग। महीना पूरा हुआ। आय के विभाग मे लिखा था—हजार रूपयो की आय। व्यय के विभाग मे लिखा था—सब खर्च हो गए।

जितनी शक्ति का अर्जन होता है, उतनी शक्ति का खर्च हो जाए तो कोई अतिरिक्त कार्य नहीं किया जा सकता। अतिरिक्त कार्य के लिए सचय आवश्यक होता है। शरीर मे शक्ति की जितनी आय होती है, यदि वह सारी खर्च हो जाती है तो केवल जीवन जीया जा सकता है, कोई अतिरिक्त कार्य नही किया जा सकता। अतिरिक्त कार्य या विकास के लिए शक्ति का सचय अपेक्षित होता है। यह शक्ति-सचय तभी सभव है जब हम तनाव-विसर्जन की प्रक्रिया को जानें। जो व्यक्ति इस तनाव-विसर्जन की प्रक्रिया को नहीं जानता वह शक्ति का अतिरिक्त

सचय नही कर पाता। जो शक्ति अर्जित होती है वह विसर्जित हो जाती है। शक्ति पैदा होती है पर तनाव उस शक्ति को क्षीण कर देता है। तब मनुष्य कोई बड़ा काम नही कर सकता। उसके पास बड़ा काम सपन्न करने की शक्ति ही नहीं बचती। मनुष्य और पशु मे यही तो अन्तर है कि पशु शक्ति का संचय नहीं कर सकता। शारीरिक शक्ति को भले ही वह कुछ सचित कर ले, पर मस्तिष्कीय शक्ति का सचय वह कर ही नही सकता। क्योकि वह शक्ति-सचय की प्रक्रिया से अनभिज्ञ है। मनुष्य शक्ति-संचय की प्रक्रिया को जानता है। मनुष्य मे चिन्तन की यह विशेषता है कि वह शक्ति के सचरण और सचय की पद्धति को जानता है।

शक्ति-जागरण का सूत्र

हमारे शरीर मे एक तरल पदार्थ है जो मस्तिष्क से लेकर पूरे पृष्ठरज्जु तक फैला हुआ है। उसे 'सेरिगो स्पाइनल फ्लूइड' कहते है। इसका रग भूरा है। यह शक्ति सचरण का माध्यम है। इसके माध्यम से मस्तिष्क से लेकर पूरे पृष्ठरज्जु तक शक्ति का संचार और विशिष्ट शक्तियो का जागरण होता है। यदि यह तरल पदार्थ न हो तो कोई बौद्धिक विकास या आध्यात्मिक विकास नहीं हो सकता, अतिरिक्त विकास सभव नही बन सकता। यह भूरे रग का तरल पदार्थ बहुत शक्तिशाली पदार्थ है। आयुर्वेद मे इसे मज्जा कहा जाता है। इसमे अद्भुत शक्तिया भरी पड़ी हैं। यदि इसे प्रभावित किया जा सके, इस पर ध्यान केन्द्रित किया जा सके तो न केवल बौद्धिक विकास ही किया जा सकता है, अपितु अतीन्द्रिय चेतना का जागरण भी किया जा सकता है। इसके माध्यम से मन की सूक्ष्मतम शक्तियो को खोला जा सकता है, शक्ति को बढ़ाया जा सकता है।

समस्या एक : मूल अनेक

आज सबसे बड़ी समस्या है—मन की दुर्बलता। मन इतना जल्दी टूट जाता है कि वह किसी भी परिस्थिति को झेल नही पाता। दो वाद है। एक है परिस्थितिवाद और दूसरा है चैतन्यवाद। समाजशास्त्री सारी समस्याओ का समाधान परिस्थिति मे खोजते हैं। समाजशास्त्रीय भाषा मे समस्या है—परिस्थिति। जब परिस्थिति उलझ जाती है तब वह समस्या बन जाती है। जब परिस्थिति सुलझ जाती है तब समस्या सुलझ जाती है। समाजशास्त्र समस्या का पूरा दायित्व परिस्थिति पर डालता है। इस प्रकार सारी समस्याओ के लिए परिस्थिति उत्तरदायी है।

मानसशास्त्री मानता है कि समस्या का मूल है तनाव। वह सारी समस्याओं के लिए तनाव को उत्तरदायी मानता है। फिजिकल टेन्सन—शारीरिक तनाव

और मेन्टल टेन्सन—मानसिक तनाव—ये समस्या को पैदा करते हैं। शरीर मे दर्द तब होता है जब वह तनावग्रस्त होता है। जब शरीर के स्नायु-सस्थान मे तनाव भर जाता है तब दर्द होता है, पीड़ा होती है। जब तनाव जम जाता है तब वह हमारे ऊर्जा-क्षेत्र को प्रभावित और क्षतिग्रस्त करता है।

चैतन्यवादी, अध्यात्मशास्त्री या कर्मशास्त्री समस्या के लिए उत्तरदायी मानता है—कर्म के विपाक को, सस्कारो को। कर्म का विपाक होता है, सस्कार जागते हैं तब समस्याएं पैदा होती हैं।

समस्या के प्रति ये अलग-अलग दृष्टिकोण है। तनाव भी उनमे एक मुख्य दृष्टिकोण है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से आय कम और व्यय अधिक होता है तब एक प्रकार का तनाव पैदा हो जाता है, जिससे समस्या पैदा होती है। तनाव की जितनी भाषाए है, व्याख्याएं है या जितने दायित्वपूर्ण दृष्टिकोण है वे परस्पर विरोधी नही है, किन्तु वास्तविक है, सापेक्ष है। क्या जीविका एक समस्या नही है? क्या उससे तनाव पैदा नही होता? एक आदमी नौकरी पर है। सुख से जीवन-यापन कर रहा है। अचानक उसकी नौकरी छूट जाती है। क्या वह तनाव से ग्रस्त नही होगा? अवश्य ही वह तनाव से भर जाएगा। उसका सारा सुख एक सपना बन जाएगा। छूटी केवल नौकरी और वह घटना उसके मनोबल को मिटाने के लिए पर्याप्त है। वह व्यक्ति चिन्ता, विषाद और पीडा से आक्रान्त हो जाएगा। कल क्या होगा? बच्चे कैसे पढेंगे? किराया कैसे देगे? आदि-आदि चिन्ताओ से वह ग्रस्त हो जाएगा। क्या अर्थ का अभाव तनाव पैदा नही करता? क्या परिस्थिति तनाव पैदा नही करती? जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे एक प्रकार की परिस्थिति निर्मित होती है और व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है। परिस्थिति व्यक्ति को बहुत प्रभावित करती है।

एक व्यक्ति रेल मे यात्रा कर रहा था। अचानक चार-पाच आदमी आए और बोले—देखो, यह चाकू है। जो कुछ तुम्हारे पास धन है वह दे दो, अन्यथा चाकू की तेज धार तुम्हारी छाती के आर-पार पहुच जाएगी। अनचाहे एक परिस्थिति पैदा हो गई। अब वह क्या करे? एक ओर धन का मोह है, दूसरी ओर प्राणो का मोह है। दोनो ओर मोह है। आदमी परिस्थिति मे उलझ जाता है।

परिस्थिति कुछ भी नही है, यह नही कहा जा सकता। परिस्थिति का प्रभाव क्या होता है, वह उस व्यक्ति से पूछो जो उसका सामना कर रहा है, जो उसमे उलझा हुआ है। परिस्थिति कुछ भी नही है, यह वही व्यक्ति कह सकता है जिसने परिस्थिति को भोगा नही है। जिसने परिस्थितियो को भोगा है, सामना किया है, देखा है, वह परिस्थिति का मूल्य जानता है। परिस्थिति के कारण व्यक्ति क्या होता है और क्या बन जाता है। उसका सारा व्यक्तित्व ही बदल जाता है। परिस्थिति का अपना मूल्य है। यह एक सचाई है।

शरीर का तनाव भी एक सचाई है। जब शरीर मे कोई तनाव पैदा होता है तब वह भाग अकड़ जाता है। उसमे ऐंठन पैदा हो जाती है। वह पीड़ा और दर्द करने लगता है।

रसायन और विद्युत्प्रवाह

शरीर मे दो तत्त्व अधिक सक्रिय रहते हैं। एक है रसायन और दूसरा है विद्युत्। शरीर का अपना फिजिक्स है, उसका अपना तन्त्र है। विद्युत् का अपना कार्य है। दोनो कार्य करते है। शरीर के रसायन ठीक होते है तो शरीर स्वस्थ ढग से काम करता है और यदि ये रसायन बिगड जाते है तो शरीर अस्वस्थ बन जाता है। कुछ लोग कहते है कि जब सोते हैं तब शरीर स्वस्थ-सा प्रतीत होता है, उठते हैं तब निष्प्राण और शिथिल-सा लगता है। कुछ लोग कहते है कि सोते है तब शरीर ढीला लगता है, अस्वस्थ लगता है, पर उठते हैं तब उसमे ताजगी आ जाती है और बिल्कुल स्वस्थ लगता है। सुबह स्वस्थ, शाम को अस्वस्थ, शाम को अस्वस्थ और सुबह स्वस्थ। ऐसा क्यो ? यह इसीलिए होता है कि या तो शरीर के विद्युत् का सन्तुलन बिगड जाता है या शरीर के रसायन बदल जाते हैं। जब-जब ये रसायन बदलते है, जब-जब विद्युत् की धारा का सन्तुलन बिगडता है, तब-तब शरीर मे परिवर्तन आता रहता है। एक आदमी को २४ घंटो मे एक जैसा नही पाया जा सकता, न मानसिक दृष्टि से और न शारीरिक दृष्टि से।

बड़ा गिरगिट है आदमी

आदमी सूर्योदय के साथ अपना दिन प्रारम्भ करता है और सूर्यास्त के साथ उसे पूरा करता है। वह सूर्यास्त के साथ रात्रि का प्रारम्भ करता है और सूर्योदय के साथ उसे पूरा करता है। सूर्य की साक्षी से वह दिन बिताता है और सूर्य के अभाव मे रात्रि बिताता है। कोई भी व्यक्ति यह दावा नही कर सकता कि वह इस पूरे समय मे एक-सा रहा हो। यदि कोई दावा करता है तो वह झूठा होगा। इस अवधि मे मानसिक-तन्त्र और शारीरिक-तन्त्र मे उतार-चढ़ाव आते हैं। मन और तन एक-सा नही रहता। कितना बदलता है। चेतन जितना बदलता है उतना जड नहीं बदलता। जड मे भी परिवर्तन आता है। सूक्ष्म जगत् मे सब कुछ बदलता है, किन्तु स्थूल जगत् मे आदमी का तन और मन जितना बदलता हैं उतना जड पदार्थ नही बदलता। आदमी इतने रंग बदलता है कि शायद गिरगिट भी इतने रग नही बदलता। गिरगिट के पास उतने रग है ही नही। आदमी बहुत बड़ा गिरगिट है। एक घटे मे कितने मनोभाव बदल जाते हैं। कभी उसमे राग भाव जागता है, कभी द्वेष का। कभी वह क्रूर बनता है तो कभी करुणा से भर है। कभी उसमे हास्य का भाव जागता है तो कभी रुदन का भाव जागता

है। इन सब भावों को यदि फिल्माया जाए तो बहुत बडी फिल्म हो सकती है। इसके लिए हाई फ्रीक्वेन्सी का केमरा आवश्यक होगा। एक घटे मे हजारो-लाखो भाव बदलते हैं। एक-एक भाव के अनेक पोज लेने होगे, तब मन का एक चित्र सामने आएगा। इतनी है हमारी गतिशीलता और परिवर्तनशीलता। यदि हम इन सारे रूपो को जान सके तो समस्या का समाधान प्राप्त हो सकता है। समस्या का समाधान खोजने के लिए सारे दृष्टिकोणो को सापेक्ष करना होगा। जिन-जिन पर, जिन-जिन लोगो ने दायित्व डाला है, उन सबको सापेक्ष कर, एक पूरा चित्र बनाकर देखना होगा।

समस्या के मूल में

समस्या के मूल मे परिस्थिति भी एक सचाई है, शरीर की विद्युत् और रसायन भी एक सचाई है, मानसिक परिवर्तन और तनाव भी एक सचाई है, आजीविका का प्रश्न भी एक सचाई है, सस्कार और कर्म के विपाक भी एक सचाई है। हम किसी एक सचाई को पूरी सचाई मानकर यदि शेष सचाइयो को अस्वीकार कर देते हैं तो और सघन अन्धकार मे भटक जाते हैं।

ससार : समस्याओं का आलय

एक व्यक्ति ने मुझे पूछा—क्या ध्यान के द्वारा सभी समस्याओ का समाधान हो सकता है? मैंने कहा—'ससार मे ऐसी कोई शक्ति नही है जो सभी समस्याओ का समाधान दे सके। सब शक्तियो की अपनी-अपनी सीमा है। यदि किसी एक शक्ति के द्वारा सारी समस्याओ का समधान हो सके तो मैं उसे सार्वभौम शक्ति सम्पन्न ईश्वर मानूगा। ईश्वर की विशेषता ही क्या है? ईश्वर वह होता है जो सारी समस्याओ का समाधान दे सके, किन्तु मैं समझता हू कि इन सारी समस्याओ का समाधान ईश्वर भी नही दे सकता। वह अपनी स्थिति मे ही समाधान दे सकता है, जगत् की स्थिति मे नही दे सकता। जगत् की स्थिति मे यदि समाधान देने की उसकी क्षमता होती तो आज सारा ससार समस्याओ से मुक्त हो जाता, ससार मे कोई समस्या रहती ही नही। यह ससार समस्याओ का ससार है। इसमे समस्याएं थी, है और रहेगी। अगर कोई कहे कि सत्युग समस्याओ से मुक्त था, वह दावा झूठा होगा। यदि कोई यह कल्पना करे कि ऐसा युग आएगा जिसमे कोई समस्या ही नही रहेगी तो यह भी अति-कल्पना होगी। आदमी सदा समस्या के साथ जीता रहा है, जी रहा है और जीता रहेगा।

आप इसे निराशा की बात न समझें। आप सोचेंगे, हम शिविर मे आए हैं समस्याओ को मिटाने के लिए। किन्तु जब समस्याए शाश्वत हैं तब हमारा ध्यान का, कायोत्सर्ग का या अन्यान्य साधना का प्रयत्न व्यर्थ होगा। क्यो हम ध्यान

करें ? क्यों साधना मे समय लगाए ?

हम सचाई को समझकर चलें। आदमी कितना ही प्रयत्न क्यो न करे, वह समस्याओ से वच नही सकता। समस्याए आएगी, समस्याएं रहेंगी। परिस्थिति को नही मिटाया जा सकता। आर्थिक समस्याओं को सदा-सदा के लिए नहीं सुलझाया जा सकता। गरीवी को मिटाने के लिए अनेक सपने लिये गए, पर सारी दुनिया से गरीवी नही मिटा। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न देशो मे भी हजारों लोग गरीवी से पीडित हैं। जो देश अन्यान्य देशो को करोडो की सहायता देते हैं, वहा के हजारो निवासी फुटपाथो पर सोते हैं। जहां सामाजिक समानता के लिए प्रयत्न किए गए, वहां के लोग भी सामाजिक विपमता से पीड़ित है और आर्थिक भ्रष्टाचार के शिकार हैं।

नयी शक्ति : प्रतिरोधात्मक शक्ति

हम ध्यान साधना के द्वारा समस्या को मिटाने का प्रयत्न नही कर रहे हैं किन्तु समस्या के मूल की खोज कर, समस्या के प्रतिरोध मे एक नयी शक्ति खडी करने का प्रयास कर रहे हैं। हम प्रतिरोधात्मक शक्ति उत्पन्न करें जो समस्या की शक्ति के सामने खडी रहकर समस्या का प्रतिरोध कर सके। जब आमने-सामने दूसरी शक्ति होती है तव आक्रामक शक्ति का वेग मन्द हो जाता है। उसे सावधानी से आगे वढना होता है। जब शत्रु-सेना के सामने दूसरी शक्तिशाली सेना खड़ी होती है तव उसे आगे वढने का उतना अवकाश प्राप्त नही होता। यदि प्रतिरोध करने वाली सेना न हो तो वह निर्भीकता से आगे वढ़ जाती है।

हमारे शरीर मे जव रोग-प्रतिरोधक शक्ति प्रवल होती है तव किसी भी प्रकार के रोग के कीटाणु आक्रमण नही कर सकते। वे आते हैं और प्रतिरोधात्मक शक्ति से पराजित होकर भाग जाते है। सारा शरीर कीटाणुओं से आक्रान्त है। वे रोग पैदा कर सकते है किन्तु जिस व्यक्ति का रेजिस्टेन्स पॉवर—प्रतिरोधात्मक शक्ति प्रवल होती है, जिसमें रोग के कीटाणुओ से लड़ने की क्षमता होती है, वह व्यक्ति रोगों से आक्रान्त नही होता। वह वीमार नही होता। जिसकी यह शक्ति क्षीण होती है, वह सहजतया वीमारी से ग्रस्त हो जाता है। कुछेक लोग प्रतिश्याय या सिरदर्द से सदा पीड़ित रहते है। कुछेक लोग अन्यान्य भयकर वीमारियो से दुखी रहते है। क्या रोग के कीटाणु उन्ही को सताते है ? वे दूसरो को क्यो नही सताते ? कीटाणु सवको सताने का प्रयत्न करते हैं। जिस-जिस व्यक्ति की प्राण-शक्ति कम हो जाती है, रोग-निवारक शक्ति क्षीण हो जाती है, उसे कीटाणु अधिक सताते हैं। जिस व्यक्ति की प्राण-शक्ति मजबूत है, उसे कीटाणु सताने का प्रयत्न करते है पर सता नही पाते। हम ध्यान के द्वारा प्राण-शक्ति को सक्षम बनाते है, प्रतिरोधक शक्ति की एक मजबूत दीवार खडी

करते हैं जिससे कि कोई आक्रमण न कर सके और हमे समस्या न सता सके।

शोधन की प्रक्रिया

लोह और इस्पात दो हैं। लोह कमजोर होता है और इस्पात बहुत मजबूत होता है। लोह पर जग जमता है, इस्पात पर जग नही जमता। लोह ही इस्पात मे बदलता है। धातु को मजबूत करने के लिए उसे तेज तापमान दिया जाता है और जितने विजातीय कण उससे निकाल दिए जाते हैं, उतना ही वह धातु मजबूत वन जाता है। अन्तरिक्षयान के लिए लोह-धातु को वहुत मजवूत वनाया जाता है, जिससे कि वह हर झटके को झेल सके। किन्तु मजबूती तव आती है जव विजातीय कण निकाल दिए जाते है और मूल कण अधिक से अधिक विकसित होते हैं।

हमारे चित्त की भी यही प्रक्रिया है। जव चित्त मे विजातीय तत्त्व ज्यादा होते हैं तव चित्त इतना कमजोर वन जाता है कि वह परिस्थिति के झटके को सहन नहीं कर सकता, तत्काल टूट जाता है। यदि उसी चित्त को ध्यान की तेज अग्नि के द्वारा तपाया जाता है, उसे लोह से फौलाद वना दिया जाता है, उसके सारे विजातीय तत्त्वो—सस्कारो को निकाल दिया जाता है तो वह वहुत मजबूत बन जाता है। उस स्थिति मे केवल चित्त रह जाता है, विशुद्ध चित्तमात्र। वह प्रत्येक तूफान का सामना कर सकता है और भयकर से भयकर ववडर मे अविचल खडा रह सकता है।

ध्यान की निष्पत्ति समस्या की समाप्ति या मनोवल की वृद्धि ?

ध्यान की प्रक्रिया समस्याओ को समाप्त करने की प्रक्रिया नही है। ध्यान-साधक यह भ्रान्ति न रखे कि ध्यान से सारी समस्याए समाप्त हो जाएगी। ऐसा कभी नही होगा। ध्यान के द्वारा समस्याए या परिस्थितिया नही मिट सकती। जगत् मे विभिन्न प्रकार के लोग है। उनकी ग्रन्थियो के आन्तरिक स्राव भी भिन्न-भिन्न हैं। उनकी विद्युत्-धाराओ के प्रवाह भी भिन्न है। क्या-क्या मिटा पायेंगे ? ध्यान के द्वारा रोटी की और आजीविका की समस्या को नही सुलझाया जा सकता। कितना ही ध्यान करें उससे रोटी प्राप्त नही हो सकती। रोटी के लिए खेती आवश्यक है। रोटी के लिए श्रम और व्यवसाय अपेक्षित है। ध्यान के द्वारा रोटी की समस्या नही सुलझ सकती। ध्यान के द्वारा जो प्राप्तव्य है वह ध्यान से मिल सकता है। जो ध्यान के द्वारा नही हो सकता, उसको ध्यान के द्वारा करने के लिए प्रयत्न करना, एक भ्रान्ति है। यदि इस भ्रान्ति मे जाएगे तो न ध्यान को ही समझ पाएगे और न ध्यान के द्वारा जो प्राप्तव्य है, वही उपलब्ध होगा।

ध्यान के द्वारा मिलता है—मनोबल, चित्तशक्ति, शुद्ध चेतना का पराक्रम।

ध्यान के द्वारा एक ऐसी शक्ति मिलती है जो व्यक्ति को प्रत्येक समस्या को झेलने मे सक्षम बनाती है। व्यक्ति मे ऐसी शक्ति जगा देती है कि व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति का हसते-हसते सामना कर सकता है, समस्या को सुलझा सकता है और अच्छी-बुरी घटना घटित होने पर भी सतुलन नही खोता। सतुलन को बनाए रखना बहुत बडी बात है। बडे-बड़े लोग भी विपम परिस्थिति मे सतुलन नही रख पाते। बडे आदमी ही ज्यादा असतुलित होते हैं। छोटा आदमी सहना जानता है। वह छोटी-बड़ी अप्रिय घटना सह लेता है। सतुलन नही खोता। बडा आदमी सह नही सकता। अप्रिय घटना होते ही उसका अहं जाग जाता है। धन और सत्ता का नशा उसको आक्रान्त कर देता है। वह तव दूसरो को तुच्छ मानकर अप्रिय कर वैठता है। उसका सतुलन विगड जाता है और तव जो होना होता है वही होता है। वडे आदमी को सतुलन खोने के अनेक अवसर मिलते हैं। छोटे आदमी को वे अवसर सुलभ नही है। यही कारण है कि छोटा आदमी कम अवसरो मे सतुलन खोता है, और वडा आदमी कम अवसरो मे सतुलन रख पाता है।

सतुलन का विकास ध्यान से

हमे ध्यान के द्वारा सतुलन का विकास, मनोवल का विकास और क्षमता का विकास करना है। हमे वह विकास करना है जो सारी परिस्थिति के सामने एक दीवार खड़ी कर सके, परिस्थिति से टूटे नही, घुटने न टेके। क्या हम नही जानते कि जब आदमी का मन शुद्ध नही होता, चित्त शुद्ध नही होता तव वह कितनी कठिनाइयो से गुजरता है? जव हम लोगो की समस्याओ को सुनते हैं तब मन करुणा से भर जाता है। सोचते हैं—क्या यही है ससार? किसी का पिता मर गया है और किसी का वेटा मर गया है। किसी पति ने पत्नी को छोड़ दिया है और किसी पत्नी ने पति को छोड़ दिया है। ये सारी स्थितिया समस्याए पैदा करती हैं। इस विश्व मे इतनी विरोधी स्थितिया है मन को और चित्त की चेतना को तोडने के लिए कि यदि मन शक्तिशाली नही होता है तो मनुष्य के लिए पागल बनने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नही वचता।

समस्या पर एकाग्र होना : समस्या का समाधान

एक भाई ने आकर कहा—मैं पागल होता जा रहा हू। आप वताए कि मैं ठीक होऊगा या नही? मैंने कहा—ठीक होना या न होना तुम्हारे हाथ मे है। तुम झेलने की शक्ति का विकास करो। झेलने की शक्ति एकाग्रता से प्राप्त होती है। आज का व्यक्ति एकाग्र होना नही जानता। जिस व्यक्ति, समाज या राष्ट्र ता की शक्ति नही होती वह कंगाल बन जाता है। आज भारत और स्थिति को देखें। जापान ने जितना विकास किया है, भारत उससे

बहुत पीछे है। किसी भी विषय पर एकाग्र होने का अभ्यास जितना जापानियों ने किया है, उतना भारतवासियो ने नही किया, ऐसा नही कहना चाहिए किन्तु यह कहना चाहिए कि एकाग्रता की जो शक्ति भारत मे थी और जिस शक्ति का शिक्षण जापान को दिया था, आज भारत उस विद्या को भुला बैठा और जापान उसका उपयोग कर रहा है। जब तक व्यक्ति समस्या पर एकाग्र होना नही जानता, पूरी एकाग्रता और तन्मयता के साथ समस्या का समाधान खोजना नही जानता तब तक समस्या समाहित नही होती। आज एक विषय पर मन एकाग्र होता है तो कल दूसरे विषय पर। आज एक योजना बनती है तो कल दूसरी योजना सामने आ जाती है।

एक गाव मे एक सेवक रहता था। वह एक काम शुरू करता, बीच मे ही दूसरा काम शुरू कर देता। इस प्रकार वह अनेक काम प्रारभ कर देता, पर पूरा एक भी नही होता। एक दिन एक आदमी ने उसे आम लाने भेजा। बीच मे दूसरा आदमी मिला। उसने कहा—सेवकजी! घर मे आटा नही है, आटा ला दो। वह आम लाना भूल गया और आटा लाने चला गया। फिर तीसरा आदमी मिला वह बोला—सेवकजी! घर मे पत्नी बेहोश पडी है, वैद्य को बुला लाओ। वह आटा लाना भूल गया और वैद्य को लाने दौडा। आगे चौथा आदमी बोला—अरे भागे जा रहे हो। देखो, मेरी लाडली सुसराल जा रही है। उसे पहुंचाने जाना है। रेल मे चार घटे का रास्ता है। बेटी को ससुराल पहुंचाकर चले आना। सेवक ने स्वीकार कर लिया। सारे काम छोड वह स्टेशन की ओर चल पडा। उसने चार काम सभाले, पर पूरा एक भी नही हुआ।

प्राय व्यक्तियो की यही स्थिति है। वे एक समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं, ध्यान दूसरी समस्या पर चला जाता है, फिर तीसरी समस्या और फिर चौथी समस्या पर ध्यान केन्द्रित हो जाता है। वहा भी वह ध्यान नही टिकता। एक भी समस्या नही सुलझती। पानी सौ हाथ नीचे है तो सौ हाथ खोदने पर ही वह प्राप्त हो सकता है। दस-दस हाथ के दस गढे खोदने से पानी प्राप्त नही हो सकता। यहा गणित काम नही आता कि दस-दस हाथ के गढे खोदने से सौ हाथ हो गए। पूरे सौ हाथ एक स्थान पर खोदने से ही पानी मिल सकता है। अन्यथा दस-दस हाथ के हजार गढे भी खोद लो, पानी नही मिलेगा।

ध्यान इस समस्या को सुलझा सकता है। वह व्यक्ति को केन्द्रित होना सिखाता है। साधक ध्यान के द्वारा एकाग्रता और सकल्प-शक्ति का विकास करे और समस्याओ के समक्ष एक प्रतिरोधात्मक शक्ति खडी करे जिससे कि चित्त समस्या से डरे नहीं, किन्तु उसके सामने एक पर्वत की भांति अचल खड़ा रह सके।

१२. नयी आदतें : नयी आस्थाएं

१. दो अवस्थाए—जवानी और बुढापा।

२. जवान कौन ? बूढा कौन ?

- जवान वह जिसका रक्तचाप सन्तुलित है।
- बूढा वह जिसका रक्तचाप सन्तुलित नही है।

३ रक्त-सचार का वाधक है—मल का सचय।

४. जिसके मन मे सन्ताप आता है और निकल जाता है, वह सुखी है, जवान है।

जिसके मन मे सन्ताप आता है, वही जम जाता है, वह दु खी है, बूढा है।

५. पदार्थों के सम्बन्ध से झटका।

६. सयोग मे सुख, वियोग मे दुःख—यह पुरानी आदत।

- दोनो मे अनासक्ति—यह नयी आदत, यह नयी आस्था।

७. वियोग से दु ख नही, वियोग का पता चलने से दुःख।

- वियोग का पता चलने से दु ख नही, उस वियुक्त होने वाले पदार्थ मे आसक्ति का भाव होने से दु ख।

८. ध्यान है आस्था का परिमार्जन।

९. दो दृष्टिया—

- जीवन संचालित है—प्राणशक्ति और मस्तिष्कीय चेतना के द्वारा।
- जीवन सचालित है—शाश्वत चेतना के द्वारा।

बारह

कौन जवान ? कौन बूढा ?

आदमी दो अवस्थाओ में जीता है। एक अवस्था है जवानी की और दूसरी है बुढापे की। आयुष्य के सौ वर्ष के अनुपात मे व्यक्ति की दस अवस्थाए बतलाई गई है, किन्तु वे सारी अवस्थाए इन दो अवस्थाओ मे समाविष्ट हो जाती हैं।

प्रश्न होता है—जवान कौन ? बूढा कौन ? सामान्य आदमी का यही उत्तर होगा कि जो २५-३० वर्ष की आयु का है वह जवान है। जिसके सिर के बाल काले हैं वह जवान है। जो आदमी साठ वर्ष पार कर चुका है, जिसके बाल पक गए हैं, सफेद हो गए है, वह बूढा है। यह सामान्य उत्तर होगा। जो व्यक्ति शरीर की शक्ति को जानता है, वह ऐसा उत्तर नही देगा। वह कहेगा—जवान वह होता है जिसका रक्तचाप सन्तुलित होता है। बूढा वह होता है जिसका रक्तचाप सन्तुलित नही होता। जिसका रक्तचाप सन्तुलित है और वह सत्तर वर्ष का हो गया है, तो भी वह जवान है। जिसका रक्तचाप असन्तुलित है और वह तीस वर्ष का ही है, फिर भी वह बूढा है।

रक्तचाप बढने का कारण है हृदय पर अतिरिक्त भार पडना। जब हृदय को अधिक श्रम करना पडता है तव रक्तचाप बढ जाता है। जव धमनिया ठीक काम नही करतीं, धमनियो के छिद्र अवरुद्ध हो जाते है तव हृदय को उन तक रक्त पहुचाने के लिए अतिरिक्त श्रम करना पडता है। वह कमजोर होता चला जाता है और रक्तचाप वढता चला जाता है। इससे तीस वर्ष का आदमी भी बूढा होता चला जाता है। जव धमनियां ठीक होती हैं, प्रणालिकाए ठीक होती हैं तो रक्त का सचार निर्बाध गति से होता रहता है। इस स्थिति मे हृदय को अतिरिक्त श्रम नही करना पडता। उसकी शक्ति कम क्षीण होती है और वह लम्बे समय तक कार्यक्षम हो सकता है। इस स्थिति मे आदमी कभी बूढा नही होता। वह सत्तर वर्ष की अवस्था मे भी जवान बना रह सकता है।

रक्त-संचार में वाधा क्यों ?

पुनः एक प्रश्न होता है कि धमनियो के रास्ते अवरुद्ध क्यों होते हैं? वे कमजोर क्यो होती हैं ? रक्त-सचार मे वाधा क्यों आती है ?

यह शरीर मलो का शरीर है। इसमे इतने मल जमा होते हैं कि यदि वे न निकलें तो सारा शरीर मलमय वन जाता है। मल निकलने के अनेक द्वार हैं—मलद्वार (गुदा), मूत्र द्वार (शिश्न), त्वचा और श्वास-प्रणाली। ये सारे द्वार मल को वाहर फेंकते हैं। किन्तु कुछेक कारणो से ये अवयव विसर्जन का काम कम करने लग जाते हैं। शरीर मे अधिक विप जमा हो जाने के कारण नाड़ी-सस्थान दुर्वल हो जाता है, मल फेंकने वाले अवयव कमजोर हो जाते हैं, और धीरे-धीरे धमनिया विष से भर जाती हैं। मल आतो से चिपट जाता है, रास्ते सकड़े हो जाते हैं, आतें कठोर हो जाती हैं। जव तक मल निकलने के द्वार ठीक काम करते हैं तव विप जमा होते है और वाहर निकल जाते हैं। विप का जमा होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। ऐसा कभी सभव नही है कि शरीर मे मल जमा न हो, विप का सचय न हो। हम जो कुछ खाते हैं, सव के साथ विष जाता है। जो अमृत माना जाता है, उसके साथ भी विप जुडा रहता है। यह माना जाता है—फल बहुत लाभप्रद है। पत्ती का शाक वहुत अच्छा है। दूध, घी और फलों के रस अमृत तुल्य हैं, स्वास्थ्यकारक है। किन्तु इन सबके साथ विष है। एक भी खाद्य पदार्थ ऐसा नही है जिसे केवल अमृत कहा जाए, जिसके साथ विप की मात्रा न हो। हम अमृत भी खाते है और साथ-साथ जहर भी खाते है। जव वह उचित मात्रा मे वाहर नही निकलता तव अनेक रोग आक्रमण करते है। जव तक मल-निष्कासन का मार्ग साफ रहता है, खुला रहता है तव तक जीवन की यात्रा निर्बाधरूप से चलती रहती है। जव मार्ग मे रुकावट आती है, तव वुढापा आता है, आयुष्य कम हो जाता है। आवश्यक यह है कि मार्ग साफ रहना चाहिए। ये नाले गन्दे न हो, सदा साफ रहे। इनमें कोई अवरोध नही होना चाहिए, जिससे कि जो जहर जमा हो वह सहजतया विसर्जित हो जाए। यदि अवरोध नही होगा तो बुढ़ापा नहीं आएगा।

जवान सुखी, बूढ़ा दु.खी

इस शरीर की प्रक्रिया के साथ जव मैं चित्त की और चेतना की प्रक्रिया को देखता हू तो मुझे लगता है कि दोनो की प्रक्रिया समान है। बाह्य जगत् मे यह प्रश्न है कि बूढा कौन ? जवान कौन ? मानसिक जगत् मे यह प्रश्न है कि सुखी कौन ? दु खी कौन ? इसका उत्तर है—जवान अर्थात् सुखी, बूढ़ा अर्थात् दु.खी। बुढ़ापा अपने आप मे दु ख है। महावीर ने दु.खो का वर्गीकरण इस प्रकार किया—

जम्म दुक्ख जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु ससारो, जत्थ कीसति जन्तवो।।

—जन्म दु ख है, बुढापा दु ख है, रोग दु ख है और मरण दु ख है। बुढापा अपने आप मे बीमारी है, दु ख है।

मानसिक जगत् मे जवान वह है जिसके मन मे कोई सताप आता है और निकल जाता है। जिसमे कोई अवरोध नही आता, वह सुखी और जवान है। दु खी वह है जिसके मन मे सताप आता है और वह जमा हो जाता है, निकलने का रास्ता नही मिलता। वही बूढा होता है। दु खी और बूढा—कोई अन्तर नही है। हम यह न मानें कि इस दुनिया मे कोई जन्म ले और सताप न आए। जैसे अमृत आए और साथ मे जहर न आए, ऐसा नही हो सकता तो मानसिक जगत् मे मानसिक आनन्द आए और दु ख न आए, सताप न आए, ऐसा भी नही हो सकता। जहा सुख की अनुभूति होती है वहा सन्ताप भी साथ-साथ आता है। कोई भी ऐसा सुख नही है जिसके साथ दु ख जुडा हुआ न हो। इस भौतिक जगत् की सीमा मे होने वाला आनन्द ऐसा नही है जिसके पहले या पीछे या समरेखा मे सताप न हो। यह हो ही नही सकता। सताप अवश्य होगा। किन्तु जब मन और चेतना की प्रणालिका साफ रहती है, विष जमा होता है और निकल जाता है, मल साफ हो जाता है तो बुढापा नही आता, दु ख घनीभूत नही होता, वेदना सघन नही होती। आती है, चली जाती है। जब मल ज्यादा जमा हो जाता है और उसे निकलने का मार्ग नही मिलता तब सताप इतना सघन बन जाता है कि वह भीतर ही भीतर वृद्धिगत होता हुआ आदमी को पूरा दु खी बना डालता है। 'वह दु खमय और वेदनामय बन जाता है। पीडा उसे घेर लेती है। ऐसा क्यो होता है ? इसका उत्तर यही है कि जब व्यक्ति हृदय से और चेतना से अतिरिक्त काम लेने लग जाता है, तब मलावरोध होता है और वही इस पीडा को उत्पन्न करता है।

सचालक-शक्ति—चेतना

हमारा सारा जीवन चलता है—आस्था के द्वारा। यह जीवन सचालन का सूत्र है। आख देखती है, कान सुनते है, हाथ-पैर चलते है। ये सब क्रिया करने वाले हैं। इनका सूत्रधार कौन है ? इन्हे सचालित करने वाला मूल कौन है, जिनकी प्रेरणा से ये सारे क्रियाशील रहते हैं ? आख देखती है। यदि आख स्वय सचालक हो तो वह एक ही दिशा मे देखेगी। किन्तु आख कभी सामने देखती है, कभी इधर-उधर देखती है। कभी दाए देखती है और कभी बाए। कभी एक वस्तु को देखती है और कभी दूसरी वस्तु को। ऐसा क्यो होता है ? आख एक उपकरण है, साधन है। भीतर मे रहने वाला संचालक-सूत्र उसे इस प्रकार सचालित कर रहा है। जिस दिशा मे वह सचालित होती है, उसी दिशा मे देखने लग जाती

है। आख स्वय सचालक नही है। वह सचालित है। सारी इन्द्रिया सचालित हैं। सचालन का सूत्र किसी दूसरे के हाथ मे है। सेना का सचालन सेनापति करता है। वह कट्रोल रूम मे बैठा-बैठा ही सचालन कर लेता है। सचालन-सूत्र किसी दूसरे व्यक्ति के हाथ मे रहता है और सचालित होने वाले दूसरे होते हैं। हमारी सभी कर्मेन्द्रिया, ज्ञानेन्द्रिया, मन और मस्तिष्क—ये सब दूसरे सूत्र से सचालित होती है। इनको सचालित करने वाली शक्ति है—चेतना। चेतना मे जितनी आसक्ति, जितनी मूर्छा, जितना मोह है उतना ही अधिक विष जमा होता जाता है और हमारा सारा स्नायु-तन्त्र अवरुद्ध हो जाता है। प्रश्न है—मूर्च्छा और आसक्ति का जो चेतना के साथ जुड़ी हुई होती है।

पदार्थों के सम्बन्ध से झटका

पदार्थ पदार्थ होता है। वह जड है। वह न सुख देता है और न दु ख। पदार्थ मे सुख-दु ख देने की क्षमता नही होती। अचेतन मे यह क्षमता नही होती। पदार्थ के साथ हमारा सम्बन्ध होता है, सयोग होता है, और फिर वियोग हो जाता है? आदमी प्रात.काल उठता है और उठते ही पदार्थ के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। कुछ लोग उठते ही अपनी हथेलिया देखते हैं, उनसे सम्बन्ध स्थापित करते है। वे मानते है कि ऐसा करना शुभ है, मगलकारी है। कुछ व्यक्ति उठते ही अपने आस-पास के व्यक्तियो से सम्बन्ध स्थापित करते है, कमरे मे पड़ी हुई वस्तुओ के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं। जब वे बाहर जाते है तब अन्यान्य वस्तुओ के साथ सम्बन्ध स्थापित करते है। उठते ही आदत के कारण भी सम्पर्क स्थापित होता है। चाय की आदत या खाने की आदत हो तो चाय और खाने के पदार्थों के साथ सम्पर्क होता-है। इस प्रकार उठते ही बाह्य जगत् के साथ हमारा संपर्क स्थापित होना शुरू हो जाता है और वह सिलसिला दिन भर और रात भर (जब तक नही सोते तब तक) चलता रहता है। न जाने कितनी वस्तुओ के साथ हमारा सपर्क होता है और हम उनसे सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। बाह्य पदार्थ के साथ सम्बन्ध स्थापित होते ही एक झटका लगता है। दूसरे पदार्थ से सपर्क होते ही दूसरा झटका लगता है और ये सारे झटके स्मृति-कोष्ठ मे जाकर सचित हो जाते है। पदार्थ यदि कमजोर होता है तो झटका मन्द होता है। पदार्थ यदि शक्तिशाली होता है तो झटका तीव्र होता है। झटका लगता अवश्य है।

एक बच्ची पड़ोसी के घर गई। घर का मालिक खडा था। बच्ची ने पूछा—स्त्री चाहिए। घर के स्वामी ने अपनी पत्नी की ओर इशारा करते हुए कहा—वह खडी है 'सामने, ले जाओ। बच्ची ने कहा—'वह नही, कपड़ो वाली चाहिए।' मालिक बोला—कपडो वाली ही तो है, नगी कहा है? बच्ची बोली—यह नही,

करट वाली चाहिए, जिसके हाथ लगते ही झटका लगे।' मालिक ने हसते हुए कहा—'इसके हाथ लगाकर तो देखो, यह भी तेज झटका देती है।'

पदार्थ का झटका लगता है और सारे झटके स्मृति-कोष्ठ मे जाकर जमा हो जाते है। यदि झटका तेज होता है तो वह मज्जा तक चला जाता है और स्थायी वन जाता है। आदमी उसमे उलझ जाता है, रास्ता वन्द हो जाता है। ये झटके अवरोध पैदा करते है। यह है आसक्ति, मूर्च्छा, मोह। हमने न जाने कितने सवध स्थापित कर रखे है। हमारा सवध चेतन से भी है और अचेतन से भी है। हजारो-हजारो लोगो से हमारा सम्वन्ध है और हजारो-हजारो पदार्थो से भी हमारा सवध है। सारे के सारे सवध हमारी चेतना की प्रणाली मे अवरोध पैदा किए हुए है। नेतना जो केवल चेतना थी, शुद्ध चेतना थी, चेतना के अतिरिक्त कुछ भी नही था, वहा इन सारे सम्पर्कों और सम्वन्धो ने अवरोध पैदा कर दिए। चेतना का मार्ग जो राजपथ था, साफ था, विस्तीर्ण था, उसे इन अवरोधो ने सकरा वना दिया, अस्वच्छ वना दिया। मूर्च्छा इतनी सघन हो गई कि धमनिया कडी वन गई और उनमे रक्त का सचार सुगम नही रहा। इसीलिए जवानी समाप्त हो रही है, बुढापा आ रहा है और आदमी दु ख पा रहा है।

लक्ष्य और आस्था

वहुत वडा प्रश्न है कि ध्यान का प्रयोजन क्या है ? ध्यान-साधक का लक्ष्य क्या है ? वह क्या चाहता है ? जब तक कोई लक्ष्य स्पष्ट नही होता तव तक जीवन का सचालन-सूत्र भी स्पष्ट नही होता। आदमी की एक लक्ष्य के प्रति आस्था हाती है। जैसी आस्था और श्रद्धा होती है वैसा ही उसका सचालन होता है। एक आदमी बैठा है। भूख लगती है। वह खडा होता है और रसोई घर की ओर जाता है। हाथ की मासपेशिया सक्रिय होती है। वह हाथ से भोजन उठाता है। मुह मे लार टपकने लग जाती है, रस का स्राव प्रारम्भ हो जाता है। पित्त का स्राव होने लगता है। सारा शरीर-तत्र सचालित हो जाता है। पूरे पाचन प्रणाली की मासपेशिया सक्रिय हो जाती है। सव अपना-अपना काम करते हैं। भोजन के लिए जितने रसस्राव अपेक्षित होते है, वे सारे होने लग जाते है। इसका कारण क्या है ? इसका कारण है कि भीतर एक आस्था जमी हुई है कि जव भूख का अनुभव हो तो भोजन करना चाहिए। आस्था से प्रेरित होकर मनुष्य जब भोजन के लिए पैर बढाता है तव सारा तत्र सक्रिय हो जाता है। हमारे जीवन की समस्त क्रियाए सचालित होती है आस्थाओ के द्वारा। ये सारे कार्यतत्र हैं। मस्तिष्क भी एक कार्यतत्र है। वह सारे कार्य को सचालित करता है, नियत्रित करता है। उसकी प्रेरणा है—गहन अन्तराल मे छिपी हुई हमारी आस्था और श्रद्धा। हमारी जैसी आस्था होगी, उसी ओर हमारी सारी शक्ति प्रवाहित होने लग जाएगी। यदि

आदमी की आस्था लड़ाई मे है तो उसकी सारी शक्ति लड़ाई मे लग जाएगी। यदि आदमी की आस्था क्षमा मे है तो उसकी सारी शक्ति क्षमा मे लग जाएगी। आस्थाओ से आदत का निर्माण होता है। आदत आस्था को नही बनाती, किन्तु आस्था आदत को बनाती है। पहले आस्था फिर आदत। जैसी आस्था वैसी आदत। आज आस्थाओ मे परिमार्जन अपेक्षित है।

ध्यान है : आस्थाओं का परिमार्जन

ध्यान का लक्ष्य है आस्थाओं का परिमार्जन करना। हम आस्थाओ का परिष्कार करना चाहते हैं। हमारी आस्था सबध की आस्था बनी हुई है। यह सबध स्थापित करने की आस्था है। हम अध्यात्म जगत् से अपना सबध स्थापित करना चाहते हैं। उस संबध के द्वारा सुख पाना चाहते हैं। सम्पर्क-सूत्र की आस्था, सबध और सुख—यह एक प्रक्रिया है। पदार्थ का सयोग होता है, तब सुख होता है। पदार्थ का वियोग होता है, तब दु ख होता है। बिजली थी तब सुख का अनुभव होता था। बिजली चली गई तब दु.ख का अनुभव होने लगा। सुख बिजली के रहने से नही हुआ। दु.ख बिजली के जाने से नही हुआ। वस्तु के जाने से दुःख नहीं होता। दु.ख तब होता है जब हमे पता चलता है कि वस्तु चली गई। व्यक्ति को पता नही है कि व्यापार मे घाटा है, तब उसे दु ख नही होता। दु ख तब होता है जब उसे पता लग जाता है कि घाटा हुआ है। नुकसान होने से कोई दु:ख नही होता और लाभ होने से कोई सुख नही होता। जब दोनो अज्ञात होते हैं तब कुछ नहीं होता। जब वे ज्ञात होते हैं तब सुख-दु ख के कारण बनते हैं। यदि वास्तव मे घाटा होने से ही कोई दु.ख हो तब तो घाटा लगने की घटना के साथ-साथ ही दु ख हो जाना चाहिए, किन्तु ऐसा नही होता। कोई प्रिय व्यक्ति चल बसा। चार दिन तक समाचार नही मिले। कोई दु ख नही हुआ। समाचार मिलते ही दु ख का पहाड़ टूट पड़ा। अत यह निश्चित है कि घटना घटित होते ही सुख-दु ख नही होता। सुख-दुःख तब होता है जबकि उसका पता चले। कुछ आगे चलें। पता लगने से भी सुख-दु ख नही होता। सुख-दु ख तब होता है जब हमारी मूर्च्छा होती है। मूर्च्छा होती है तब संयोग होने पर सुख और वियोग होने पर दु ख होता है। जब मूर्च्छा नही होती तब चाहे वियोग हो या सयोग, दु ख भी नही होता और सुख भी नही होता। घटना घटती है। आदमी जान लेता है। केवल घटना-बोध होता है पर सुख-दु ख नही होता।

सुख-दु.ख के अनुभव का पहला सूत्र है—ज्ञान होना और दूसरा सूत्र है—मूर्च्छा होना, आसक्ति होना।

आस्था का निर्माण

ध्यान-साधना के द्वारा हम आस्था की स्थिति का निर्माण करना चाहते हैं। जो घटनाएं घटित होने वाली हैं वे अवश्य घटेंगी। उनका हमे बोध भी होगा, किन्तु उनके साथ न सुख आए और न दु.ख आए, यह अपेक्षित है। हम केवल जानते रहे, कर्त्तव्य का पालन करते रहे, चिन्तन करते रहें, चिन्तित न बनें। संताप को इकट्ठा न करें। संतप्त न बनें।

आचार्य श्री रायपुर मे थे। विरोध मे विद्यार्थियो का एक जुलूस आ रहा था। लोग घबराए हुए थे। उन्होने कहा—उपद्रव होगा।' आचार्य श्री बोले—चिन्ता मत करो, चिन्तन करो। यह है एक आस्था का निर्माण। सामान्यत. होता यह है कि सामने थोडी सी प्रतिकूल स्थिति आती है और आदमी चिन्ताओ से ग्रस्त बन जाता है। उन चिन्ताओ के कारण वह उपाय खोजना ही बन्द कर देता है। उपाय के अभाव मे परिस्थिति और अधिक जटिल बन जाती है। अब कष्टो का मार्ग ही उसके लिए उद्घाटित रहता है। इससे बचने का एक मात्र उपाय है—परिस्थिति के आने पर चिन्ता न करना किन्तु चिन्तन करना, व्यथा न करना किन्तु संवेदन करना। इनके पीछे अलग-अलग प्रकार की आस्थाएं बोल रही हैं। चिन्ता के पीछे एक प्रकार की आस्था होती है और चिन्तन के पीछे दूसरे प्रकार की आस्था होती है। जो व्यक्ति चिन्तन करना जानता है वह अपाय के बीच मे भी उपाय खोज लेता है और उसे समाधान मिल जाता है। जो व्यक्ति चिन्तन करना नही जानता, चिन्ता से ग्रस्त रहता है, वह उपाय के आने पर घुटने टेक देता है। उसे कभी समाधान नही मिलता। वह उपाय खोज ही नहीं सकता। उसके लिए सफलता के सारे मार्ग बन्द हो जाते है। बहुत सकडी रेखा है चिन्ता और चिन्तन मे, व्यथा और वेदन मे। एक रेखा के परे चिन्ता है, जहा सारी विफलताएं जीवन का वरण कर लेती हैं। एक रेखा है चिन्तन की जहा सारी सफलताए जीवन का वरण कर लेती हैं। हम ध्यान के द्वारा इस स्थिति का निर्माण करें कि चिन्ता से मुक्त होकर चिन्तन को प्रशस्त करें। व्यथा से मुक्त होकर वेदन को प्रशस्त करें। यह संभव कैसे हो सकता है ? इस आस्था का निर्माण कैसे हो सकता है ?

पहले आस्था का निर्माण, फिर आदत का निर्माण ! आस्था के निर्माण का अर्थ है—चेतना का निर्माण, चैतन्य के साथ जुड़ी हुई आस्था का निर्माण। यही है—दृष्टिकोण का परिवर्तन। दृष्टि के द्वारा आस्था का निर्माण होता है। जैसी दृष्टि, वैसी आस्था। जैसी आस्था, वैसा आचरण। आचरण जुडा हुआ है आस्था से और आस्था जुडी हुई है दृष्टि से। हम ध्यान के द्वारा दृष्टि का परिमार्जन और परिष्कार चाहते हैं। हमारी दृष्टि निर्मल बने, हमारी मूर्च्छा टूटे और आस्था पवित्र हो।

दो दृष्टियां · दो निष्पत्तिया

हमारा जीवन सचालित होताहै प्राण-शक्ति और मस्तिष्कीय चेतना के द्वारा—यह एक दृष्टि है। दूसरी दृष्टि यह है—हमारा जी वन सचालित होता है शाश्वत चेतना के द्वारा। जब हम चेतना को मस्तिष्क तक सीमित कर लेते है, तव हमारी चेतना वर्तमान तक सीमित वन जाती है और वह केवल जीवन के साथ जुड जाती है। हमारी चेतना इस जीवन के पहले क्षण मे पैदा हुई चेतना नही है। वह शाश्वत काल से चली आ रही चेतना है। उसका सवध केवल इस जीवन के साथ ही नही है, अनन्त-अनन्त जीवनो के साथ है। न जाने कितने सस्कार, कितनी वासनाए और भावनाए लेकर यह चेतना आई है और एक नए जन्म को ले रही है। इस आस्था के साथ जव आदमी चलता है तव उसका जगत् वहुत वडा वन जाता है। उसके सामने इतना विराट् संसार होता है कि वह वर्तमान की समस्याओ की व्याख्या केवल वर्तमान के सदर्भ मे ही नही करता, किन्तु वह और विराट् जगत् मे चला जाता है। जव शाश्वत चेतना के द्वारा आस्था का निर्माण होता है तो आदतें भी नए प्रकार की वनती हैं। यदि हमारा जीवन भौतिक पदार्थ से निर्मित जीवन है, तो फिर भौतिक पदार्थ से सवध-विच्छेद करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती। मूल भौतिक, आवश्यकताए भौतिक, समाप्ति भौतिक। आदि का क्षण भौतिक, मध्य का क्षण भौतिक और अत का क्षण भौतिक। सव कुछ भौतिक ही भौतिक है। फिर भौतिकता से परे हटने की कोई जरूरत नहीं है, आस्था को अभौतिक आधार देने की कोई आवश्यकता नही है। हमारी सारी आस्था भौतिकता से जुड़ी हुई आस्था होगी। इस स्थिति मे अध्यात्म और अभौतिकता किसलिए? अतीत और भविष्य किसलिए? न भविष्य आवश्यक है और न अतीत। न अध्यात्म आवश्यक है और न अभौतिकता। किन्तु जव हमारी आस्था इस वात से जुडी हुई होती है कि इस जीवन का मूल सूत्र भौतिक नही है, कोई अभौतिक सत्ता है, कोई शाश्वत चेतनसत्ता हे, इस स्थिति मे भौतिकता गौण हो जाती है। फिर हमारी आस्था मूल सत्ता के साथ, चेतना के साथ जुड जाती है। वह आस्था चेतना के परिष्कार की आस्था होती है। हाथ उठता है तो चेतना के परिष्कार के लिए उठता है। पैर उठता है तो चेतना के परिष्कार के लिए उठता है। सोना, जागना, खाना—सव कुछ चेतना के परिष्कार के लिए होता है। जीवन की सारी प्रवृत्तिया चेतना के परिष्कार के लिए होती है।

अज्ञानी सोता है, ज्ञानी जागता है

भगवान् महावीर ने कहा—'सुत्ता अमुणिणो मुणिणो सया जागरंति'—

अज्ञानी सदा सोता रहता है और ज्ञानी सदा जागता रहता है। ज्ञानी वह है जो जागता है और अज्ञानी वह है जो सोता है। ज्ञानी आदमी नीद लेते हुए भी जागता है और अज्ञानी आदमी आख खुली रखते हुए भी सोता है। वडा आश्चर्य होगा। आखें वन्द हैं। सोया पडा है। भान नही है, फिर भी महावीर कहते हैं—वह जाग रहा है। एक आदमी चल रहा है। आखें खुली है। महावीर कहते है—वह सोया हुआ है। वहुत वडा विरोधाभास है। जागता आदमी सोया हुआ है और सोया आदमी जागा हुआ है। वहुत वडा रहस्योद्‌घाटन किया है महावीर ने। जो अज्ञानी है, जिसकी आस्था केवल भौतिक सत्ता के साथ जुडी हुई है, वह जागते हुए भी सोया हुआ है। वैसा व्यक्ति चेतना के परिष्कार के लिए कोई'काम नही करता। वह चेतना को मूर्च्छित करने वाले कार्य करता है। वह जो भी करता है मूर्च्छा मे करता है, वेहोशी मे करता है, सोए हुए करता है। ज्ञानी सोए हुए भी जागता है। वह चेतना के परिष्कार के लिए काम करता है। वह सव कुछ होश मे करता है, मूर्च्छा मे नही। वह सव कुछ जागते हुए करता है। एक वहुत वडी वात कही गई कि साधु खाता है, उत्सर्ग करता है, वह सव धर्म है। साधु जो कुछ करता है वह धर्म होता है। गृहस्थ खाता है, उत्सर्ग करता है, वह सव पाप है। प्रथम दर्शन मे लगता है कि यह सचाई नही है। किन्तु इस पाप-धर्म की वात को जव हम सूक्ष्म जगत् मे उतर कर देखते है तो प्रतीत होता है कि यह एक वहुत वड़ी सचाई का उद्‌घाटन है। जिस व्यक्ति मे चेतना के परिष्कार की भावना जाग गई, जो चेतना के परिष्कार मे लग गया, जिसकी सारी ऊर्जा चेतना के परिष्कार मे लग गई वह जो कुछ भी करता है, वह सारा धर्म ही है। जिसकी ऊर्जा चेतना के परिष्कार में नही लगी, उसका करना पाप है अधर्म है। साधु का मतलव केवल वेश पहनने मात्र मे नही है। महावीर का यही आशय है। उन्होने वेश को लक्ष्य कर कुछ नही कहा। उन्होने चेतना को लक्ष्य कर ही सारा प्रतिपादन किया है। जिसकी यात्रा चेतना के जगत् मे शुरू हो गई, जिसने चेतना के जगत् मे एक पैर भी वढ़ा दिया, वह व्यक्ति चेतना के जगत् मे रह कर जो कुछ करता है वह सारा का सारा धर्म है। जिसने चेतना की अन्तर् यात्रा शुरू नही की, वह व्यक्ति जो कुछ करता है वह अधर्म है, धर्म नही है।

मुख्य वात है—चेतना के परिष्कार की। चेतना का परिष्कार चाहे साधु करे या गृहस्थ करे। दोनो कर सकते है।

गृहस्थ के वेश में साधु साधु के वेश में गृहस्थ

साधु कौन ? गृहस्थ कौन ? यह खोज का विषय है कि किस वेश मे कौन वैठा है ? गृहस्थ के कपडो मे वैठा हुआ साधु हो सकता है और साधु के कपडो मे वैठा

हुआ गृहस्थ हो सकता है। मैं चेतन जगत् की चर्चा कर रहा हूं। जिसने चेतन जगत् की यात्रा शुरू कर दी, चेतना के जगत् मे जिसके जीवन का क्रिया-कलाप प्रारभ हो गया, वह साधु है। गृहस्थ का सारा क्रिया-कलाप बाह्य जगत् मे होता है। वह चेतना का स्पर्श नही कर पाता। यह वेश से गृहस्थ की बात नही है।

ध्यान का उद्देश्य है—आस्था का निर्माण जो चेतना के साथ जुडी हुई है। उस आस्था के द्वारा जो कुछ होगा वह नई आदतें लाने वाला होगा। हम श्वास का प्रयोग इसीलिए करते हैं कि चेतना के साथ जुड़े हुए विषो और मलो को दूर करें, चेतना का परिष्कार करें। ऐसा होने पर नई आदतो का निर्माण होता है। यदि श्वास लेने की सही विधि हस्तगत हो जाती है और व्यक्ति सही ढंग से श्वास लेने लग जाता है, तो उसकी मूर्च्छा सघन नही होती। उसकी उत्तेजनाए और वासनाएं तीव्र नहीं होती। जो व्यक्ति दीर्घ-श्वास का अभ्यास करता है, वह इन सारी बुराइयो को नियन्त्रित कर देता है. और धीरे-धीरे इनसे छुटकारा पा जाता है। एक श्वास लेने की आदत को डालने का मतलब है बहुत सारी अच्छी आदतो का निर्माण करना। यदि श्वास लेने की आदत सही नही है, तो वह व्यक्ति अन्तर्यात्रा नही कर सकता।

ध्यान का प्रयोजन है—चेतना के साथ जुडी हुई आस्था का निर्माण। उस आस्था के आधार पर सचालित होने वाली नई आस्थाओ का निर्माण।

१३. वास्तविक समस्याएं और तनाव

१. हमारा जगत् विरोधी युगलो का जगत् ।
- सबध—विसबध ।
- यथार्थ—कल्पना ।

२ अध्यात्म—तनावमुक्ति का उपाय ।

३. अधविश्वास कहना दु साहस है ।

४. ध्यान यथार्थ को झुठलाने का प्रयत्न नही ।
ध्यान से सही निर्णय, सही दिशा मे पुरुषार्थ ।

५. तनाव का मूल—मूर्च्छा, पदार्थ=प्रतिबद्धता ।

६. अनुप्रेक्षा का प्रयोजन—भ्रान्तियो का विघटन ।

७. शास्त्र-चेतना अधी है ।
प्रेक्षा का तात्पर्य है—स्व-अवगति

८. विसंबध की चेतना का जागरण अनुप्रेक्षा से ।

तेरह

जितना पक्ष : उतना प्रतिपक्ष

हम जिस जगत् मे जी रहे हैं, वह है विरोधी युगलों का जगत् । जगत् मे एक भी तत्त्व ऐसा नही है जो केवल एक ही हो, जिसका कोई विरोधी न हो। कोई भी तत्त्व ऐसा नही है, जिसका प्रतिपक्षी न हो। कोई भी शब्द ऐसा नही है, जिसका प्रतिपक्षी शब्द न हो। प्रकाश है तो अधकार भी है। ठडा है तो गरम भी है। अच्छा है तो बुरा भी है। जितना पक्ष है, उतना ही प्रतिपक्ष है। केवल एक उपलब्ध नही होता। युगल मिलता है। एक है, दूसरा विरोधी है। यह द्वन्द्वों का जगत् है। सर्वत्र द्वद्व है—दो है। सयोग है, वियोग है। सबध है, विसबंध है।

तनाव का उपादान और निमित्त

इस विरोधी युगलो के जगत् मे तनाव न हो, यह कैसे सभव हो सकता है? यहां तनाव के उपादान भी हैं और निमित्त भी हैं। दोनो हैं। कोरा उपादान हो और निमित्त न हो, तो अभिव्यक्ति नही मिलती। कोरा निमित्त हो और उपादान न हो, तो भी कुछ नही बनता। उपादान और निमित्त—दोनो अपेक्षित होते हैं। उपादान मूल है और निमित्त सहयोगी। जब दोनों का योग होता है तब एक स्थिति का निर्माण होता है। तनाव के उपादान है—व्यक्ति का अपना अन्तस्तल, संस्कार, आतरिक अर्जना, संचित कर्म और उसके विकार तथा मूर्च्छा, आसक्ति, ममत्व आदि। तनाव का निमित्त कारण है—सामाजिक परिस्थिति। आदमी सामाजिक वातावरण में जीता है, अकेला नही जीता। समाज मे तनाव बढाने के अनेक निमित्त हैं। पग-पग पर तनाव का निमित्त मिलता है। कोई नही बच सकता।

घटना कहीं : तनाव कही

घटना कही घटित होती है और यहां बैठा आदमी तनाव से भर जाता है।

आज सचार के साधन इतने तीव्र-गतिक है कि कोई घटना गुप्त नही रह सकती। दुनिया की सारी दूरी समाप्त हो चुकी है। घटना सुनते ही आदमी तनावग्रस्त हो जाता है। भुट्टो को फासी पाकिस्तान मे दी गई। घटना वहा घटित हुई और कश्मीर मे गाव जला दिए गए। वहा के आदमी उस घटना से प्रभावित हो गए। घटना कही घटित होती है और तनाव कही हो जाता है। क्रिकेट कही खेला जा रहा है और यहा का आदमी उससे प्रभावित हो रहा है। द्वितीय महायुद्ध मे हमने देखा कि लोगो के दो खेमे बन जाते थे। एक खेमा हिटलर का पक्ष लेता और दूसरा चर्चिल का। युद्ध किसी भूमि पर लड़ा जा रहा था और प्रभावित हो रहे थे वे लोग जो वहा से हजारो मील दूर थे। वह भीषण युद्ध यूरोप की भूमि पर हो रहा था, तो भारत के अनेक क्षेत्रो मे पक्ष और विपक्ष मे बटे लोग लड रहे थे। न कुछ लेना-देना, फिर भी पक्ष और .विपक्ष के कारण बहुत झगडे हो रहे थे। रगमच शुरू हो गया था। कही की घटना का कही प्रभाव हो जाता है। बीमारी कही होती है, पीडा और कही होती है और इलाज और कही होता है।

ऊट बीमार था। उसके पास ही एक बैल था। आदमी ने लोहे की सलाई आग मे गर्म की। जब वह तप कर अग्निमय बन गई, तब वह आदमी उसे लेकर ऊट को दागने आया। आदमी ठिगना था। हाथ ऊट की थूम तक नही पहुच सका। उसने पास मे खड़े बैल को ही दाग दिया। बीमारी किसी के और चिकित्सा किसी की।

मनुष्य का व्यवहार हर क्षेत्र मे ऐसा ही हो रहा है। सर्वत्र विपर्यय ही विपर्यय है। विपर्यय केवल बीमारी की अवस्था के लिए ही नही होती, उसका प्रवेश प्रत्येक क्षेत्र मे है।

बहुत सारी घटनाए ऐसी होती है जिनका सबध व्यक्ति से नही होता, फिर भी व्यक्ति उस घटना को देख-सुनकर दु खी हो जाता है। घटना दुनिया के किसी भी कोने मे घटित हो, आदमी उसे यहा बैठा हुआ भी भोग लेता है। इस दुनिया मे इतने निमित्त है कि प्रत्येक निमित्त उपादान को जगा देता है और आदमी वैसा बन जाता है।

अध्यात्म तनावमुक्ति का उपाय

इस ससार मे व्यक्ति का जीवन जीना, अपने उपादान का जीवन जीना और निमित्तो के साथ जीना, फिर भी तनावग्रस्त न होना, यह असभव घटना है। इस असभव को हम सभव बनाने का प्रयत्न क्यो करे ? तनाव का निवारण करने वाले स्वय तनावग्रस्त हैं। ऐसी स्थिति मे वे दूसरो को तनावमुक्त कैसे कर सकते हैं ? एक मनोचिकित्सक महिला डाक्टर ने पत्र मे लिखा—'प्रेक्षा-

ध्यान की चर्चा से मुझे बहुत समाधान मिला। मैं स्वय मानसिक तनाव से ग्रस्त थी। अब आपने जो आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन दिया उसका प्रयोग कर मैं लाभान्वित हुई हू और अब मैं अपने मरीजो को भी उस प्रयोग विधि से अवगत कराऊगी।'

जो व्यक्ति स्वयं तनाव से भरा है, वह दूसरो को तनावमुक्त कैसे कर पाएगा ? आज हम जिस जगत् मे जी रहे हैं, वह सारा जगत् तनाव से भरा पडा है। अध्यात्म का मार्ग यदि हाथ न लगे, तो दुनिया मे ऐसा एक भी तत्त्व नही है जो तनाव से मुक्ति दिला सके। धर्म और अध्यात्म की यही उपयोगिता है कि वे व्यक्ति को सारे तनावो से मुक्त करते हैं।

समस्या क्या ? कितनी ?

मनुष्य केवल रोटी के लिए नही जन्मा है। हमने मान लिया रोटी एक बहुत बड़ी समस्या है। बीमारी और अशिक्षा भी एक समस्या है। ये समस्याएं हैं, किन्तु एकमात्र ये ही समस्याएं नही हैं। आज विश्व के नेता अनाज, बीमारी और अशिक्षा की समस्या को मिटाने के लिए कृत-सकल्प हैं। अनेक उपाय खोजे जा रहे हैं। पृथ्वी पर उत्पन्न अन्न से अनाज की समस्या हल न हो सकने के कारण समुद्र पर खेती करने की बात सोची जा रही है। विश्व स्वास्थ्य सगठन इस चेष्टा मे लगा हुआ है कि वह सारे विश्व को सन् २००० तक रोगमुक्त कर देगा। डब्ल्यू० एच० ओ० (W. H. O.) की पत्रिका मे पढ़ा कि यदि विश्व को रोगमुक्त करना है, तो केवल ऐलोपैथिक औषधियो के सहारे उसे रोगमुक्त नही किया जा सकता। उसके पास इतने साधन नही है। उस सस्थान के डाइरेक्टर जनरल ने सुझाया कि हम अपने उद्देश्य मे तभी सफल हो सकते हैं, जब हम प्रचलित चिकित्सा की प्राचीन पद्धतियो को भी प्रोत्साहन दे। ओझा, मान्त्रिक, तान्त्रिक, आदिवासी भील, जर्रे आदि-आदि जिन-जिन पद्धतियो से चिकित्सा करते थे, उन सब पद्धतियो को भी समानरूप से व्यवहार मे लाए। तभी सभव है कि सन् २००० तक रोगो का उन्मूलन किया जा सके। कुछ वर्ष पूर्व तक विज्ञान ने जिन पद्धतियो को अंधविश्वास मानकर छोड़ दिया था, आज उन्ही पद्धतियो को वैज्ञानिक प्रोत्साहन दे रहे है।

चमत्कार : अंधविश्वास

मैं नही जानता, अधविश्वास क्या होता है ? जो आदमी जिस बात को नही ।, उसके लिए अधविश्वास कह देना बहुत सुविधा की बात है। बात को करने का यह सबसे सहज तरीका है। चमत्कार और अंधविश्वास— । शब्द हैं। इनका प्रयोग करो और बात समाप्त। चमत्कार क्या है ?

यह कोई झूठी बात नही है। चमत्कार वह होता है जिसे सब लोग नही कर पाते, कुछेक व्यक्ति ही कर पाते हैं। यदि सब करें, तो वह चमत्कार नही होता।

वेदान्त ने कहा—'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, माया है।' जैनो ने कहा—'जगत् माया है, मृगमरीचिका है। यह बात कहा से आई? मृगमरीचिका एक सत्य है, तभी यह बात कही जा सकती है, नही तो नही कही जा सकती है। कोई कहे मृगमरीचिका झूठ है। रण मे पानी न होने पर भी जो पानी दिखाई देता है, वह मृगमरीचिका है। यदि कही पर पानी का अस्तित्व न हो, तो मृगमरीचिका की बात नही आ सकती। आकाश कुसुम—यह एक कल्पना है। यदि कुसुम का कही अस्तित्व न हो, तो आकाश कुसुम जैसी झूठी कल्पना भी नही की जा सकती। 'बाझ का बेटा'—यह एक प्रयोग है। यदि कही बेटे का अस्तित्व न हो, तो 'बाझ का बेटा' यह प्रयोग नही किया जा सकता। पानी का अस्तित्व है, फूल का अस्तित्व है, पुत्र का अस्तित्व है तभी मृगमरीचिका, आकाश-कुसुम और वध्या-पुत्र—ये प्रयोग चलते है। इसका फलित यह है कि वास्तव मे यदि कोई अनहोनी घटना घटित न हो, तो उसकी झूठी कल्पना भी नही की जा सकती। चमत्कार तभी कहा जा सकता है जब कही न कही वह घटना घटित होती है। सब उसे नही जानते। एक-दो ही उसे जानते है। यही बात अधविश्वास के लिए है। जैसे-जैसे विज्ञान के चरण आगे बढ रहे हैं, वैसे-वैसे अधविश्वास और चमत्कार भी वैज्ञानिक सचाइयो के रूप मे बदलते चले जा रहे हैं।

मानसिक तनाव . कहा कैसे ?

वर्तमान मे रोटी की समस्या, बीमारी और अशिक्षा की समस्या को समाहित करने के लिए अनगिन प्रयत्न हो रहे है। सभी राष्ट्र इस प्रयत्न मे लगे हुए है कि मानवजाति इन तीनो समस्याओ से मुक्त हो। रोटी का अभाव न रहे, बीमारी का आतक न रहे और अशिक्षा का भूत भाग जाए। इन तीनो दिशाओ मे जागतिक प्रयत्न चल रहे है। सारा विश्व एक जूट होकर कार्य कर रहा है। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि रोटी मिल जाने पर भी आदमी तनाव से मुक्त हो जाएगा। किन्तु परिणाम विपरीत देखा गया है। जहा रोटी की समस्या समाहित हो चुकी है, वहा तनाव और अधिक हो गया है। स्वास्थ्य की समस्या सुलझने पर भी तनाव की समस्या सुलझ जाएगी, यह अनिवार्य नही है। सचाई यह है कि जहा औषधिया अधिक सुलभ हैं वहा तनाव बहुत ज्यादा है। मानसिक तनाव को मिटाने के लिए, अनिद्रा के रोग से छुटकारा पाने के लिए लोग अनगिन प्रकार की गोलिया खा रहे हैं। ज्यो-ज्यो गोलियो का प्रचार बढ़ रहा है, प्रयोग और उपयोग बढ़ रहा है, आदमी अधिक से अधिक तनावग्रस्त होता जा रहा है।

जहां स्वास्थ्य की सुविधाए नही हैं, चिकित्सा के प्रयोग सुलभ नही हैं,वहा मानसिक तनाव कम है। इन लोगो की तुलना मे शतांश मात्र है। जो राष्ट्र साक्षर हैं, जहा के नागरिक अशिक्षा से मुक्त है, वे भी तनावग्रस्त है। साक्षरता होने पर तनाव मिट जाएगा, यह कल्पना हो सकती है, पूर्ण यथार्थता नही है।

मूल है उपादान

मनुष्य का एक शाश्वत स्वभाव है। वह केवल रोटी से सतुष्ट नही होता। वह केवल चिकित्सा की सुविधा मिल जाने से सतुष्ट नही होता। वह केवल साक्षर हो जाने मात्र से सन्तुष्ट नही होता। इन तीनो समस्याओ के सुलझ जाने पर भी उसके अन्त करण मे एक टीस वची रह जाती है। उसमे असतोप की ज्वाला धधकती रह जाती है। जव तक यह टीस नही मिटती, यह ज्वाला नही वुझती, तव तक तनाव नही मिट सकता, आदमी सतुष्ट नही हो सकता। वह टीस है—मूर्च्छा। वह ज्वाला है—मूर्च्छा। जव तक मूर्च्छा की चिकित्सा नही होगी, तव तक आदमी मे सतोप नही आएगा। जव तक आदमी सतुष्ट नही होगा, तब तक वह तनाव से मुक्त नही होगा। कैसी विडवना! आज के वडे-वडे मनोवैज्ञानिक, धुरन्धर शिक्षाशास्त्री और भूख की समस्या को मिटाने वाले वैज्ञानिक उन एकागी सिद्धान्तो के आधार पर सारे ससार को सुखमय वनाने का सपना देख रहे है, किंतु उपादान को सर्वथा अस्वीकार कर चल रहे है। उस ओर ध्यान देना वे आवश्यक ही नही मानते। उपादान रहेगा तो कभी-कभी निमित्त आकर उस समस्या को उभार देगा। इसलिए सवसे महत्त्व की वात है कि उपादान पर सारा ध्यान केन्द्रित किया जाए। अध्यात्म की यही महत्त्वपूर्ण देन है। अध्यात्म के लोगो ने सबसे पहले उपादान पर ध्यान दिया। गहरे मे जाकर मूल को पकडा। मूल है—मूर्च्छा। जव तक मूर्च्छा का निदान नही होगा, तव तक तनाव समाप्त नही होगा।

तनाव का मूल—मूर्च्छा

धर्म की समूची आराधना, अध्यात्म की सम्पूर्ण प्रक्रिया, ध्यान का अभ्यास—ये सब मूर्च्छा को समाप्त करने के साधन हैं। मूर्च्छा समाप्त होती है, तो तनाव समाप्त हो जाता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि धर्म, अध्यात्म और ध्यान की प्रक्रियाएं तनावमुक्ति की प्रक्रियाए है।

हम मूल वात पर ध्यान दे। ध्यान के साथ अनुप्रेक्षा का अभ्यास करे। यह तनावमुक्ति का अचूक साधन है। प्रेक्षा का अर्थ है—देखना और अनुप्रेक्षा का अर्थ है—ध्यान मे जो सचाइयां उपलब्ध हो उन्हें स्थिर वनाना, पुष्ट करना और नई आदतो का निर्माण करना।

पदार्थ-प्रतिबद्धता

पदार्थ के साथ हमारा संबंध है। हम पदार्थ के साथ योग करते हैं। पदार्थ के प्रति आकर्षण बढता है। पदार्थ आता है तब सुख देता है और जाता है तब दुःख देता है। पुराना रूपक है। लक्ष्मी आती है तब सुखकर लगती है और जाती है तब दुःखकर लगती है। लक्ष्मी का एक नाम है—दौलत। वह आती है तब लात मारती है और जाती है तब भी लात मारती है। पर आती हुई लात मारती है तो अच्छी लगती है। ऐसा लगता है मानो वह लात नही मार रही है, सहला रही है। जाती हुई लात मारती है, तो बुरी लगती है। ऐसा लगता है मानो गधा दुलत्ती मार रहा हो। यह स्वाभाविक है। पदार्थ आता हुआ अच्छा लगता है और जाता हुआ बुरा लगता है। क्योकि पदार्थ के साथ हमारा गाढ़ सम्बन्ध हो गया है। हम इस सचाई को याद रखे कि यह संसार विरोधी युगलो का संसार है। सब युगल है। अकेला कुछ भी नही। संयोग है, तो वियोग होगा। पक्ष है, तो प्रतिपक्ष होगा। यदि इस सचाई को जान जाते (केवल मानते ही नही, जान लेते); तो हमारी यह भ्रान्ति टूट जाती कि जो एक बार मिल गया, वह मिल ही गया। वह संयोग सदा बना रहेगा, वियोग होगा ही नही, तब हमे किसी वियोग पर, चाहे वह पदार्थ का हो या व्यक्ति का, कभी कष्ट नही होगा। तब लगेगा कि यह तो स्वाभाविक क्रम है। संयोग के बाद वियोग का क्रम अवश्यभावी है। संयोग होना आश्चर्य है, वियोग होना कोई आश्चर्य नही है। इस शरीर के पिंजडे मे नौ द्वार सदा खुले रहते हैं। इस पिंजडे मे प्राण का एक पछी बैठा है, यह आश्चर्य है। चला जाए, यह आश्चर्य नही है, क्योकि जाने के, एक नही नौ द्वार खुले है।

संयोग और वियोग दो नही है। ये दोनो एक ही कपडे के दो छोर हैं। एक छोर है—संयोग और दूसरा छोर है—वियोग। दोनो को कभी पृथक् नही किया जा सकता। यदि इस सचाई को समझा होता, तो आदमी संयोग होने पर सुखी और वियोग होने पर दुःखी नही होता।

प्रेक्षा अनुप्रेक्षा

प्रेक्षा के साथ अनुप्रेक्षा बहुत जरूरी है। इसलिए कि मूर्च्छा छूटे, भ्रान्तियां टूटें। हमने अनेक प्रकार की मूर्च्छाएं और भ्रान्तियां पाल रखी है। हमे पदार्थ के चले जाने का कष्ट नही होता। हमे अपनी भ्रान्ति के टूटने का कष्ट होता है। जब यह मान लिया—'यह मेरा है' और जब यह छूट जाता है, तब यह भ्रान्ति टूटती है कि जिसे मैंने अपना मान रखा था, वह तो चला गया, मेरा नही रहा। वह भ्रान्ति का टूटना कष्ट देता है, कचोटता है। इसके स्थान पर यदि माना जाए

कि मेरा कोई नही है, तो उसके चले जाने पर भी कोई कष्ट नही होगा। इस सचाई को गहराई से पकडें कि पदार्थ के आने-जाने से सुख-दु ख नही होता। वह होता है पदार्थ को अपना मानने या न मानने से। प्रथम श्रवण मे यह बात विपरीत-सी लगती है, पर है यह सचाई। आदमी पदार्थ और व्यक्ति से अपने आप को इतना अभिन्न मान लेता है कि उसके मन मे एक भ्रान्ति पनप जाती है। जब अभिन्नता खडित होती है तब साथ-साथ भ्रान्ति भी खडित होती है। भ्रान्ति का खडित होना दु:ख का कारण बनता है। हम भ्रान्तियो को न पालें।

भ्रान्तियों का विघटन

अनुप्रेक्षा का प्रयोजन है—भ्रान्तियो को खडित करना। मनुष्य जितनी ज्यादा भ्रान्तियां पालता है उतना ही अधिक वह दु खी बनता है। प्रेक्षा-ध्यान के द्वारा हम सचाइयो को जाने और अनुप्रेक्षा के अभ्यास से उन भ्रान्तियो को तोड़ें।

पहली अनुप्रेक्षा है—अनित्य अनुप्रेक्षा। कोई भी सयोग या सबध शाश्वत नही है। युगल है। कुछ शाश्वत है, कुछ अशाश्वत। कुछ नित्य है, कुछ अनित्य। दोनो साथ-साथ चलते हैं। ससार मे कुछ भी शाश्वत नही है एक भी सयोग ऐसा नही है जो नित्य हो। वह सयोग है, अनित्य है। कभी नित्य नही होगा। किन्तु मूर्च्छा के कारण सयोग को नित्य मान लिया जाता है। अनित्य को नित्य मान लिया जाता है। दु ख का बीजारोपण यही से शुरू हो जाता है। जब उस पदार्थ या व्यक्ति से विसबंध होता है तब दु ख उभर आता है। क्या यह पदार्थ या व्यक्ति के वियोग से उत्पन्न दु ख है? नही, यह अनित्य को नित्य मानने की भ्रान्ति के टूटने का दु ख है। मनुष्य का स्वभाव ही है कि वह पहले झूठी मान्यताओ का महल खड़ा करता है और उनके टूटने पर दु:खी होता है।

प्रेक्षा-ध्यान का अभ्यास करने वाला व्यक्ति प्रारभ से ही सावधान हो जाता है। वह भ्रान्तियो के वात्याचक्र मे नही फंसता। वह सचाइयो के साथ जीने का प्रयत्न करता है। ध्यान की सबसे बड़ी उपलब्धि है कि व्यक्ति सचाइयो को स्वीकार करे और उनके साथ जीना प्रारम्भ करे। जो व्यक्ति ध्यान नही करता, मन को एकाग्र नही करता, मन के मलो का प्रक्षालन नही करता, मलो का संचय करता चला जाता है, वह अनेक प्रकार के असत्यो के साथ जीता है। वह व्यक्ति अनेक कठिनाइयो को पालता है, उन्हे पोषण देता है।

छोटा बच्चा सड़क के किनारे खेल रहा था। किसी ने कहा—'सड़क पर मत खेलो। मोटरें बहुत चलती हैं। कोई मोटर ऊपर से न निकल जाए।' बच्चे ने कहा—'कोई परवाह नही है। मेरे ऊपर से रोज दस हवाईजहाज निकलते हैं। आज तक कुछ नही बिगड़ा। एक मोटर के निकल जाने से क्या होगा?'

ऐसी भ्रान्तिया एक नही हजारों हैं। सभी आदमी भ्रान्तिया पालते हैं। अपवाद कोई नही है। भ्रान्ति के समर्थन मे व्यक्ति तर्क खडा कर देता है। बुद्धि का व्यायाम होता है। तर्कों का द्वार खुल जाता है। तर्क ने आदमी को जितना भ्रान्त बनाया है उतना अज्ञान ने नही बनाया है। तार्किको, पडितो और तथाकथित उपदेशको ने जितनी भ्रान्तिया पैदा की है, उतनी और किसी ने नही की है। ऐसे-ऐसे तर्क होते हैं कि वे आदमी को सत्य तक पहुचने ही नहीं देते। आज मान्यताओ का इतना बडा मायाजाल बिछा हुआ है कि आदमी उससे बाहर निकल नही पाता। उनसे मुक्त होने की बात भी नही सोच सकता।

वैशाखी की दुनिया

हमारा सूत्र है—**अप्पणा सच्च मेसेज्जा**—अपने आप सत्य को खोजो। धर्म का सूत्र भी यही है—स्वय सत्य की खोज करो। दूसरो के भरोसे मत रहो। मैं यह कहना नही चाहता कि कोई दूसरे के मार्गदर्शन मे न चले। बीमार को यदि मैं कहू कि वैशाखी के सहारे मत चलो, तो वह न्याय नही होगा। किन्तु जन्मते बच्चे को वैशाखी लगादी जाए और उसे यह सिखाया जाए कि सदा वैशाखी के सहारे चलते रहो, अपने पैरो के सहारे चलोगे तो न जाने कब लडखडा कर गिर पडोगे, तब सारी दुनिया वैशाखी की दुनिया हो जाएगी। पैरो के सहारे चलने वाली दुनिया ही समाप्त हो जाएगी। छोटा बच्चा मा की अगुली पकड कर चले, तो चल सकता है, किन्तु मा बच्चे को यही सिखाए कि जब भी चलो तब अगुली के सहारे ही चलो। अपने पैरो पर कभी भरोसा मत करना। यदि ऐसा होगा, तो सारी दुनिया लगडी बन जाएगी, अपने पैरो पर चलने वाली दुनिया नही होगी।

शास्त्र-चेतना अधी है

यदि धर्म यह सिखाए कि जो कुछ शास्त्र कहते है, वही मानकर चलो तो आदमी अधा बन जाएगा। उसके देखने की शक्ति नष्ट हो जाएगी। मानने की भी एक अवस्था होती है। जीवन भर आदमी मानता ही चले, जानने का प्रयत्न ही न करे, तो वह सत्य तक कभी नही पहुच पाएगा। धर्म कहता है—मानने को समाप्त कर जानने की सीमा मे प्रवेश करो और स्वय सत्य को खोजो। प्रेक्षा की प्रक्रिया सत्य को खोजने की प्रक्रिया है। मैं कहू—पदार्थ अनित्य है और आप इसे मानते चले जाए, तो बहुत बडी भ्रान्ति मन मे घर कर लेगी। किन्तु जब आप प्रेक्षा और अनुप्रेक्षा के अभ्यास से शरीर-प्रेक्षा करेंगे, तो पता लगेगा कि कितने प्रकपन हो रहे हैं। सारा का सारा स्पदन ही स्पदन है। जो प्रकंपन है, वह शाश्वत नही होता, नित्य नही होता। वह अनित्य होता है।

प्रेक्षा : स्व-अवगति

जगत् मे दो प्रकार के पदार्थ हैं—प्रकप और अप्रकप। सारा प्रकप अनित्य है। प्रकप आता है, नष्ट होता है। दूसरा आता है, नष्ट होता है। यह प्रकंपन का ज्ञान, अनित्यता का बोध अपने अनुभव से जागे। शरीर-प्रेक्षा करने वाले को यह सहज अनुभव हो सकता है। यह स्वय जानने की प्रक्रिया है। यही स्वय सत्य को खोजने की प्रक्रिया है। ध्यान और अनुप्रेक्षा की प्रक्रिया इसे और गतिमान करती है।

विसंबंध की चेतना

अनुप्रेक्षा का पहला सूत्र है—अनित्य अनुप्रेक्षा। हम इसका अनुभव करें कि ससार मे जो भी है सारा अनित्य है। कोई सबध शाश्वत नही है। हम प्रेक्षा करते-करते इस सचाई तक पहुचें कि जितने सयोग है वे सारे वियोग वाले हैं। अगर इस सचाई तक पहुच जाते है, तो अशाश्वत को शाश्वत मानने की भ्रान्ति खडित हो जाती है और पदार्थ के वियोग से होने वाले सारे सताप समाप्त हो जाते हैं। उससे नई आदत और नए सस्कार का निर्माण होता है। जैसे पदार्थ के संबध से एक आसक्ति का सस्कार बनता है और वह सस्कार पदार्थ के चले जाने पर दु ख देता है वैसे ही पदार्थ के विसबध का संस्कार अनुप्रेक्षा के द्वारा निर्मित हो जाए, तो आदमी कभी सतप्त नही होगा। आदमी प्रतिदिन अनुप्रेक्षा के द्वारा इस सचाई का अनुभव करे कि वियोग पहला छोर है, सयोग दूसरा छोर है। वियोग पहला द्वार है, सयोग दूसरा द्वार है। उसे दोनो सचाइया एक साथ प्रतीत होने लग जाए। सबध की भांति विसबध की आदत भी निर्मित हो जाए, तो आदमी यथार्थ के जगत् मे जी सकता है और यथार्थ के जगत् मे घटित होने वाली यथार्थ की समस्याओ को यथार्थ की भूमिका पर खड़े होकर सामना कर सकता है।

१४. अप्पाणं सरणं गच्छामि

१. परस्परोपग्रहो जीवानाम् ।

२. दो पक्ष—

- व्यवहार · निश्चय ।
- समाज व्यक्ति ।
- वहिर्मुखता अन्तर्मुखता ।

३. शरण कौन ? अशरण कौन ?

- ज्ञान आदि मे परिणत आत्मा शरण ।
- कषाय मे परिणत आत्मा अशरण ।

४. व्यक्ति · समाज ।

- व्यक्ति का अर्थ है—अन्तर्मुखता ।
  समाज का अर्थ है—वहिर्मुखता ।
- व्यक्ति का अर्थ है—सकुचन ।
  समाज का अर्थ है—विस्तार ।
- व्यक्ति का अर्थ है—सबधातीत होना ।
  समाज का अर्थ है—सबधो से जकडे रहना ।
- व्यक्ति का अर्थ है—आत्म-निरीक्षण ।
  समाज का अर्थ है—पर-निरीक्षण ।
- व्यक्ति है—ध्यान का सूत्र ।
  समाज है—ज्ञान का सूत्र ।

५. पच परमेष्ठी की शरण मे जाना—अपनी शरण में जाना है ।

चौदह

शरण-विवेक

एक भाई ने कहा—हम प्रतिदिन इस सूत्र को दोहराते है—**अरहते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि**—मैं अर्हत् की शरण मे जाता हू, मैं सिद्ध की शरण मे जाता हूं।' हम दूसरो की शरण मे क्यो जाएं? जव सव कुछ पुरुपार्थ के द्वारा उपलव्ध होता है तव दूसरो की शरण क्यो?

जो दूसरो की शरण मे जाता है वह खाली हाथ लौटता है। उसे कुछ भी उपलब्ध नही होता। जो अपनी शरण मे जाता है वह सव कुछ पा लेता है। अर्हत् की शरण मे जाना, सिद्ध की शरण में जाना, साधु की शरण मे जाना और धर्म की शरण मे जाना, किसी दूसरे की शरण मे जाना नही है, यथार्थ मे वह अपनी ही शरण मे जाना है। कोई व्यक्ति कहता है—'सत्य शरण गच्छामि', मैं सत्य की शरण मे जाता हूं। सत्य की शरण मे जाना अपने आपकी शरण मे जाना है। आत्मा की शरण मे जाना, सत्य की शरण मे जाना और अर्हत् की शरण मे जाना एक ही वात है।

अर्हत् वह होता है जिसकी सारी अर्हताए व्यक्त हो जाती है। कोई भी अर्हता छिपी नही रहती। हर आत्मा मे अनन्त अर्हताए है। जिसकी सारी अर्हता, क्षमता, योग्यता या शक्ति अभिव्यक्त हो जाती है वह अर्हत् वन जाता है। अर्हत् की शरण मे जाने वाला अपनी आत्मा की योग्यता की शरण मे जाता है, अपनी शक्ति की शरण मे जाता है।

शक्ति-परिचय

व्यक्ति को अपनी शक्ति का ज्ञान नही होता। यह सवसे वड़ा आश्चर्य है। वे शक्तिया छिपी हुई रह जाती हैं। कोई भी व्यक्ति ऐसा नही है, जिसमे शक्तियां न हो। बहुत कम लोग ऐसे हैं जिन्हें अपनी शक्तियों का भान हो। बहुत कम लोग ऐसे हैं जो अपनी शक्तियों का पूरा उपयोग करते हो। मनोविज्ञान कहता

है कि आदमी अपने मस्तिष्कीय शक्ति का केवल पन्द्रह प्रतिशत भाग ही उपयोग मे ले पाता है, शेष पचासी प्रतिशत भाग सुप्त ही रह जाता है। वह जागृत ही नही होता। हमारे शरीर मे भी बहुत शक्तियां हैं, पर उनका भी पूरा उपयोग नहीं हो पाता। प्रत्येक व्यक्ति अपनी शारीरिक शक्ति का जितना उपयोग करता है और जिसे नॉरमल शक्ति माना जाता है, उससे सात गुना अधिक शक्ति उसने सदा सचित रहती है, किन्तु वह कभी उसका पूरा उपयोग नहीं कर पाता। जब शक्ति क्षीण हो जाती है तब कभी-कभी वह काम मे आती है। किसी व्यक्ति का एक पैर कमजोर हो जाता है तो दूसरा पैर अधिक काम करने लग जाता है। एक हाथ कमजोर हो जाता है तो दूसरा हाथ अधिक काम करने लग जाता है। एक आख कमजोर होती है तो दूसरी आंख अधिक सक्रिय हो जाती है। एक कान कम सुनने लगता है तो दूसरा कान अधिक सवेदनशील हो जाता है। शरीर में शक्ति सचित रहती है और शरीर की यह व्यवस्था है कि जब कोई एक अवयव कमजोर होता है तो शरीर उसका भार दूसरे अवयव पर डाल देता है और दूसरा अवयव उस दायित्व को सम्भाल लेता है और भलीभांति उन दायित्व का निर्वाह भी करता है। शरीर, नाड़ी-सस्थान और मस्तिष्क मे शक्ति सचित रहती है। हम इसे नही जानते, इसीलिए सुप्त या सचित शक्तियों को जागृत करने का प्रयत्न नही करते। वास्तव मे शक्ति-जागरण की प्रक्रिया से बहुत कम लोग परिचित हैं। वे उपाय नही जानते। आदमी यदि अपनी शक्तियों से परिचित हो और शक्ति-जागरण की प्रक्रिया को जानता हो तो वह बहुत कुछ कर सकता है।

वैज्ञानिक तथ्य

वैज्ञानिकों ने यह खोज की कि आदमी की औसत आयु डेढ़ सौ वर्ष की होती है। इस अवधि तक हर आदमी को जीना चाहिए, पर जीता नहीं है। इस खोज का आधार है—मेच्यूरिटि, सवयस्कता। जिस अवस्था मे सवयस्कता प्राप्त होती है उससे छह गुनी उम्र होती है। कुत्ते की सवयस्कता ढाई वर्ष मे होती है तो उसकी औसत आयु पन्द्रह वर्ष की मानी गई है। आदमी की सवयस्कता पचीस वर्ष मे होती है तो उसकी उम्र डेढ़ सौ वर्ष की होनी चाहिए। यह विज्ञान के द्वारा गणित की भाषा मे खोजा गया सत्य है। यह सही भी लगता है। पर आदमी इतना लम्बा नही जी पाता। उसमे जीने की शक्ति है, क्षमता है, पर वह जी नहीं पाता। इसके दो कारण हैं—शक्तियों से अपरिचय और खान-पान की अविधि। कुछ वर्ष पूर्व तक आदमी यदि पचास वर्ष का होकर मरता तो लोग मानते बूढ़ा होकर मरा है, कोई बात नहीं है। आज यदि आदमी सत्तर-अस्सी वर्ष का होता है फिर भी उसे बूढा नही माना जाता। यह सोचने का अन्तर आ गया है। एक बात और है। उस समय ४०-४५ वर्ष का आदमी बूढा जैसा लगने लग

था। आज वैसी स्थिति नही है।

अल्प आयुष्य क्यों ?

आयु कम होने के दो कारण हैं—भोजन और तनाव। स्थानाग सूत्र मे अकाल-मृत्यु के सात कारण वतलाए हैं। उनमे एक है अतिभोजन और दूसरा है—अभोजन। अतिभोजन से भी अकाल-मृत्यु होती है और अ-भोजन से भी अकाल-मृत्यु होती है। कुछ लोग अतिभोजन का समर्थन करते है। वे मानते हैं कि जो ज्यादा खाता है वह ज्यादा शक्तिशाली होता है, वह ज्यादा काम करता है। यह कितनी भ्रान्त धारणा है !

अति-भोजन

भोजन के सम्वन्ध मे समय-समय पर अनेक मान्यताए प्रचलित होती रहती है। एक युग आया केलौरी का। यह माना जाने लगा कि प्रत्येक व्यक्ति को एक दिन मे इतनी केलौरी अवश्य लेनी चाहिए। चीनी मे अधिक केलौरी होती है—यह जानकर लोग चीनी को अधिक खाने लगे। परिणामस्वरूप अनेक वीमारिया होने लगी। उस पर नियत्रण किया गया। फिर प्रोटीन का युग आया। मान्यता वन गई कि प्रोटीन अधिक खाना चाहिए। मैंने पहले जो कहा कि पचास वर्ष पूर्व लोग अल्पायु मे मर जाते थे, उसका एक कारण यह था कि वे प्रोटीन अधिक मात्रा मे खाते थे। घी, दूध, मक्खन और दाल—इनमे प्रोटीन अधिक होता है। लोग इन्हे ज्यादा खाते। इनको पचा पाना सरल नही था, अत अनेक वीमारिया पनपी। लोग अकाल मे ही मृत्यु-कवलित हो जाते। यह आयुष्य की कमी का भी कारण वना। तीसरा युग आया विटामिन का। लोग विटामिन की गोलियो का अंधाधुन्ध प्रयोग करने लगे। इस अति प्रयोग से लाभ के वदले हानि अधिक हुई। इस मात्रा की अति के कारण अकाल-मृत्यु हो लगी।

अ-भोजन

जिस प्रकार अति-भोजन अकाल-मृत्यु या अल्प आयुष्य का कारण बनता है वैसे ही अ-भोजन भी अकाल मृत्यु या अल्प आयुष्य का कारण बनता है। अ-भोजन का अर्थ भोजन का न मिलना ही नही है किन्तु अपोषक भोजन भी है। जैसे भोजन नही करने वाला कुछ दिन जीवित रहता है, वैसे ही अपोषक भोजन करने वाला कुछ ही दिन जीवित रहता है। शरीर-निर्वाह के लिए पर्याप्त पोषण आवश्यक होता है। तीन शब्द हैं—पोषण, अपोषण और कुपोषण। ये भोजन की तीन अवस्थाए वन जाती है। एक है अपोषण की अवस्था। जव शरीर-तन्त्र को चलाने के लिए पर्याप्त मात्रा मे पोषण नही मिलता तव वह रोग-ग्रस्त हो जाता

है, क्षीण होने लग जाता है। इससे मन भी प्रभावित होता है। उसमे भी विकृति उत्पन्न हो जाती है। पहले यह माना जाता था कि मस्तिष्क की वीमारी, स्नायविक दुर्वलता, चित्त की विकृति और मानसिक पागलपन—ये सव मन की अवस्था से, मन की विकृति से होते है। किन्तु नई खोजो ने यह सिद्ध कर दिया कि अपोषण से भी मानसिक पागलपन पनपता है। जव स्नायुओ को पूरा पोषण नही मिलता तव धीरे-धीरे आदमी पागलपन की ओर वढता जाता है। ऐसे प्रयोग किए गए कि जो पागल थे उन्हे पर्याप्त पोपण दिया गया। वे स्वस्थ हो गए। उनका पागलपन मिट गया। आज किसी भी वीमारी की चिकित्सा केवल मन के आधार पर या केवल शरीर के आधार पर ही नही की जाती, किन्तु सयुक्त चिकित्सा की जाती है। उसे मनोकाय-चिकित्सा कहा जाता है। वीमारिया भी मनोकायिक और चिकित्सा भी मनोकायिक।

विपरीत भोजन

जैसे अपोषण के कारण अनेक प्रकार की वीमारिया पैदा होती है वैसे ही कुपोषण के द्वारा भी अनेक वीमारिया पैदा होती है। कुपोषण का अर्थ है—विपरीत पोषण। आयुर्वेद मे इस विपय की विशद चर्चा प्राप्त है। आज के डॉक्टर भी इस ओर आकृष्ट हुए हैं। विपरीत भोज्य पदार्थो से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। खरबूजे के साथ शहद लेना या दूध लेना विरुद्ध भोजन है। माना जाता है कि आम के साथ चीनी नही खानी चाहिए। यह भी नुकसानकारक होती है। इस प्रकार आज का आदमी स्वाद के कारण अनेक प्रकार के विरुद्ध भोजन किए जा रहा है। रोग की उत्पत्ति मे यह भी एक प्रमुख कारण है। इससे आयुष्य भी कम होता है क्योकि शरीर-तत्र असमय मे ही क्षीण हो जाता है। इससे अनेक विष जमा होते हैं।

इस प्रकार अनेक व्यक्ति भोजन सबधी अपने अज्ञान और भ्रान्त धारणाओ के कारण तथा जीवन-चर्या के नियमो की अनभिज्ञता के कारण अकाल-मृत्यु की ओर वढ रहे है।

क्यो का प्रश्न

यह सारी चर्चा इस सन्दर्भ मे की गई है कि अकाल-मृत्यु क्यो होती है? वीमारिया क्यो होती है? आदमी पागल और दुखी क्यो होता है? ये सब इसीलिए घटित होते हैं कि आदमी सत्य की शरण मे नही जाता, अपने आप की शरण मे नही जाता। वह दूसरो की शरण खोजता है, पर अपनी शरण नही खोजता, अपनी शक्तियो की शरण नही खोजता। यह सबसे वडा खतरा है।

मा की शरण मृत्यु वन गई

एक भाई ने वताया कि एक वड़े डॉक्टर ने उसके वच्चों का ऑपरेशन किया और नई समस्या पैदा हो गई। वीमारी थी पैर की और ऑपरेशन किया अपेन्डिसाइड का। ऑपरेशन से ठीक नही हुआ। वडे से वड़ा डॉक्टर कहता कि दो लाख रुपये खर्च होगे तव कही यह वच्चा ठीक हो सकता है, अन्यथा नही। वड़े डॉक्टरो की शरण मे जाना भी खतरे से खाली नही होता। जहा शरण दूसरे की है, वहा खतरा निश्चित है।

वच्चे को ज्वर आ गया। कई दिन वीत गए। वैद्य ने खाने पर नियत्रण कर दिया। दूध और रूखी रोटी दी जाने लगी। वच्चा छोटा था। एक दिन उसने दूसरे वच्चो को मिठाई खाते देख लिया। उसका मन मिठाई खाने के लिए ललचा उठा। पिताजी से कहा, भाई और वहन से मिठाई मागी। किसी ने नही दी, तव वह मा के पास पहुचा। मा का मन पिघल गया। सोचा, वहुत दिनो से वच्चे ने कुछ नही खाया। इसका मन मिठाई के खाने लिए ललचा रहा है। एक लड्डू दे दू तो क्या फर्क पड़ेगा। वच्चे को लड्डू मिल गया। उसने वड़े स्वाद से उसे खाया। ज्वर का प्रकोप वढा और तीन ही दिनो मे वच्चा मर गया। मा की शरण भी वच्चे के लिए खतरा वन गई।

शरण-अशरण की सीमारेखा

जहा भी दूसरे की शरण है वहा स्व से व्यवधान पैदा हो जाता है। जव व्यक्ति अपने से हटकर दूसरे के पास चला जाता है वहा खतरे की सभावना को अस्वीकार नही किया जा सकता। यह मैं कहना नही चाहता कि आप दूसरो की शरण ले ही नही, क्योकि सामाजिक वधनो को तोड़ने की वात मैं कैसे कहू ? मैं आपको सर्वथा असहाय, अत्राण और अशरण होने की वात नही कह सकता। किन्तु इस सचाई से अवश्य ही अवगत कराना चाहता हू कि जहा हम शरण समझते है वहा शरण होता भी है और नही भी होता। अशरण को शरण मान लेने पर वहुत वडी भ्रान्ति होती है।

महावीर ने कहा—'नाल ते तव ताणाए वा, सरणाए वा'—जिस परिवार को मनुष्य त्राण और शरण मानता है, वह परिवार कभी त्राण और शरण नही हो सकता। न तुम उसे त्राण और शरण दे सकते हो और न वह तुम्हे त्राण और शरण दे सकता है। यह सामाजिक सवधो को तोडने जैसी वात लगती है।

व्यक्ति क्या ? समाज क्या ?

मनुष्य दो आयामो मे जीता है। एक है व्यक्ति का आयाम और दूसरा

है समाज का आयाम। कोई भी व्यक्ति पूरा व्यक्ति भी नही होता और पूरा समाज भी नही होता। वह व्यक्ति का जीवन भी जीता है और समाज का जीवन भी जीता है। व्यक्ति का अर्थ है—अन्तर्मुखता और समाज का अर्थ है—वहिर्मुखता। व्यक्ति का अर्थ है—सकोच और सिकुडन और समाज का अर्थ है—फैलाव और विस्तार। व्यक्ति का अर्थ है—सवधातीत होना और समाज का अर्थ है—सम्वन्धो की परिस्थापना, संवधो का जीवन। व्यक्ति का अर्थ है—आत्म-निरीक्षण, अपनी समस्याओ का विश्लेपण करना और समाधान खोजना। समाज का अर्थ है—जागतिक समस्याओ का संदर्भ खोजना और उनका समाधान ढूढना।

समाज का सूत्र है—अनुकरण

जीवन के दो पहलू हैं—अन्तर्मुखता और वहिर्मुखता। हम आखे वन्द कर अपने भीतर झाकते है और आखें खोलकर दूसरे की ओर झाकते हैं। जहा समाज है वहा अपने आपको देखने की कोई जरुरत नही, स्वय को देखने की वात वहां प्राप्त नही होती। वहा हमेशा दूसरो को देखने की वात आती है। समाज का सूत्र है—अनुसरण, अनुकरण। दूसरो के पीछे चलो। जो पैर उठ चुके है, जो पदचिन्ह अंकित हो चुके है, जो मार्ग जम चुके है, उन पर चलो। नया मार्ग मत बनाओ। समाज मे रहने वाला व्यक्ति अनुकरण करता चला जाता है। वह मकान वनायेगा तो देखेगा कि दूसरे ने कैसा मकान वनाया है। कपडे वनायेगा तो देखेगा कि दूसरे ने कैसे कपडे वनाए हैं। वह अपनी सुविधा या असुविधा का विचार नही करेगा। वह यही देखेगा कि दूसरो ने कपडे वनाए है, कैसे पहनते हैं, कब पहनते है। फेशन के वदलने और विस्तृत होने का यही आधार है। अनुकरण ही फेशन का दृढ आधार है। प्रत्येक व्यक्ति अनुकरण-प्रिय होता है। वह अपना स्वतत्र जीवन नही जीता। वह सदा दूसरो को देखकर अपना जीवन चलाता है। समाज के सदर्भ मे जीने वाला कोई भी व्यक्ति ऐसा नही हो सकता जिसके लिए अपना थर्मामीटर, अपना तराजू या अपना कोई मानदड हो, अपना स्टेन्डर्ड हो। थर्मामीटर, तराजू और मानदड सदा दूमरे का रहेगा। व्यक्ति वही आचरण करना चाहता है जो समाज के अधिकाश लोग करते है। यह वहुमत का राज्य है।

एक पागल था। वह पागलखाने मे भरती हो गया। कुछ लोग उसे गए। वातचीत की तो ज्ञात हुआ वहुत वडा विद्वान् है, समझदार है। पूछा—भाई! तुम यहा कैसे आ गए? उसने कहा—क्या करू, मेरे लोग पागल थे। एक मैं ही समझदार था तो गाव वालो ने सोचा वाहर रहेगा तो अच्छा नही है, उन्होने मुझे यहा भेज दिया।

यहां सब अनुकरण होता है। बहुमत चलता है। यदि बहुमत पागलो का होता है तो समझदार को भी पागल करार दे दिया जाता है और बहुमत यदि चोरो का होता है तो एक ईमानदार को चोर बना दिया जाता है। यह बहुत ही कम सभव है कि जहा हजारो-हजारो लोग बेईमानी और अप्रामाणिकता का जीवन जीते हो, वहां कोई दो-चार आदमी ईमानदारी और प्रामाणिकता का जीवन जी सके। एक भाई ने बताया। वह आसाम गया, नौकरी की तलाश मे। एक सेठ ने कहा—'तुम्हे अच्छा वेतन दूगा। मेरे यहा काम भी हल्का ही है। केवल दो नम्बर के खाते संभालना है।' उसने कहा—मैं अणुव्रती हूं। यह काम नही कर सकूगा।' सेठ ने कहा—'यहा आए ही क्यो ? जाओ, घर मे मौज करो।'

वह दूसरे स्थान पर गया। वहा मिलावट का काम होता था। वहा भी उसे नौकरी नही मिली। वह घर चला आया।

इसका फलित यह होता है कि जिस समाज मे बहुत लोग अप्रामाणिक हो, वहा कुछेक लोग प्रामाणकिता का जीवन जी सके, यह असभव बात है। समाज का सारा काम बहुमत के आधार पर चलता है। इसीलिए एक विचारक ने कहा—बहुमत का अर्थ है—नास्तिकता। यह उचित है, क्योकि जहा बहुमत के आधार पर काम होता है, वहा सत्य नही हो सकता। वहा इच्छा का राज होता है, इच्छा चलती है।

समाज का सूत्र है—अनुसरण और अनुसरण का अर्थ है—विस्तार। जहा विस्तार है वहा निर्मलता रह नही सकती। निर्मलता अन्तर्मुखता मे होती है। जहां बहिर्मुखता है, दूसरो को देखने की प्रवृत्ति है वहा प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का निर्धारण दूसरो के आधार पर करता है, वहा सत्य की बात नही हो सकती, वहां मात्र अनुसरण होता है।

व्यक्ति का अर्थ

जीवन का दूसरा पक्ष है—व्यक्ति का जीवन। व्यक्ति का अर्थ है—सिकुडना, संकुचन, अनुसरण की समाप्ति, दूसरो को न देखना, स्वय को देखना, अपना विश्लेषण, अपनी खोज, अपना चिन्तन, अपनी समस्या और अपना समाधान।

ध्यान व्यक्ति : ज्ञान समाज

ध्यान का सूत्र है—व्यक्ति और ज्ञान का सूत्र है—समाज। ज्ञान और ध्यान में बहुत बड़ा अन्तर है। ज्ञान समाज के आधार पर चलता है और ध्यान व्यक्ति के आधार पर चलता है।

चेतना के दो स्तर हैं—चल और स्थिर। जो चेतना चल है वह ज्ञान

कहलाती है और जो चेतना स्थिर है वह ध्यान कहलाती है। ज्ञान और ध्यान दो नही हैं। इतना ही अन्तर है कि जो ज्ञान चचल है वह ज्ञान कहलाता है और जो ज्ञान स्थिर है वह ध्यान कहलाता है।

व्यक्ति और समाज भी दो नही है। जहा व्यक्ति दूसरो को देखता है वह व्यक्ति समाज है और जहा व्यक्ति अपने आपको देखता है वह समाज व्यक्ति है।

सत्य-शरण की इयत्ता

इसलिए जो समाज की शरण मे जाता है वह सत्य की शरण मे नही जा सकता। सत्य की शरण मे जाने के लिए व्यक्ति को व्यक्ति रहना जरूरी है, सपर्कों को तोडना जरूरी है और सारे सबधो को काटना जरूरी है। महावीर ने कहा कि परिवार तुम्हे त्राण नही दे सकता, तुम परिवार को त्राण नही दे सकते। यह समाज तोडने की बात नही है, यह अपने अस्तित्व के साथ जुडे हुए विराट् सत्य को देखने का सूत्र है।

समाज का सूत्र . परस्परोपग्रह

व्यक्ति मे एक भय है। वह सोचता है—यदि अध्यात्म की दिशा मे प्रस्थान होगा तो व्यक्ति रहेगा, समाज टूट जाएगा, व्यवहार समाप्त हो जाएगा और तब व्यक्ति अव्यावहारिक और अनुपयोगी बन जाएगा। यह काल्पनिक भय है। इस भय के कारण आदमी ने बहुत सचाइयो को नकार दिया और एक-एक कर अनेक सचाइयो का गला घोट दिया। क्या सत्य के कारण समाज टूटता है ? क्या कभी यह सभव है ? सचाई तो यह है कि सत्य के आधार पर समाज और अच्छे रूप मे चल सकता है। किन्तु व्यक्ति ने विपरीत मान लिया कि सत्य से समाज टूटता है, सत्य से परिवार टूटता है। सत्य से व्यक्ति अकेला और अव्यावहारिक बन जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वही समाज चल या टिक सकता है जो असत्यो को आश्रय देता है, उन्हे पालता है, उनका पोषण करता है। यह गलत धारणा है। समाज का मूल आधार है—सत्य। समाज का विकास होता है अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य के आधार पर। समाज का विकास होता है—अचौर्य और अपरिग्रह के आधार पर। समाज निर्माण के ये पाच सूत्र है। समाज रचना के आदि-काल मे इन्ही पाच सूत्रो का पालन किया जाता रहा। इन्ही के आधार पर समाज अस्तित्व मे आया। जब लोग जगल मे रहते थे, अकेले थे, न परिवार था और न कोई सबध, तब समाज नही था। लोग मासाहारी थे। एक प्रकार से वे हिंसक पशु का जीवन जीते थे। भूख को शांत करने के लिए वे आदमी को भी मार डालते थे। जब समाज बना, गांव बसा तो उसका आधार सूत्र था—'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' जीव जीते है एक दूसरे को आधार देकर। बिना इस उपग्रह या

आलम्बन के कोई जीव जीवित नहीं रह सकता। इसके अभाव में एक दूसरे को मारना, काटना—यही पनपेगा। 'जब तक अहिंसा का भाव विकसित नही होता तब तक एक प्राणी दूसरे प्राणी के साथ रह नही सकता। यह अहिंसा का भाव गांव या समाज के निर्माण का आधार बना। सभी व्यक्तियो ने यह समझौता किया कि हम साथ रहेगे। किसी को घात नही पहुचायेंगे। किसी को नही मारेंगे। गावो मे व्यापार इसी सूत्र पर विकसित हुआ कि कोई विश्वासघात नही करेगा, कोई किसी को धोखा नही देगा, किसी न किसी की सपत्ति नही हड़पेगा, अप्रमाणिकता नही बरतेगा। इन सूत्रो के आधार पर व्यवसाय का विकास हुआ। लाखो-करोड़ो का लेन-देन बिना लिखा-पढी के होता था। न साक्षी और न और कुछ। सब कुछ जबानी लेन-देन। विश्वास की यह पराकाष्ठा थी। जबान का मूल्य जीवन से बढकर था। बात को रखने के लिए मृत्यु-वरण स्वीकार करना सहज-सरल बात थी।

जबान का मूल्य

गुजरात के एक प्रसिद्ध सेठ थे—भैंसाशाह। वे जबान के धनी थे। उनका अपना करोडों का व्यवसाय था। एक बार वे व्यापार के निमित्त कही अनजाने प्रदेश मे चले गए। वहां उन्हें एक लाख रुपयो की जरूरत पड़ी। वहा कोई जान-पहचान वाला नही था। वे बाजार मे गए। एक साहूकार की पेढ़ी पर चढ़े। साहूकार ने उनका स्वागत किया। भैंसाशाह ने कहा—एक लाख रुपयो की आवश्यकता है। यह लो मेरी मूछ का बाल। इसे रखो। मैं ब्याज सहित पूरे रुपये चुकाकर यह बाल ले जाऊगा। सेठ के बाल को रखकर उसने एक लाख रुपये दे दिए।

समाज विकास के सूत्र

आप इस घटना को आज के व्यवहार से मिलाए। वहा वह सघन विश्वास और प्रामाणिकता और कहा आज सघन विश्वासघात और अप्रामाणिकता। दोनो स्थितियो मे रात-दिन का अन्तर है। आज तो सारी मूछ उखाड़कर दे दे तो भी पाच रुपये मिलना मुश्किल है और यदि कोई विश्वास मे दे देता है तो धोखा ही खाना पडता है। उस समय सारा व्यवसाय चलता था जबान के आधार पर। गाव का विकास अहिंसा के आधार पर हुआ। गाव मे आवश्यक व्यवसाय का विकास सत्य और अचौर्य के आधार पर हुआ। गाव मे स्त्री-पुरुष का एक साथ रह पाना ब्रह्मचर्य के आधार पर हुआ। दाम्पत्य-जीवन का भी यही आधार बना। लोगो ने स्वीकार कर लिया कि दाम्पत्य को कोई खडित नही करेगा। अपरिग्रह के आधार पर बहुत सारी सामाजिक व्यवस्थाओ का विकास

हुआ। समूचे समाज का विकास इन सत्यों के आधार पर हुआ है। किन्तु आज न जाने कैसी भ्रान्ति पलने लगी है कि जहां सत्य और अध्यात्म की चर्चा होती है वहा मनुष्य मान लेता है कि ये सत्य समाज और व्यवहार को विघटित करने वाले हैं। इस एक भ्रान्ति के आधार पर या इस भ्रान्ति को पुष्ट करने के लिए आदमी ने दूसरी भ्रान्ति को जन्म दिया और उसे पालने के लिए तीसरी, चौथी भ्रान्ति पैदा की गई। यह क्रम कही रुकने वाला नही है। यह अनवस्था का क्रम है। इस अनवस्था के कारण मनुष्य का समूचा जीवन ही भ्रान्तियो का जीवन बन गया है। इन भ्रान्तियो का कही अन्त नही है। ये अनन्त बनती चली जाती है। कही आर-पार दिखाई नही देता।

अशरण अनुप्रेक्षा

क्या सत्य की शरण मे जाना समाज को तोडना है? कभी नही, यह भ्रान्ति मात्र है। मनुष्य का मन असत्य से इतना भावित हो चुका है कि आज जहा सत्य की बात आती है वहा उसे अनुभव होने लग जाता है कि यह सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था को भग करने वाला है। इस भ्रान्ति को तोडने के लिए व्यक्ति अशरण अनुप्रेक्षा का अभ्यास करे। जो व्यक्ति अशरण की अनुप्रेक्षा करता है, अनुध्यान और अनुसरण करता है वह इस सत्य को पकड लेता है कि जिन्हे मैं शरण या त्राण मान रहा हू वे न शरण देने मे समर्थ है और न त्राण देने मे सक्षम हैं। और जो शरण और त्राण देने मे सक्षम है उन्हे मैं शरण और त्राण नहीं मान रहा हू। यह सचाई जब अनुभूत हो जाती है, तब व्यक्ति भ्रान्तियो के वात्याचक्र से मुक्त हो जाता है।

शरणं गच्छामि

अर्हत् सचमुच शरण है। अपनी आत्मा की अर्हताओ को जागृत करने वाला ही शरण पा सकता है, त्राण पा सकता है और इस अशरण और अत्राण की दुनिया से शरण और त्राण की सीमा मे जा सकता है।

'सिद्धे सरण पवज्जामि'—मैं सिद्ध की शरण मे जाता हू। सिद्ध की शरण मे जाने का अर्थ है—अपने अस्तित्व की सारी शक्तियो को उजागर करना, अभिव्यक्त करना, सिद्धि के स्तर तक पहुच जाना।

'साहू सरण पवज्जामि'—मैं साधु की शरण मे जाता हू। साधु की शरण मे जाने का अर्थ है—साधना की शरण मे जाना। साधु दूसरा नही होता। छोटे बच्चे के पास चॉकलेट है। उसे कहा जाए कि अपने छोटे भाई को दे दो, नही देगा। किन्तु उसे यदि कहा जाए कि साधु को दे दो, तो वह तत्काल दे देगा, क्योंकि वह साधु को अपने से दूसरा नही समझता। साधु दूसरा

नही होता। साधु का अर्थ है—अपने जीवन की साधना। साधु के शरण मे जाने का अर्थ है—अपने जीवन की साधना की शरण मे जाना। जो व्यक्ति साधना की शरण मे जाता है वह त्राण पा लेता है और जो साधना की शरण मे नही जाता वह त्राण नही पा सकता। साधना की शरण मे जाना भी सरल नही है। उसमे बड़ा भय लगता है। बहिनें घंटो तक रसोई घर मे बैठने से नही घबराती। इतना ताप सहन करना उनके लिए सहज-सा बन गया है। पर एक घंटा ध्यान करने मे उन्हें अपार कष्ट की अनुभूति होती है। इसीलिए लोग सोचते हैं कि ध्यान अपने आप हो जाए, कुछ करना न पड़े। जब वह सिद्ध होने लगेगा तब हम प्रयत्न करेंगे।

एक व्यक्ति तैरना सीखना चाहता था। वह तालाब पर गया। पानी मे उतरा। पैर फिसल गया। डूबने लगा। एक व्यक्ति ने उसे पकड़ लिया। उससे कहा—कल फिर आना। धीरे-धीरे तैरना सीख जाओगे। उसने कहा—जब तक तैरना नही सीख जाऊंगा तब तक तालाब पर नही आऊगा।

बड़े आश्चर्य की बात है। तैरना सीखना है और तालाब पर न आने की प्रतिज्ञा है—तब तैरना कैसे सीखा जा सकेगा? बहुत सारे लोग इसी भाषा मे सोचते हैं—जब तक ध्यान करना नही सीख लूंगा तब तक शिविर मे नहीं जाऊंगा। उन्हे साधना करने मे भय लगता है। आचार्य पूज्यपाद ने लिखा है—

'मूढात्मा यत्र विश्वस्तः, ततो नान्यद् भयास्पदम्।
यतो भीतस्ततो नान्यद्, अभयस्थानमात्मनः॥

मूर्छित चेतना वाला व्यक्ति जहा विश्वास करता है, उससे बड़ा खतरा कोई हो नही सकता। जहा त्राण है वहा वह जाना नही चाहता और जहा अत्राण है वहां वह निडर होकर जाता है। जिससे वह डरता है उससे बड़ा कोई त्राण नही है और जहां त्राण मानता है उससे बडा कोई खतरा नही है।

मूर्च्छा के कारण जीवन मे ऐसे विपर्यय पलते हैं।

अपनी शरण क्या ?

- साधना की शरण मे जाना दूसरे की शरण मे जाना नही है।
- धर्म की शरण मे जाना दूसरे की शरण मे जाना नही है।
- यह सब अपनी ही शरण मे जाना है।
- अर्हत्, सिद्ध, साधु और धर्म—ये हमारे अस्तित्व के ही अग हैं। इनकी शरण मे जाना अपने अस्तित्व की शरण मे जाना है। यह दूसरे की शरण मे जाना नही है।
- अध्यात्म का सूत्र यही है—अपनी शरण मे जाओ, दूसरो की शरण मे मत जाओ।

१५. काल्पनिक समस्याएं और तनाव

१. सयम है अति से बचना।

२. काम ' एककोणीय सचाई।

३. प्रत्येक व्यक्ति शिव है, जिसने चेतना के साक्षात्कार का अभ्यास किया है।

४. ऊर्जा का प्रयोग चैतन्य जागरण मे हो।

५. ब्रह्मचर्य है प्राण-ऊर्जा को प्रज्ज्वलन।

६. गांधी को देखकर एक विचारक ने लिखा—मैंने दुनिया में इतने भद्दे आदमी मे इतना सौन्दर्य नही देखा।

७. सयम का मूल्य इसीलिए है—संयम से प्राण-ऊर्जा का संचय होता है।

८. समस्या न बड़ी, न छोटी।

- वह आशका से बड़ी बनती है।
- यथार्थ के स्वीकरण से छोटी बनती है।

९. दर्शन बड़ा है चिन्तन से।

पन्द्रह

संयम है अति से वचना

मनुष्य वहुत वार कल्पना के जगत् मे जीता है। कल्पना अच्छी भी है और बुरी भी है। जो कल्पना यथार्थ तक पहुंच जाए वह अच्छी है और जो कल्पना केवल कल्पना ही वनी रहे, यथार्थ के आकाश को छू न पाए, वह बुरी है। मनुष्य जितनी कल्पनाए करता है उतना ही वह उनसे ग्रस्त होता जाता है। स्मृति भी जरूरी है और कल्पना भी जरूरी है, किन्तु अतिस्मृति और अतिकल्पना—दोनों ख़तरनाक हैं। पता नही, मनुष्य को अति मे जाना पसन्द क्यो है ? वह किसी भी पक्ष मे अति से क्यो नही वच पाता ? वह हर वात मे अति करता है, करना चाहता है। मन मे एक प्रकार की मूर्च्छा के कारण वह संयम नही कर पाता। संयम का अर्थ है—अति से वचना। यह जीवन का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। भोजन का संयम करना—इसका यह अर्थ नही है कि भोजन न किया जाए। भोजन के विना प्राण नही टिकते। भोजन के विना जीवन-यात्रा नही चल सकती। भोजन जरूरी है, किन्तु जव उसकी अति होती है, तव समस्याएं उत्पन्न होती हैं। भोजन-सयम का अर्थ है—भोजन की अति से वचना शरीरधारी काम का भी सेवन करता है। इच्छाओं की पूर्ति भी करता है। शरीर और मन की आकाक्षाओ की पूर्ति के लिए वह हर सभव प्रयत्न भी करता है। किन्तु जीवन के किसी भी क्षेत्र मे जहा अति का प्रयोग होता है वहा कठिनाइयां पैदा होती हैं।

कामवृत्ति : कोणिक सचाई

मानसशास्त्री मानते हैं कि जीवन मे काम (sex) आवश्यक है। फ्रायड ने इसका वहुत समर्थन किया। सभी मनोवैज्ञानिको ने इसकी आवश्यकता महसूस की है। 'काम' मनुष्य की स्वभाविक वृत्ति है। उसकी पूर्ति नही होती है तो आदमी पागल हो जाता है। वहुत वार यह प्रश्न आता है कि मनुष्य यदि ब्रह्मचारी वना रहे तो वह पागल हो जाएगा। इस वात में सचाई नही है, ऐसा नही कहा जा

सकता। जीवन की स्वाभाविक मागों की यदि पूर्ति नही होती है तो एक प्रकार का उन्माद या पागलपन उत्पन्न हो जाता है और आदमी बेचैन हो जाता है। हर सचाई का एक कोण होता है। ये प्रतिपादित सचाइया कौणिक सचाइया है। ये सार्वभौम नही है। वहुत बार आदमी अर्धसत्य को पूर्णसत्य मान लेता है। यहा भ्राति का निर्माण हो जाता है। अर्धसत्य को यदि अर्धसत्य की दृष्टि से देखा जाए तो समस्या को सोचने-समझने का और उसका समाधान खोजने का अवसर मिलता है और यदि अर्धसत्य को पूर्णसत्य मान लिया जाता है तो अनेक नई समस्याए उत्पन्न हो जाती है।

काम जीवन का एक भाग है। इस सचाई को स्वीकार करते हुए भी हम इस वात को न भूले कि जिस व्यक्ति ने काम के आनन्द से भी वडे आनन्द की ऊर्जा को उत्पन्न कर लिया, उसके लिए काम निकम्मा बन गया। जो व्यक्ति काम के आनन्द के स्रोत को वद कर देता है किन्तु आनन्द के महास्रोत का द्वार उद्घाटित करना नही जानता, वह ब्रह्मचारी नही वन सकता, पागल वन सकता है। ब्रह्मचारी वही होता है जो काम-जनित सुख के द्वार को रोकने के साथ-साथ सुख के एक महाद्वार को उद्घाटित कर देता है, जिससे आनन्द का सतत प्रवाह प्रवहमान रहता है। तव काम-सुख व्यर्थ वन जाता है, उसकी सार्थकता समाप्त हो जाती है। शरीर में एक ग्रन्थि है—एड्रीनल और दूसरी है—पिच्यूटरी। ये दोनो ग्रन्थिया वहुत महत्त्वपूर्ण है। ये हमारे व्यवहार और आचरण को प्रभावित करती है। एड्रीनल ग्रन्थि के कारण ही काम-वासना, उत्तेजना, आवेग आदि-आदि जागृत होते है। पिच्यूटरी ग्रन्थि के द्वारा यदि उस एड्रीनल ग्रन्थि को नियत्रित या प्रभावित कर दिया जाता है, निष्क्रिय वना दिया जाता है तो सारी काम-वृत्तिया समाप्त हो जाती है, आवेग कम हो जाते है, और अपूर्व आनन्द की वृति जागृत हो जाती है। तव काम अकाम वन जाता है। किन्तु जो व्यक्ति पिच्यूटरी या दर्शन केन्द्र को जागृत करना नही जानता और ब्रह्मचारी वनने की वात करता है या प्रयत्न करता है तो वह सचमुच पागल की अवस्था तक पहुच जाता है। मनोविज्ञान का भी यही सिद्धान्त है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य भी एककोणीय है। यह इस अर्थ मे सत्य है कि पिच्यूटरी ग्रन्थि को जागृत किए विना कोई ब्रह्मचारी होने का प्रयत्न करता है तो वह निश्चित ही विषाद से भर जाता है, अर्ध-उन्माद की स्थिति मे चला जाता है।

कामदेव की पत्नी रती विलाप करते हुए कहती है—शिव ने अपने तीसरे नेत्र के द्वारा, प्रलयकारी नेत्र के द्वारा काम को भस्म कर डाला, राख का ढेर वना डाला।

शिव कौन नही ?

प्रत्येक आदमी शिव है। कोई भी अशिव नही है। जिसने अपने शिवत्व को प्रकट कर डाला, जिसने अपने महादेव को जगा दिया, जिसकी आत्मा मे सुपुप्त शिव जाग गया, वह आदमी स्वय शिव बन गया। साधना और ध्यान करने वाला, आत्मा के द्वारा आत्मा को देखने वाला हर व्यक्ति शिव होता है। जिसने प्रेक्षा-ध्यान के द्वारा अपनी चित्तवृत्तियो को सयत कर अपने भीतर समाए हुए चैतन्य के स्पन्दनो का थोड़ा-सा साक्षात्कार किया है, उस व्यक्ति ने अपने शिवत्व को जगाने का अभ्यास किया है। जिसका शिवत्व जाग गया, वह हर आत्मा शिव बन गया।

प्रत्येक साधक शिव होता है और वह दर्शन-केन्द्र या तृतीय नेत्र को सक्रिय बनाकर होता है। वह अपनी पिच्यूटरी ग्लैन्ड को सक्रिय कर एड्रीनल को प्रभावित करता है, उसके स्राव को नियन्त्रित करता है। दूसरे शब्दो मे, वह स्राव को बदल देता है और काम से अकाम बन जाता है। उसका काम उस तीसरे नेत्र से भस्म हो जाता है, समाप्त हो जाता है।

काम-विजय की प्रक्रिया

काम-विजय की भी एक प्रक्रिया है। जो इस प्रक्रिया को जाने बिना काम-विजय का प्रयत्न करता है वह कभी सफल नही होता। परिणाम विपरीत होता है और वह विक्षिप्त बन जाता है। इस एककोणीय सत्य को हम उसी कोण से देखें, समझें। हम यदि यह मान लें कि कोई ब्रह्मचारी हो ही नही सकता या काम की माग को पूरी किए बिना कोई अपना विकास नही कर सकता, पागलपन से मुक्त नहीं हो सकता तो यह बहुत बड़ा भ्रम होगा, असत्य का पोषण होगा। हम इस कोण को न भूलें कि साधना के लिए कामवासना का नियन्त्रण कितना अपेक्षित है।

ऊर्जा का उपयोग कहां ?

ध्यान साधक के लिए आहार का सयम भी बहुत अपेक्षित है। जो व्यक्ति अपनी सारी शक्ति भोजन के पाचन आदि मे खपा देता है, वह ध्यान नही कर सकता, ध्यानी नही हो सकता। ध्यान का लाभ उसे कभी नही मिल सकता। ऊर्जा सीमित है। वह जितनी है उतनी ही है। उसका उपयोग चाहे भोजन पचाने मे किया जाए या मस्तिष्कीय विकास में किया जाए। अतिरिक्त भोजन करने वाले व्यक्ति की सारी ऊर्जा आतो मे खप जाती है। यदि इतनी ऊर्जा पर्याप्त नही होती तो मस्तिष्क में काम आने वाली ऊर्जा भी वहा खप जाती है। मस्तिष्क शरीर का दो प्रतिशत भाग है। किन्तु उसे विद्युत् चाहिए बीस प्रतिशत। इतनी

विद्युत् मिलने पर ही वह अच्छा काम कर सकता है, अन्यथा नही। किन्तु अति भोजन करने वाला व्यक्ति बीस प्रतिशत विद्युत् को भी भोजन पचाने मे खपा देता है। मस्तिष्क को विद्युत् नही मिलती। वह बडा काम नही कर सकता। इतिहास मे नही मिलता कि किसी पेटू आदमी ने बड़ा काम किया हो। बडा काम उन्ही लोगो ने किया है जो भोजन के प्रति संयत थे। कुछेक व्यक्ति भोजन के प्रति सावधान नही होते। वे मानते हैं—शरीर को चलाने के लिए भोजन अपेक्षित है। उनका मन कार्य मे इतना सलग्न हो जाता है कि वे भूल जाते है कि भोजन किया या नही।

आइस्टीन प्रयोगशाला मे थे। वे किसी गुत्थी को सुलझाने मे तल्लीन थे। भोजन का समय हुआ। पत्नी प्रयोगशाला के एक मेज पर भोजन रखकर चली गई। उसने सोचा—काम से निवृत्त होकर भोजन कर लेंगे। आइंस्टीन काम मे लगे रहे। इतने मे ही उनसे मिलने एक मित्र आया। आइस्टीन ने आख उठाकर भी उसकी ओर नही देखा। वह कुछ देर वहा बैठा। उसने प्रतीक्षा की, पर आइस्टीन ने ध्यान नही दिया। वह भूखा था। उसने देखा—एक मेज पर भोजन पड़ा है। वह गया और भर पेट भोजन कर, हाथ धोकर चला गया। कुछ समय पश्चात् आइस्टीन की गुत्थी सुलझी। वे भोजन के लिए मेज पर आए। देखा, बर्तन मे कुछ भी नही है। थोडा पानी पडा है। सोचा—सम्भव है मैंने भोजन कर लिया, अन्यथा ये बर्तन खाली नही रहते। वे पुन. अपने काम मे लग गए। भूख का भान ही नही रहा।

हम उन्हे भोजन के प्रति लापरवाह, असावधान या अनासक्त कुछ भी कहें। वे थे इस शताब्दी के महान् बौद्धिक व्यक्ति। उनकी सारी ऊर्जा ज्ञान-केन्द्र की ओर प्रवाहित रहती थी। उसे काम-केन्द्र की ओर प्रवाहित होने का कम अवसर मिलता था। यही कारण है कि उनका ज्ञान-केन्द्र जागृत हो सका और वे विश्व को अनुपम देन दे सके।

प्राण-ऊर्जा का ऊर्ध्व-अधोगमन

जिस व्यक्ति की प्राण-ऊर्जा नीचे की ओर, काम-केन्द्र की ओर प्रवाहित होती है उसमे निम्नतम् वृत्तियां जागती हैं और जिसकी प्राण-ऊर्जा ऊपर की ओर, ज्ञान-केन्द्र की ओर प्रवाहित होती है उसमें श्रेष्ठ वृत्तियां जागती हैं। वह बहुत नए काम कर सकता है। प्राण-ऊर्जा के ऊर्ध्वगमन का पथ है—सुषुम्णा का मार्ग। प्राण-ऊर्जा जब ऊर्ध्वयात्रा करती है तब उदात्त-वृत्तिया जागृत होती हैं। वह व्यक्ति ज्ञान, व्यवहार और आचार के क्षेत्र मे बहुत आश्चर्यकारी विकास कर लेता है।

ब्रह्मचर्य : प्राण-ऊर्जा का प्रज्ज्वलन

आज एक बडा सकट उपस्थित हुआ है। बहुत सारे लोग मनोविज्ञान की ओट लेकर अब्रह्मचर्य को उपादेय बतलाते हैं। उनका कहना है कि काम स्वाभाविक वृत्ति है। उसके सेवन मे कोई दोष नही है। बाहरी दृष्टि से कोई दोष नही है—यह मान भी ले क्योकि एक अब्रह्मचारी आदमी शरीर से स्वस्थ हो सकता है, वह मासल और सुन्दर लग सकता है। उसका चेहरा तेजस्वी और दीप्तिमान् हो सकता है। किन्तु आन्तरिक दृष्टि से वह खोखला ही होता है।

आचार्य श्री दिल्ली मे थे। पत्रकार गोष्ठी थी। एक पत्रकार ने पूछा—साधु ब्रह्मचारी होते हैं। उन्हे बहुत तेजस्वी होना चाहिए। उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट होना चाहिए। चेहरे पर चमक होनी चाहिए। पर आपके साधुओ मे यह सब दिखाई नही देता। मैंने उस समय कुछ समाधान भी दिया। पर मेरे मन मे एक प्रश्न पैदा हो गया कि क्या पत्रकारो का प्रश्न समुचित है? मैंने उसी दिन से खोज प्रारभ की। मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा कि शरीर पुष्ट होना, रक्त का लाल होना, शरीर मे चमक-दमक होना—इन सब मे ब्रह्मचर्य का कोई सबध नही है। जो व्यक्ति इन सब का सबध ब्रह्मचर्य के साथ जोडता है, वह बहुत बडी भ्रान्तिया पैदा करता है। मेरा यह कथन सुनने मे अटपटा-सा लगता हो, पर है यह एक सचाई। मैं महावीर को उद्धृत करू, बुद्ध और कबीर को उद्धृत करू, आचार्य भिक्षु और महात्मा गाधी को उद्धृत करू—इन सब महात्माओ ने साधक का लक्षण जो बतलाया है, वह विचित्र है। महावीर ने ब्रह्मचारी के लिए एक विशेषण प्रयुक्त किया है—'भासच्छन्नेव जायतेजसे'—ब्रह्मचारी राख से ढकी अग्नि की भाति होता है। कबीर ने कहा 'बाहर से तु कछुअ न दीखे, भीतर जल रही ज्योत।' ऐसा होता है साधक। बाहर से कुछ नही दीखता, भीतर मे ज्योति प्रज्वलित रहती है। आचार्य भिक्षु ने कहा—'दुर्बल शरीर हुवै तपसी तणों।' शरीर दुबला होता है, पर भीतर ज्योति जलती है। ब्रह्मचारी वह होता है जिसके भीतर प्राण की ज्वाला प्रज्वलित होती है और ऊपर से वह रूखा-सूखा-सा लगता है। ठीक इससे उल्टा होता है भोगी आदमी। वह बाहर से चमक-दमक वाला होता है और भीतर से सर्वथा शून्य। उसकी प्राण-ज्वाला बुझ जाती है। सारी प्राण-विद्युत् चुक जाती है।

प्राण-ऊर्जा का प्रभाव

जीवन का मूल आधार है—प्राण-शक्ति, वाइटेलिटी। जीवन का आधार रक्त और मास नही है। लोगो ने यह मान रखा है कि शरीर मे रक्त अच्छा रहेगा तो चमक रहेगी, अन्यथा नही। किन्तु इसका शक्ति के साथ सीधा सबध

नही है। वर्तमान शताब्दी मे एक महान् शक्तिशाली व्यक्ति हुआ। उसका नाम था महात्मा गाधी। वे राजनीति और अध्यात्म के सधि-क्षेत्र मे हुए। एक विचारक ने महात्मा गाधी को देखकर लिखा—'मैंने दुनिया मे इतने भद्दे आदमी मे इतना सौन्दर्य नही देखा।' यह वात वहुत अच्छी लगी। महात्मा गाधी का वजन केवल १०० पाउड था। शरीर केवल हड्डियो का ढाचा मात्र था। किन्तु उनका सौन्दर्य इतना प्रभावक था कि विश्व के वडे-वड़े व्यक्ति उनके पीछे फिरते थे। उनके साथ पाच-दस मिनट वैठ कर, उनसे वात-चीत कर अपने आपको धन्य मानते थे। इस विशाल सौन्दर्य का कारण क्या था? उसका एकमात्र कारण था—सयम। महात्मा गाधी ने इतना कठोर सयम साधा, सयममय जीवन व्यतीत किया कि प्रत्येक व्यक्ति उनके साथ रहने को ललचाता था और उनसे वात कर अपने आपको गौरवान्वित मानता था।

जिस व्यक्ति मे प्राण की ऊर्जा होती है, सयम और त्याग का तेज होता है, वह व्यक्ति वाहर से कुछ भी न होने पर भी भीतर मे अत्यन्त प्राणवान् और तेजस्वी होता है। वह जीवन्त और शक्तिशाली होता है। अब्रह्मचर्य या असयम की सवसे वडी हानि यही है कि आदमी का ढाचा वाहर से वैसा का वैसा रह जाता है किन्तु भीतर से सव कुछ चुक जाता है। वहुत वार ये ढाचे, पुतलिया जो वाहर से वहुत सजीव और प्राणवान् लगती हैं, आदमी को भ्रम मे डाल देती हैं। जैन पुराणो मे आता है कि राजा ने अपनी पुत्री मल्ली की एक ऐसी सजीव पुतली वनाई कि देखने वाले सारे लोग उसे साक्षात् मल्ली कुमारी ही समझ लेते। वे उससे वात करने की चेष्टा करते। वह वास्तव मे थी सगमरमर की वनी निर्जीव पुतली। वाहरी ढाचे आकर्षक होते है, पर भीतर मे कुछ भी नही होता। ये ढाचे भ्रम पैदा करने वाले होते है।

सयम का मूल्य प्राण-ऊर्जा का सचय

इसी प्रकार जो शरीर हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ दिखाई देता है, पर जिसमे प्राण-ऊर्जा नहीं होती, वह निष्प्राण और शक्तिहीन होता है। उससे वडा कार्य नही किया जा सकता। उसकी सारी शक्तिया चुक जाती है। इसलिए उसका कोई विशेष मूल्य नही होता। अब्रह्मचर्य का अति-सेवन करने वाला व्यक्ति अपनी प्राणशक्ति का अतिरिक्त व्यय करता है। उससे उसकी कर्मजा-शक्ति समाप्त हो जाती है। जैसे सूजन आया हुआ शरीर भारी और स्थूल दीखता है, वैसे-ही व्यक्ति वाहर से भरा-भरा दिखाई दे सकता है, पर वह होता है—शक्ति-शून्य। मैं यह कहना नही चाहता कि मास, हड्डिया, रक्त आदि का कोई महत्त्व नही है इनका अपना महत्त्व है, मूल्य है। व्यक्ति इनकी रक्षा करता है। किन्तु हमारे शरीर मे सवसे ज्यादा रक्षणीय है—प्राण-विद्युत्।

उसका प्रवाह व्यर्थ न जाए। वह बाहर न जाए। खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करते समय हाथो की अगुलियो को शरीर से सटा कर रखें, जिससे की अगुलियो से निकलने वाली विद्युत् पुन: शरीर मे चली जाए। यदि हाथ को शरीर से सटा कर नही रखते हैं तो विद्युत् बाहर चली जाती है, व्यर्थ हो जाती है। प्राण-ऊर्जा का सचय बहुत महत्त्व का है। उससे हम अतिरिक्त कार्य कर सकते है। प्राण-ऊर्जा का काम इतना ही नही है कि व्यक्ति अपना जीवन जी सके। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्राण-ऊर्जा से कोई विशेष कार्य किया जाए। वही आदमी जीवन मे बडा काम कर सका है जिसने हाथ और पैरों का सयम साधा है, जिसने कान और आख का सयम साधा है, जिसने जीभ और प्राण का सयम साधा है, जिसने मन और वाणी का सयम साधा है और जिसने इस सयम की प्रक्रिया से प्राण-ऊर्जा को बाहर जाने से रोका है और उसका अतिरिक्त सचय किया है, ऐसे व्यक्ति के मन मे नई स्फुरणाएं होती हैं और वही व्यक्ति अनूठा काम करने मे सफल हो पाता है। यह है सयम का एक मूल्य। इसी सदर्भ मे सयम की बात अच्छी तरह समझ मे आ सकती है।

यथार्थ का धरातल

सयम की साधना का सूत्र यथार्थ के जगत् मे जीने का सूत्र है। यह सूत्र व्यक्ति को कामना और कल्पना से ऊपर उठाकर यथार्थ के धरातल पर ला खड़ा करता है। जिस व्यक्ति मे प्राण-ऊर्जा प्रबल होती है, जिसका मनोबल बहुत दृढ़ होता है वह व्यक्ति काल्पनिक समस्याओ मे नही उलझता। काल्पनिक समस्याए उसी व्यक्ति को सताती हैं जिसका मनोबल दुर्बल होता है और मनोबल उसी व्यक्ति का दुर्बल होता है जिसकी प्राण-ऊर्जा न्यून होती है, सयम कम होता है।

आशंका . आशका

आज का पढा-लिखा आदमी सयम और त्याग को मखौल मानता है। जिसने जीवन की गहराइयो मे उतरकर जीवन को पढने का प्रयत्न नही किया, वह सयम का मूल्य नही समझ सकता। आप स्वय अनुभव करे कि व्यक्ति कितनी काल्पनिक समस्याए खडी कर लेता है और उसमे उलझ जाता है। व्यक्ति सदेहों का पुतला है। वह अनेक प्रकार के काल्पनिक सदेहो को पालता है और उनका शिकार होता है। बेटा बाप को और-पति पत्नी को सदेह की दृष्टि से देखती है। भाई भाई को सदेह की दृष्टि से देखता है। इस सदेह से अनेक कल्पनाए उभरती हैं। बुढापे मे क्या होगा? बीमार हो जाऊंगा तो क्या होगा? बेटा मर जाएगा तो क्या होगा? पत्नी मर जाएगी तो क्या होगा? इतनी कल्पना! इतनी आशका! इतना भय! ऐसा लगता है कि जीवन मे आश्वासन जैसा कुछ भी नही है। यह क्यो है? यह

दुर्बल मनोभावना का प्रतीक है। जो व्यक्ति प्राणवान् होता है, वह कभी नही सोचता 'अब क्या होगा ?' वह सोचता है—मैं हूं तो सब कुछ हो जाएगा और यदि मैं नही हू तो कुछ नही होगा।

एक आदमी रिक्शे मे बैठकर जा रहा था। वह अत्यन्त उदासीन और चितातुर था। रिक्शा-चालक ने पूछा—'बाबूजी ! चेहरा इतना कुम्हलाया-सा कैसे है ? इतने चिन्तातुर क्यो ? छोटी उम्र मे बूढे लग रहे हो।' उसने कहा—'दो लडकिया है। शादी करनी है। पास मे पैसा नही है। क्या करू ? बस, यही चिंता खा रही है।' रिक्शा चालक बोला—'मैं सत्तर वर्ष का हू। चार लडकियो की शादी कर चुका हू। दो लडकियो की शादी करनी है। कोई चिन्ता नही है। मस्ती मे जीता हू।'

समस्या क्या बड़ी . क्या छोटी

समस्या हर व्यक्ति के सामने आती है किन्तु जो व्यक्ति कल्पना के लोक मे जीता है वह राई-भर समस्या को पर्वत जैसी बडी समस्या बना देता है। जो व्यक्ति प्राणवान होता है वह पर्वत जैसी बडी समस्या को भी ककर जैसी तुच्छ मानकर उसका पार पा जाता है, और वह मस्ती मे जीता चला जाता है। मरना ही है तो समस्या से दबकर क्यो मरा जाए ? कठिनाई है तो उसे हसकर झेला जाए। चिन्ता करने से क्या ? बिना मौत क्यो मरा जाए ? जिस व्यक्ति ने प्राण-शक्ति का मूल्याकन नही किया, जिसकी प्राण-शक्ति निर्बल है वह हजारो-हजारों आशकाए, कल्पनाए और दुश्चिन्ताए खड़ी कर लेता है और उन्ही को भोगते-भोगते समाप्त हो जाता है। वह जीवन मे कुछ भी नही कर पाता। जिसकी प्राण-ऊर्जा सबल होती है, जो प्राणवान होता है, जिसमे धृति और मनोबल होता है, उसके जीवन मे भी बडी-बडी समस्याए आती हैं, पर वे उसे प्रभावित नही कर पाती, स्वय नष्ट होजाती हैं, जैसे आती हैं, वैसे ही चुपचाप चली जाती हैं। कहा है—

'तावद् भयेन भेतव्यं, यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भय दृष्ट्वा, प्रहरतव्यमशंकया ॥

जब भय की स्थिति आ गई हो तो उससे डरना नही चाहिए। पहले यह विवेक अवश्य रखना चाहिए कि कोई खतरा सहसा उत्पन्न न हो। परन्तु जब खतरा पैदा हो ही गया तो व्यक्ति की प्राण-ऊर्जा इतनी सशक्त होनी चाहिए कि वह निडर होकर उस खतरे का सामना कर सके। इस प्रकार करने से खतरा आता है और चला जाता है, व्यक्ति का कुछ भी नही बिगाड पाता। दुनिया मे सब उसे है जो कमजोर होता है, सशक्त को कोई नहीं सताता।

चिन्तन है पंगु

एक भाई ने पूछा—'हम प्रेक्षा-ध्यान मे देखने का अभ्यास कर रहे है। इस प्रक्रिया मे हमारी चिन्तन शक्ति ही समाप्त न हो जाए।

हमने चिन्तन को ही सब कुछ मान लिया है। चिन्तन बहुत छोटी बात है। इसे हमने अधिक मूल्य दे डाला। इसे ही जीवन का सर्वस्व मान लिया। कहा चिन्तन और कहा दर्शन! बेचारा चिन्तन इतना पगु है कि वह दर्शन के ऊचे शिखर तक पहुच ही नहीं सकता, उसकी तलहटी को भी नही छू पाता। विशिष्ट ज्ञान दर्शन (इन्टयूसन) के द्वारा होता है। जब जीवन मे दर्शन और उसके साथ-साथ प्राण-ऊर्जा के उन्नयन की बात आती है तब चिन्तन पीछा करता हुआ चला जाता है। जहा चेतना जाती है वहा प्राण-धारा जाती है। जो व्यक्ति चेतना को देखने का प्रयत्न करता है, वह प्राण-शक्ति को विकसित करने का प्रयास करता है। जो व्यक्ति चैतन्य को देखने का प्रयत्न नही करता, उसकी प्राण-शक्ति चुक जाती है।

हम इस सचाई को मानकर चलें कि सदेह, आशंका और भय के कारण पैदा होने वाली जितनी काल्पनिक समस्याए हैं, वे सब मन मे तनाव उत्पन्न करती हैं और तनाव हजारो कठिनाइया पैदा करता है। हम काल्पनिक समस्याओ में न उलझें, और प्राण-ऊर्जा को अधिक से अधिक विकसित करने की दिशा मे प्रस्थान करें।

१६. आन्तरिक समस्याएं और तनाव

१. भारोऽविवेकिन. शास्त्रं, भारो ज्ञानं च रागिणाम् ।
अशान्तस्य मनो भारो, भारोऽनात्मविदो वपुः ॥

२ परिस्थति के आधार पर समाधान ढूढना वैसा ही है जैस एक अधेरे से निकलकर दूसरे अधेरे मे भटकना ।

३. घर का जीवन, सडक का जीवन—दोनो को समझें ।

४ परिस्यति ही सब कुछ है—वही मानता है जो आन्तरिक स्रावो को बदलना नही जानता ।

५. शरीर-विज्ञान सबके लिए आवश्यक है ।

- शरीर की संरचना और क्रियाविधि को जानना साधक के लिए बहुत जरूरी ।

६ अध्यात्म मे रस लेने वाला नही कह सकता—समय नही है ।

सोलह

घर का जगत् : सडक का जगत्

हम दो जगत् के बीच जीते हैं। एक है—घर का जगत् और दूसरा है—सडक का जगत्। हर मनुष्य का यही क्रम है। वह घर का जीवन भी जीता है और सड़क का जीवन भी जीता है। मनुष्य ने मकान इसीलिए वनाया कि वह भीतर का जीवन जी सके। वह जीवन एक प्रकार का होता है और खुले आकाश मे जीना, दूसरे प्रकार का होता है। वाहर के जीवन मे और भीतर के जीवन मे बहुत बडा अन्तर होता है। जव हम इन्द्रियो को वाहर व्यापृत करते है तव बाहर का जीवन प्रारभ हो जाता है और जब हम उन्हे अन्दर व्यापृत करते हैं तब भीतर का जीवन प्रारभ हो जाता है। बाहर का जीवन कभी-कभी मन को लुभाने वाला होता है तो कभी-कभी मन मे घृणा पैदा करने वाला भी होता है। हम कान से सुनते हैं और बाह्य जगत् के साथ सम्पर्क स्थापित करते है, तव भी ऐसा ही घटित होता है। कुछ प्रिय सुनाई देता है, कुछ अप्रिय सुनाई देता है। कुछ कानो को लुभावना लगता है, कुछ अलुभावना लगता है। कुछ शब्द प्रमोद भावना पैदा करते हैं और कुछ शब्द ईर्ष्या जगाते है। जब हमारी इन्द्रियां वाहर से सपर्क स्थापित करती हैं और हमारे व्यक्तित्व को वाह्य जगत् का व्यक्तित्व बनाती है, तब वे वाहर से कुछ लेती हैं और भीतर तक पहुचा देती है। इनसे हमारे विचार बनते है, भावनाए और संस्कार निर्मित होते है। इनके आधार पर हम किसी को मित्र और किसी को शत्रु मान लेते है, किसी को अच्छा और किसी को बुरा मान लेते हैं, किसी का कल्याण और किसी का अकल्याण चाहने लग जाते हैं। अनेक प्रकार की भावनाए वनती हैं, बिगडती हैं। यह सारा होता है वाह्य जगत् के सपर्क के द्वारा। मनुष्य ने अपनी सारी शक्ति वाह्य जगत् के साथ लगा रखी है। वह बाह्य जगत् का ही परिष्कार और सुधार करने मे लगा हुआ है। वह अपने आपको अच्छा-बुरा या सुखी-दु.खी अनुभव करता है तो वह भी बाह्य जगत् के परिप्रेक्ष्य मे और वाह्य साधनो के कारण। प्रश्न होता है—क्या जीवन के साथ जुडी हुई सारी समस्याए

बाह्य जगत् की समस्याएं हैं ? क्या हम जो कुछ भोग रहे हैं वह सारा बाह्य जगत् द्वारा ही निर्मित है ? क्या हमारे भीतर का कुछ भी नही है ? यह एक बहुत बडा प्रश्न है। जब तक इस प्रश्न पर गहराई से नही सोचा जाएगा तब तक समस्याओ का समाधान नही हो सकेगा, तनाव-मुक्ति का प्रयोग सफल नही हो पाएगा।

मनुष्य की व्याख्या—परिस्थिति ?

एक चिन्तन आता है कि मनुष्य परिस्थिति का दास है। वह बेचारा क्या करे ? परिस्थिति व्यक्ति को प्रभावित करती है। फिर अध्यात्म और धर्म से व्यक्तित्व निर्माण के कथन का क्या औचित्य रह जाता है ? ऐसा एक भी मनुष्य नही मिलता जो अनुकूल परिस्थति मे प्रसन्न और प्रतिकूल परिस्थति मे विषाद-ग्रस्त न होता हो। परिस्थति को छोड़कर मनुष्य की कोई व्याख्या नही की जा सकती, उसके सुख-दु ख की व्याख्या नही की जा सकती। मनुष्य के सारे सुख-दु.ख और सवेदन परिस्थति के सदर्भ मे ही व्याख्यायित होते हैं। यह एक ऐसा तर्क है जो काटा नही जा सकता। यह भी भ्रान्ति है। तर्क हो और कॉटा न जा सके, यह असभव है। तर्क अकाट्य होता ही नही। मनुष्य भूल जाता है कि तर्क का प्रयोग काटने के लिए ही होता है। जो तर्क पहले के तर्क को काट सकता है तो दूसरा तर्क उसे क्यो नही काट सकेगा ? तर्क की प्रकृति ही है—काटना। जब यह तर्क का स्वभाव है तब हम इसे अन्यथा कैसे कर सकते हैं ? सबल तर्क दुर्बल तर्क को काट देता है। फिर जो उससे भी प्रबल तर्क आता है तो वह उस सबल तर्क को भी काट देता है। उससे भी प्रबल तर्क हो सकता है जो उसे भी काट देता है। यह चलता रहता है। इसका कही अन्त नही आता। कोई भी तर्क अकाट्य नही हो सकता।

प्रथम दर्शन मे लगता है कि परिस्थिति को समर्थन देने वाला तर्क प्रबल है, अकाट्य है, पर यथार्थ मे वैसा नही है। हम देखते हैं कि समान परिस्थिति मे जीने वाले दो मनुष्य दो प्रकार का जीवन जीते हैं। एक परिस्थिति से पराजित होकर घुटने टेक देता है और दूसरा उस परिस्थिति के सामने डटकर खडा हो जाता है। दोनो गरीबी से आक्रान्त हैं, फिर भी एक गरीबी से सत्रस्त होकर दु खी जीवन जीता है और दूसरा गरीबी के जीवन के साथ सग्राम करता हुआ उससे जूझता जाता है। वह मानता है—जीवन एक सग्राम है। जो उमसे निरतर लडता वह एक न एक दिन उस पर नियत्रण पा लेता है। अब हम सोचें, दोनो के सामने समान परिस्थिति है। कोई अन्तर नही है। दोनो अभावग्रस्त एक व्यक्ति परिस्थिति से दब जाता है और दूसरा व्यक्ति उस पर है। ऐसा क्यो होता है ? यदि हम गहराई से सोचें तो इस अन्तर का जगत् मे नही मिल सकता, क्योंकि दोनो के लिए बाहर का वाता यह अन्तर भीतर मे खोजा जा सकता है। दोनों का भीतरी जगत्

इसीलिए यह अन्तर है। एक व्यक्ति का आन्तरिक जगत् बहुत कमजोर है और दूसरे व्यक्ति का आन्तरिक जगत् बहुत शक्तिशाली है। जिसकी प्राण-ऊर्जा सबल होती है उसका आन्तरिक जगत् बहुत शक्तिशाली होता है, और वह परिस्थिति पर हावी होकर उसको कुचल डालने मे समर्थ होता है। जिसकी प्राण-शक्ति कमजोर होती है, वह परिस्थिति से दब जाता है। परिस्थिति उसे कुचल डालती है।

बाह्य परिस्थितियो के आधार पर सारी समस्याओ का समाधान ढूढना एक अधेरे से दूसरे अधेरे मे भटकना है। इससे समाधान प्राप्त नही होता, भ्रातिया प्राप्त होती हैं। परिस्थिति भी एक सचाई है। इसे हम अस्वीकार न करें, किन्तु वही सब कुछ है, यह कभी न माने। हमारी आन्तरिक शक्ति बहुत प्रबल है। उसके समक्ष परिस्थिति की शक्ति नगण्य है, तुच्छ है।

अन्तर क्यो ?

हम सडक के जीवन को भी समझें और मकान के जीवन को भी समझें। दोनो को सामने रखकर समस्याओ का समाधान ढूढें। एक व्यक्ति सामान्य अप्रिय बात को सुनकर तमतमा उठता है। दूसरा व्यक्ति कठोर अप्रिय वचन सुनकर भी शान्त रहता है। यह अन्तर क्यो ? दोनो के समक्ष अप्रियता की परिस्थिति है। दोनो के समक्ष क्रोध करने के निमित्त है, किन्तु एक गुस्से से लाल हो जाता है और दूसरा शान्त रहता है। यह क्यो ? इसका कारण स्पष्ट है। जिस व्यक्ति ने अपने आन्तरिक भावो का परिमार्जन कर लिया वह अप्रिय बात सुनकर भी उत्तेजित नही होता और जिस व्यक्ति ने अपने अन्तर्-मन का शोधन नही किया, वह थोडी-सी अप्रिय परिस्थिति मे उत्तेजित हो जाता है। बाह्य परिस्थिति तब तक आदमी को प्रभावित नही कर सकती जब तक उसके साथ भीतर की परिस्थिति या भाव न जुड जाए।

शास्त्र भार भी, दीप भी

विद्वान् लोग एक ही शास्त्र के अनेक अर्थ करते हैं। दो व्यक्ति एक ही शास्त्र को पढते हैं। पर अर्थ-ग्रहण दोनो का भिन्न हो सकता है। दोनो मे बहुत बडा अन्तर हो जाता है। ऐसा क्यो होता है ? 'भारोऽविवेकिन. शास्त्रम्'—जिसका अन्तर्विवेक जागृत नही होता उसके लिए शास्त्र भार बन जाता है। जिसका अन्तर्विवेक जागृत होता है उसके लिए शास्त्र मार्ग-दर्शक होता है। जिसका अन्तश्चक्षु जागृत नही है, उसके लिए शास्त्र अन्धकार बन जाता है और जिसका अन्तश्चक्षु जागृत है, उसके लिए शास्त्र दीप बन जाता है।

एक व्यक्ति काशी गया। वहा बारह वर्षो तक पढता रहा। पडित होकर से गाव आया। गाव के बाहर श्मशान भूमि थी। वहा एक गधा खडा था।

उसे याद आया शास्त्र का एक **वाक्य—'राजद्वारे श्मशाने च, यस्तिष्ठति स बान्धवः'**—जो राजद्वार और श्मशान मे रहता है वह भाई है, बन्धु है। उसने सोचा—गधा मेरा भाई है। वह गया। गधे को गले लगाया। गधे ने दुलत्ती मारी। वह गिर पडा। इतने मे देखा कि एक ऊट दौडा आ रहा है। उसे शास्त्र का वाक्य याद आ गया—**धर्मस्य त्वरिता गतिः**—जो तेज दौडता है वह धर्म है। उसने धर्म को, जो ऊट था, पकडने दौडा। पूछ पकड़ पाया। ऊट और तेज हो गया। वह पूछ पकडे ऊट के पीछे घसीटा जा रहा था। लहूलुहान हो गया। ऊट रुका। उसे फिर याद आया—**इष्टं धर्मेन योजयेत्**—बन्धु को धर्म के साथ जोडना चाहिए। गधा खडा था। वह बन्धु था। उसने गधे को लाकर ऊट के साथ एक ही रस्सी से बाध डाला। मन ही मन प्रसन्न हुआ कि आज मैने शास्त्र के वाक्यो का क्रियात्मक रूप मे पालन किया है। वहा से कुछ आगे बढा। चार मित्र तालाब पर स्नान करने जा रहे थे। उनके साथ चल पडा। स्नान करते-करते एक मित्र डूबने लगा। उस नए पडित को शास्त्र का वाक्य याद हो आया—**'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं रक्षति पडितः'**—जहा सर्वनाश होता हो वहा पडित को चाहिए कि वह कम से कम आधे की रक्षा अवश्य करे। उसने चाकू निकाला और डूबने वाले का सिर काट डाला। उसने आधे की रक्षा कर ली। वह व्यक्ति शास्त्र के आदेशो को मानकर कार्य कर रहा था।

कवि ने उचित ही कहा—**'भारोऽविवेकिनः शास्त्रम्'**—जिस व्यक्ति का विवेक-चक्षु खुला हुआ नही है, उसके लिए शास्त्र भार है। वह तारने वाला भी डुबाने वाला बन जाता है। जिसका विवेक जागृत है, उसके लिए शास्त्र बहुत उपयोगी है। शास्त्र बाहरी वस्तु है। उसकी उपयोगिता तभी होती है जब विवेक का जागरण हो, मन प्रबुद्ध हो। आन्तरिक समस्याओ को सुलझाए बिना शास्त्र शस्त्र बन जाता है। वह कल्याण नही कर सकता।

'भारो ज्ञान च रागिणाम्'—जो व्यक्ति राग से ग्रस्त है, उसका ज्ञान भार बन जाता है। जो ज्ञान का भार ढोते है, वे बडे अहकारी बन जाते है। पडित जितना अहकारी होता है उतना अ-पडित नही होता। वह बेचारा किस वस्तु का अह करे। बडा आश्चर्य है कि ज्ञान वास्तव मे अहकार को मिटाने वाला है, किन्तु वही अह को बढाता है। पढे-लिखे लोग अहकारी बन जाते है तो क्या पढना अहकार को बढाना है ? नही, वह तो अह को मिटाने वाला है। व्यक्ति मे अह पैदा होता है अपने आन्तरिक कारणो से। हमारे भीतर के स्रावो के कारण ये सारी वृत्तिया जागती हैं और व्यक्ति कभी अहकार से, कभी क्रोध से, कभी माया से और कभी उत्तेजना से ग्रस्त हो जाता है। यह सारा आन्तरिक कारणो से होता है। हमे लगता है कि बाहरी निमित ही इन सब वृत्तियो के कारण है, किन्तु इन वृत्तियो का मूल कारण ग्रन्थियो का स्राव है।

विद्युत्प्रवाह से रूपान्तरण

वैज्ञानिको ने कुछ प्रयोग किए। उन्होने बिल्ली के सवेदन-केन्द्रो पर इलेक्ट्रोड लगा दिए और उनमे से विशेष प्रकार का विद्यु त्-प्रवाह प्रवाहित किया। बिल्ली के वे केन्द्र निष्क्रिय हो गए। अब चूहे आते है। बिल्ली के सिर पर चढते है, कूदते हैं, फादते है। बिल्ली शान्त बैठी रहती है। न क्रोध आता है और न आक्रमण की भावना होती है। विद्यु त्-प्रवाह के इस परिवर्तन से आश्चर्यकारी रूपान्तरण होता है।

आभामंडल का प्रभाव

प्राचीन साहित्य मे चर्चा आती है कि वीतराग या तीर्थंकर के समक्ष नित्य-वैरी भी मित्र बन जाते है। उनके आभामंडल से विकीर्ण होने वाली रश्मिया सारे वातावरण को प्रभावित कर देती है। प्राणी वैर को भूल जाते है। इसका कारण है कि उन विशिष्ट साधको की प्राण-ऊर्जा, प्राण-विद्यु त् इतनी शक्तिशाली होती है कि उसकी परिधि मे आने वाला प्रत्येक प्राणी शान्त और सहज हो जाता है। जो मारने या लडने की भावना से आता है वह भी शान्त हो जाता है। यह इसलिए कि उस प्राणी का ग्रन्थि-स्राव बदल जाता है। जिस स्राव के कारण उत्तेजना या बुरी वृत्ति पनपती थी, वह स्राव रुक जाता है और शान्त वृत्ति को पनपाने वाला स्राव उदित हो जाता है।

अध्यात्म . प्रतिरोधात्मक शक्ति

अध्यात्म और धर्म को मानने वाले लोग बाह्य परिस्थिति मे ही न उलझे रहे। वे उसे ही अन्तिम सचाई न मानें। 'परिस्थिति ही सब कुछ है'—यह तब तक सत्य है, जब तक व्यक्ति आन्तरिक स्रावो को बदलना नही जानता। जब वह आन्तरिक स्रावो को बदलना जान जाता है तब वह परिस्थिति को सार्वभौम सत्ता नही सौंपता। उसे सचाई का पता लगा जाता है। जो आन्तरिक स्रावो को बदलना नही जानता वह परिस्थिति से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। जिस व्यक्ति को यह सूत्र मिल गया कि ध्यान-साधना द्वारा स्रावो को बदला जा सकता है, फिर परिस्थितिया उसके लिए व्यर्थ हो जाती है। परिस्थितिया तभी प्रभावकारी बनी रहती है जब उन्हे भीतर मे पुष्ट होने का अवसर मिलता है। रोग उसी शरीर मे वृद्धिगत होता है जिसकी प्रतिरोधात्मक शक्ति दुर्बल हो जाती है, रोग-निरोधक शक्ति कमजोर हो जाती है। शरीर मे रोग के असख्य कीटाणु हैं। किन्तु वे सक्रिय तभी बनते है जब रोग-निरोधक शक्ति दुर्बल हो जाती हैं। वे कीटाणु पनपते है और तब शरीर रोग-ग्रस्त हो जाता है। आप यह न मानें कि इस शरीर

मे एक ही जीव जी रहा है। असंख्य प्राणी, इसके साथ पल रहे है, जी रहे हैं। सारा शरीर कीटाणुओ से भरा पडा है। एक आदमी बीमार होता है, दूसरा नही। यदि कीटाणु ही बीमारी पैदा करते हो तो ससार मे कोई भी आदमी स्वस्थ नही रह सकता। सब आदमी बीमार हो जाएगे। वे ही आदमी बीमार पडते है, जो रोग-निरोधक शक्ति खो बैठे है या जिनकी यह शक्ति दुर्बल हो गई है।

जिजीविषा

जीने और स्वस्थ रहने का सबसे बडा आधार है जिजीविषा—जीवित रहने की इच्छा। जो व्यक्ति यह मान लेता है कि मुझे मर जाना चाहिए, वह मरने की स्थिति मे चलने लगता है। जो व्यक्ति इस भावना से परे चला जाता है कि मुझे स्वस्थ रहना चाहिए, वह बीमारियो से घिर जाता है।

जीवन का पहला सूत्र है—जिजीविषा, जीने की प्रबल आकाक्षा और प्राण-शक्ति। स्वस्थ रहने का पहला सूत्र है—मै स्वस्थ हू, इस भावना का विकास। *जिस व्यक्ति मे 'मैं बीमार हू, 'मैं बीमार हू'—यह* भावना दृढमूल बन जाती है, उसके लिए स्वास्थ्य का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। राजस्थानी मे एक कहावत है—जो रोतो-रोतो ज्यावै, वो मर्‌योडारी खबर ल्यावै—जो रोते-रोते जाता है वह मरे हुए की खबर ले आता है। जो व्यक्ति प्रारम्भ से ही हीन-भावना से ग्रस्त होता है, वह बडा काम नही कर सकता। सफलता का पहला सूत्र है—अपनी आन्तरिक शक्तियो का अनुभव होना, उन पर विश्वास होना, अन्तर् जगत् से परिचित होना।

शरीर विज्ञान—सब के लिए

एक डॉक्टर के लिए शरीर से परिचित होना बहुत जरूरी है। एक ध्यान-साधक के लिए भी उसे जानना बहुत जरूरी है। एक फिजियोलोजिस्ट के लिए शरीर की सरचना और उसके फक्सन को जानना नितान्त आवश्यक होता है। वह उन्हे जानता है और अनेक निष्कर्ष निकालता है। एक ध्यान-साधक के लिए भी शरीर की सरचना और क्रियाविधि को जानना तो आवश्यक है ही, साथ ही साथ, उससे आगे अन्त स्रावी ग्रन्थियो के स्रावो को जानना, वे व्यक्ति की वृत्तियो को किस प्रकार प्रभावित करती है उसे जानना, किस प्रकार कषायो को उत्तेजित करती है उसे जानना भी बहुत जरूरी हो जाता है।

आवेगो का मूल : ग्रन्थिस्राव

यह माना जाता है कि आदमी समाज के सपर्क मे

लोभ, उत्तेजना करना सीखता है, वासनाओ को जन्म देता है। यह सचाई है, पर अधूरी है, पूरी नही। वह समाज के सपर्क मे सीखता है, समाज मे प्रगट करता है, किन्तु प्रगट करने का जो मूल कारण है वह समाज के सपर्क मे नही आता। वह कारण अपने भीतर मे है। वह कारण है—ग्रन्थियो का स्राव। यदि एड्रीनल ग्रन्थि को पिच्यूटरी ग्रन्थि से प्रभावित कर दिया जाए तो भयकर से भयकर परिस्थिति आने पर व्यक्ति का मन दूषित नही होता। चडकोशिक सर्प भगवान् महावीर को डस रहा है। यह क्रोध उत्पन्न होने की स्थिति है। पर भगवान् महावीर की आखो से करुणा की धारा बरस रही है। ऐसा क्यो? इसका कारण है कि भगवान् महावीर मे वह तत्त्व ही समाप्त हो गया जो कषायो और वृत्तियो को उत्तेजित करने वाला था। जब स्राव ही बदल गया तो क्रोध कैसे आए?

महाराष्ट्र के एक महान् सन्त थे—एकनाथ। वे नदी से स्नान कर आ रहे थे। एक झरोखे के नीचे से गुजरना पडता था। ऊपर एक व्यक्ति बैठा था। उसने एकनाथ पर थूक दिया। एकनाथ पुन स्नान करने नदी की ओर लौट गए। स्नान कर वापस आए। उस व्यक्ति ने पुन थूक डाला। एकनाथ पुन स्नान करने चले गए। इक्कीस बार ऐसा हुआ। पर उनको उत्तेजना नही आई। वे शान्त बने रहे। अन्त मे वह व्यक्ति नीचे उतरा और एकनाथ के चरणो मे गिर पड़ा। सदा उसी व्यक्ति को पैरो मे गिरना पडता है जो उत्तेजना का जीवन जीता है। वह बोला—महाराज! मैंने धृष्टता करने मे कोई कसर नही की तो आपने शान्ति और क्षमा की पराकाष्ठा ही दिखा दी। सन्त बोले—मैंने कोई विशेष काम नही किया है। तुम्हारे जैसा सहायक कभी-कभी ही मिल पाता है, क्योकि आज मुझे इक्कीस बार नदी-स्नान करने का अवसर मिला। जीवन मे ऐसा अवसर पहला ही था।

प्रश्न होता है, क्या यह कल्पनामात्र है या यथार्थ? क्या ऐसा सभव हो सकता है? हां, यह सभव है। जब उत्तेजना पैदा करने वाली ग्रन्थि सक्रिय रहती है तब तक ऐसा आचरण असभव है किन्तु जब भीतर का स्राव बदल जाता है तब यह स्थिति सभव बन जाती है।

एक मुनि था। उसका नाम था कुगडुक। उसको भूख बहुत सताती थी। वह उपवास आदि तपस्या करने से असमर्थ था। उसके साथी मुनि तपस्या करते, आचार्य स्वय तपस्या करते, पर वह प्रतिदिन भोजन करता। भूख को सहना उसके लिए असभव सा हो गया था। आचार्य कहते—मुने! तपस्या किया करो। रोज खाना अच्छा नही है। हम सब उपवास करते है। तुमको भी करना चाहिए। वह अपनी दुर्बलता व्यक्त करता।

एक दिन सूर्योदय होते ही वह गुरु से आज्ञा लेकर भिक्षा के लिए गया। खिचडी मिली, घी नही मिला। भिक्षा लेकर वह अपने स्थान पर लौट आया।

उसने भिक्षा गुरु को दिखाई। गुरु उत्तेजित हो उठे। उस दिन सब साधुओ के उपवास था। केवल एक ही मुनि आहारार्थी था। गुरु की उत्तेजना बढ़ गई। जब उत्तेजना बढती है तब गुरु गुरु नही रहता और शिष्य शिष्य नही रहता। आदमी सब कुछ बदल जाता है। शिष्य ने भिक्षा पात्र गुरु को दिखाया। गुरु उत्तेजित थे ही। उन्होंने उस पात्र मे थूक डाला। शिष्य पात्र को ले गया। सोचा—गुरु की कितनी कृपा हुई है। उसने विना किसी ग्लानि के खिचडी खाने के लिए हाथ बढाया। भावना का उत्कर्ष आया और वह केवली हो गया। उसे कैवल्य-लाभ हो गया।

गुरु को पता चला। वे दौडे-दौडे आए। यह क्या! गुरु अभी तक अवीतराग अवस्था मे ही है और उनके द्वारा प्रव्रजित शिष्य वीतराग बनकर केवली हो जाता है। घोर तपस्या करने वाले कैवल्य की परिधि मे ही रह गए और कभी उपवास न कर सकने वाला कैवल्य का अधिकारी बन गया। गुरु और चेले का फर्क केवल वाहरी दुनिया मे है। भीतरी दुनिया मे सब समान है। वाहरी दुनिया मे गुरु ऊपर बैठता है और शिष्य नीचे। पर भीतरी दुनिया मे गुरु बाहर भटकता ही रह जाता है और शिष्य गहराई मे जाकर प्राप्तव्य को प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न गुरु या शिष्य का नही है। प्रश्न है भीतर को माजने-सवारने का। जो माजना सीख जाता है, वह मजिल के नजदीक पहुच जाता है।

मन का भार

यह ठीक कहा गया है—'**अशान्तस्य मनो भारः**'—जो अशान्त है उसके लिए मन भी भार बन जाता है। मन सुखकारी है, किन्तु जिस व्यक्ति मे आन्तरिक कषाय जाग जाते है उसके लिए मन भी भारी हो जाता है। आदमी शरीर के भार को ढो सकता है, पर मन के भार को ढोना सबके लिए सहज नही है। वह मन के भार के नीचे दब कर समाप्त हो जाता है।

वाहर देखे—भीतर देखे

हम इस सचाई को गहराई से समझें कि जिस व्यक्ति ने केवल परिस्थितियो और बाह्य जगत् को ही सब कुछ मान लिया और जिसने अपनी समस्याओ को बाह्य जगत् या परिस्थिति के सदर्भ मे सुलझाने का प्रयत्न किया, वह आदमी सचमुच भटक गया। आवश्ययकता है कि हम समस्याओ को बाह्य जगत् और अन्तर्-जगत्—दोनो के सन्दर्भ मे सुलझाने का प्रयत्न करें। आन्तरिक जगत् में होने वाले ग्रन्थि-स्राव, विद्युत्-प्रवाह को गौण न करें।

जिस व्यक्ति ने आन्तरिक जगत् मे रहना सीख लिया, वह बाह्य

अच्छी तरह से रह सकता है। जिसने अन्तर् जगत मे रहना नही सीखा, वह व्यवहार के जगत् मे होने वाली समस्याओं के भार को ढोता चला जाता है, कभी समाधान नही पाता। धर्म का एक सूत्र है—वाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् मे संतुलन स्थापित करना। वाहरी परिस्थितियो और आन्तरिक परिस्थितियो मे सामञ्जस्य स्थापित करना। वाहर को देखें तो भीतर को भी देखने का प्रयत्न हो। जव मुनि कहते हैं—दिन-रात का अधिकाश समय दूसरो के लिए वीतता है। थोड़े क्षण अपने लिए, केवल स्व के लिए भी वीतने चाहिए। लोग सीधा उत्तर देते हैं—समय नही है। यह उत्तर सुनकर आश्चर्य होता है। चौवीस घटो का समय क्या कम समय है? इस समय मे आदमी बुहारी के काम से लेकर धन कमाने तक का सारा काम करता है। निरतर हाथ-पैर हिलाता रहता है। गालियां देने और लड़ाई-झगडे करने के लिए समय मिल जाता है। खेल-कूद, ऐश-आराम के लिए समय की तगी नही है। वहुत समय है। किन्तु अन्तर् जगत् मे जाने के लिए उसके पास समय नही है। क्या यह इतना व्यर्थ का काम है? क्या इसका जीवन मे कोई प्रयोजन ही नही है? कुछ लोग कहते हैं—अध्यात्म की ओर प्रेरित करने के लिए वार-वार क्यो कहा जाता है? इसका सीधा उत्तर है कि आदमी करुणा से प्रेरित होकर ही ऐसा उपदेश देता है। जिस व्यक्ति ने देखा कि यहा प्रकाश है, वह दूसरो को भी उस प्रकाश का अनुभव कराना चाहता है। दूसरा व्यक्ति यदि नही मानता है, फिर भी उसका यही प्रयत्न रहता है कि वह भी उस प्रकाश का अनुभव करे, जिसका वह स्वयं अनुभव कर चुका है। यह इसीलिए कि उसमे करुणा का सागर हिलोरें ले रहा है। वह चाहता है कि सारे मनुष्य उस प्रकाश को पाकर शान्ति का अनुभव करें, आनन्द का अनुभव करें।

समय और समय

'समय नही है' यह तभी कहा जाता है जव तक व्यक्ति इस क्षेत्र मे प्रवेश नही कर लेता। एक वार भी जिस व्यक्ति ने ध्यान के आनन्द का अनुभव कर लिया, वह फिर उस कारा से मुक्त नही हो सकता। इस पिंजरे मे फसने वाला व्यक्ति वाहर जाना नही चाहता। पिंजरे का दरवाजा चाहे खुला ही क्यो न रहे, वह उड़ेगा नही। वह उस आनन्द को छोड़ना नही चाहेगा। जो व्यक्ति अन्तर् जगत् की थोडी भी झाकी पा लेता है, उसके पास अध्यात्म के लिए समय ही समय है। जब तक यह झाकी उपलव्ध नही होती, तब तक समय के अभाव की वात आदमी कहता चला जाता है। जब तक आदमी घरेलू झंझटो मे फसा रहता है तब लगता है कौन शिविर मे जाकर कैद भोगे। न खाने-पीने की स्वतन्त्रता और न घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता। वड़ा ही अटपटा जीवन होता है शिविर का। किन्तु जव व्यक्ति एक वार आ जाता है, फिर यहां से जाते उसे कठिनाई महसूस

होती है। जो व्यक्ति अपने आन्तरिक जीवन की झलक पा लेता है, उसके जीवन का समूचा क्रम ही बदल जाता है। किन्तु जो कभी इस जीवन का अनुभव ही नही करता, वह सदा डरता रहता है।

अन्तर् जगत् का जीवन घर का जीवन है। बहिर् जगत् का जीवन सड़क का जीवन है। बहिरजगत् का जीवन संतापों का जीवन है और अन्तर् जगत् का जीवन आनन्द का जीवन है। जो एक बार भी अन्तर् यात्रा कर लेता है, उसे जीवन की समस्याओ को सुलझाने का मार्ग प्राप्त हो जाता है। ●